

वैज्ञानिकों की जिज्ञासा के समाधान
आत्मा की शक्तियाँ
(वेबिनारों में दिया गया समाधान)

-आचार्य कनकनन्दी

पुण्य-स्मरण

राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय 5 वेबिनार वैज्ञानिक संगोष्ठी

स्वप्रेरित अर्थ सौजन्य (ज्ञानदानी)

- (1) कुमारी खुशी पुत्री श्री राजेश जी जैन ग.पु.काँ. सागवाड़ा साहित्य लेखन व ज्ञानदान में विशेष सहयोग
- (2) स्व. श्रीमती गुणमाला देवी की सुसमाधि के उपलक्ष्य में श्री दीपक, संजय शाह नि.गोवाड़ी (डूँगरपुर)

ग्रंथांक-373

संस्करण-प्रथम 2022

प्रतियाँ-300

मूल्य-स्वात्मा की श्रद्धाप्रज्ञाचर्या

प्राप्ति स्थान एवं सम्पर्क सूत्र

आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा आशीर्वाद प्राप्त

(1) धर्म-दर्शन सेवा संस्थान

द्वारा-श्री हेमन्त प्रकाश देवड़ा (महावीर)

चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,

उदयपुर (राज.)-313001/मो. 94608-78187

(2) डॉ. नारायणलाल कछारा

सचिव-धर्म-दर्शन सेवा संस्थान, 55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)-313001

फोन नं. 0294-2491422/मो. 092144-60622

E-mail:nlkachhara@yahoo.com

अभिनव श्रुतकेवली संत

आचार्यरत्न श्री कनकनंदी जी गुरुदेवः व्यक्तित्व एवं कृतित्व

-प्रो.डॉ. राजमल जैन कोठारी

(दिगम्बर जैन समाज के एकमात्र संत जिनका आहार-विहार-प्रवास-चातुर्मास सबकुछ बिना किसी आडम्बर के, बिना किसी दिखावे के पूर्ण सादगी और धर्ममय वातावरण में होता है। समाज के एकमात्र संत जिनके सम्पूर्ण संघ के चातुर्मास का व्यय मात्र कुछ हजार रुपये होते हैं और साधारण से साधारण गाँवों में जिनके चातुर्मास सहज सम्पन्न होते हैं। डॉ. राजमल जी भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला अंतरिक्ष विभाग अहमदाबाद में वरिष्ठ वैज्ञानिक रहे हैं। वे स्पेस से जुड़े सूर्य चन्द्रयान, मंगल और आदित्य मिशन के उपकरण डिजायन से जुड़े रहे हैं, अंतर्राष्ट्रीय खगोलिय संघ भारत की खगोलिय संघ के वे सदस्य हैं तथा जर्नरल ऑफ स्पेस एंड रेडियो फिजिक्स तथा एशियन जर्नरल ऑफ फिजिक्स पत्रिका के वे संपादक हैं। डॉ. कोठारी अंतर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त जैन समाज के वरिष्ठ वैज्ञानिक विद्वान् हैं।-संपादक दिशा बोध)

वर्तमान समय में श्रमण संस्कृति के पुरोधा, अभिनव श्रुतकेवली, अध्ययन व अध्यापन की विशेष दक्षता रखने वाले आचार्य, कलिकाल के अकलंक और शास्त्रार्थ क्षमता के समन्तभद्र, ये अलंकरण कोई काल्पनिक नहीं, बल्कि वर्तमान में अपने को धर्माचार्य से ऊपर उठाकर वैज्ञानिक प्रतिपादित किया है उस महान् वैश्विक संत के चरणों को सुशोभित करते हैं। जिस संत को विश्व की 30 भाषाओं और व्याकरण का ज्ञान हो, लगभग 400 ग्रंथों का सृजन किया हो, विश्व की लगभग 60 विश्वविद्यालयों में उनके साहित्य पर शोध कार्य सतत चल रहा हो और अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों के आयोजन और प्रश्न मंच में अपनी विद्वता को स्थापित करने वाले संत को एक राष्ट्र संत कहने पर मैं स्वयं अपने को अपराधी महसूस करता हूँ अतः उन्हें अंतर्राष्ट्रीय संत और श्रुतकेवली कहना ही अधिक उचित होगा। इस विश्व गुरु का नाम है 'वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनंदी जी गुरुदेव।'।

आईये, हम इस विश्वगुरु के व्यक्तित्व और कृतित्व के बारे में जानते हैं। गणाधिपति गणधराचार्य श्री कुंथुसागर जी ऋषिराज के सबसे ज्येष्ठ व श्रेष्ठ सुशिष्य वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुराज ने क्षुल्लक दीक्षा 1978 में पपोरा अतिशय क्षेत्र (म.प्र.) में ली थी। तत्पश्चात्, मुनि दीक्षा-1981 में श्रवणबेलगोला में दो सौ से अधिक सन्तों की उपस्थिति में ली थी।

एक बहुत ही लोकप्रिय एवं प्रचलित लोकोक्ति है 'होनहार बिरवान के होत चिकने पात' अर्थात्, महानता के लक्षण बचपन से ही प्रकट होने लगते हैं और बहुत ही कम उम्र से प्रतिभा दिखाई देने लगती है। वस्तुतः यह लोकोक्ति आचार्यश्री कनकनन्दी जी पर चरितार्थ होती है।

उड़ीसा ब्रह्मपुरी उत्काल का किशोर युवा गंगाधर जो बचपन से विलक्षण था, वैज्ञानिक, राष्ट्रीय नेता या महाविज्ञ सन्त बनने की अद्वितीय योग्यता रखता था वह अंततः श्रुत केवली वैज्ञानिक धर्माचार्य अर्थात् संन्यासी जीवन के शिखर तक पहुँच गया। किशोर युवा गंगाधर राजनीति व लौकिक शिक्षा से प्राप्त पदों में असत्यता व भ्रष्टाचार को देखकर आपने सत्य की खोज में धर्म की शरण में गया जहाँ सभी धर्मों, उनके गुरुओं व ग्रन्थों का अवलोकन किया लेकिन गंगाधर को वहाँ सन्तुष्टि नहीं हुई, जिसके फलस्वरूप यह किशोर जैन धर्म में सत्य को तलाशने सम्मोद शिखर जी पहुँचा। जहाँ गंगाधर को वात्सल्यरत्नाकर आचार्य श्री विमलसागरजी भगवन्त के दर्शन हुए और गंगाधर ने उसने विनय पूर्वक सत्य तत्त्व के तीन प्रश्न पूछे। तब निमित्तज्ञानी महागुरु ने श्रेष्ठ लक्षणों के धनी गंगाधर को मुस्कराते हुए कहा बेटा तेरे इन तीन प्रश्नों का जवाब तो मेरी ये शिष्या विजयमती ही दे देगी। गुरु के संकेत पर प्रथम गणिनी आर्यिका श्री विजयमती माताजी ने तीनों प्रश्नों का सन्तोषपद समाधान दिया।

पूज्य माताजी से तत्त्वों की अनेक चर्चा के बाद गंगाधर को अहसास हो गया कि एक शिष्या इतनी ज्ञानी है तो इनके गुरु, ग्रन्थ व धर्म कितने महान् होंगे, अतः गंगाधर ने तभी दृढ़ संकल्प कर लिया कि अब मैं कहीं नहीं जाऊँगा और दिग्म्बरत्व की शरण में रहकर ज्ञानार्जन करके आत्म कल्याण करूँगा। बस, यही से गंगाधर से श्रुत केवली की परम गुणस्थान की शुभ यात्रा का पहला सोपान प्रारम्भ

हुआ। तत्पश्चात् गंगाधर में आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत धारण कर सम्मोदशिखर जी में विद्यमान वात्सल्यरत्नाकर आचार्यश्री विमलसागरजी, गणधराचार्य श्रीकुंथुसागरजी, मर्यादाशिष्योत्तम आचार्यश्री भरतसागरजी व गणिनी आर्यिका श्रीविजयमती माताजी से ज्ञानार्जन करने लगे। क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण कर गुरु संघ में रहने लगे।

इतिहास के पन्नों में स्वणिम अक्षरों में लिखा जाना वाला दिन, 5 फरवरी सन् 1981, दक्षिण भारत का सबसे पवित्र तीर्थ क्षेत्र गोमटेश्वर बाहुबली की महती पावन धरा पर वात्सल्यरत्नाकर आचार्य श्रीविमलसागरजी भगवन्त, आचार्यश्री विद्यानन्दीजी (कुन्दकुन्द भारती) आचार्य श्री अभिनन्दन सागरजी, आचार्य श्रीभरतसागर जी सहित अनेक अन्य दिग्गज आचार्य व प्रथम गणिनी आर्यिका श्रीविजयमती माताजी सहित 200 सन्तों के शुभाशीष उपस्थिति में लाखों श्रावकों के मध्य गणाधिपति गणधराचार्य श्री कुंथुसागर जी ऋषिवर के कर कमलों से उड़ीसा के गंगाधर नामक अति होनहार विलक्षण बाल ब्रह्मचारी क्षुल्लक जी को मुनि दीक्षा प्रदान की गयी। नाम मिला मुनि श्री कनकनन्दी जी जो गणधराचार्य श्री कुंथुसागर जी के प्रथम शिष्य हुए।

मुनि दीक्षा के पश्चात् श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव जैनागम के अध्ययन में अनवरत लीन रहते। अधिक अध्ययन से आपकी आंखें सूज कर लाल तक हो जाती लेकिन पढ़ने की आपकी ललक जारी रहती थी। आपके कक्ष में जब कोई दर्शनार्थी जा रहा होता तब उन्हें आपके दीक्षा गुरु श्री कुंथुसागरजी कहते कि भैया, मुनि जी के बाहर से ही दर्शन कर लो मेरा बेटा (कनकनन्दीजी) अभी पढ़ रहा है, अतः उनको डिस्टर्ब होगा। अध्ययन व अध्यापन की विशेष दक्षता को देखकर गुरुदेव श्री कुंथुसागरजी आपको अपना **नायाब हीरा** कहते तो आचार्य श्री भरतसागरजी आपको **कलिकाल अकलंक** कहते थे। वहीं 20वीं सदी के राष्ट्र सन्त श्री देशभूषण जी भगवन्त आपको **शास्त्रार्थ क्षमता का समन्तभद्र** कहते थे।

पूज्यपाद स्वाध्याय तपस्वी वैज्ञानिक धर्माचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव ने 300 से अधिक सन्तों को शिक्षा प्रदान करते हुए जैन दर्शन को वैज्ञानिक सिद्धांतों से सिद्ध करते हुए लगभग 400 ग्रंथों की रचना की है साथ ही 12500 से अधिक आध्यात्मिक काव्यञ्जलियों की रचना की है जो अब भी जारी है। श्रीकनकनन्दी जी

गुरुदेव 30 भाषाओं को जानने वाले इस सम्पूर्ण विश्व में एक मात्र व्यक्तित्व है, विश्व के 5 महाद्वीपों व लगभग 60 विश्वविद्यालयों में आपके द्वारा रचे साहित्यों पर शोध व अध्ययन होता है। इतनी अथाह ज्ञान प्रभावना किन्तु अत्यंह निस्पृही व निराडम्बरी, जिनके प्रवास या वर्षायोग में किसी भी प्रकार की बोली तक नहीं लगती, न ही कोई निमंत्रण पत्रिका, न ही होल्डिंग या बड़े पेम्पलेट, न ही किसी भौतिक निर्माण का प्रपंच और न ही कोई चंदा चिट्ठा, बल्कि बिल्कुल सादगी और साधना भरी जीवन शैली और वैसा ही चातुर्मास। आज के भौतिक सम्पन्न, आडम्बर और दिखावे के चातुर्मास के मध्य यह सादगी वस्तुतः केवल एक सच्चा तपस्वी अर्थात् श्रुत केवली ही प्रस्तुत कर सकता है। वर्तमान में आप प्रायः छोटे छोटे या एकांत गाँवों में ही विहार करते हैं और आप पांच प्रकार के स्वाध्याय को छोड़कर मौन रहते हैं। अपने जीवन का अधिकतर समय स्वाध्याय, अध्ययन, अध्यापन, शैक्षणिक और अकादमिक संगोष्ठियों में ही व्यतीत करने वाले इस अद्भुत संत को विश्व गुरु कहना उनके चरित्र, व्यक्तित्व और कृतित्व को चरितार्थ करता है। ऐसे विलक्षण महायोगी आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुराज को कोटिशः नमन।

(शब्दसुमनः शाह मधोक जैन, चितरी, श्रीमती दीपिका नागिन शाह, सागवाड़ा, और प्रोफेसर (डॉ) राजमल जैन कोठारी, पुणे) दिशाबोध-अप्रैल-2022

वैश्विक प्रभावना व चातुर्मास की शृंखला

श्रद्धा-भक्ति-भावना-उदारता-दान-भाव विशुद्धि की पुण्य भूमि वाग्वर अञ्चल के ग.पु.कॉलोनी, सागवाड़ा में दीर्घकाल (प्रायः 28 माह) से प्रवासरत सहज सरल समता धारक वैज्ञानिक आचार्यप्रवर सन्तश्रेष्ठगुरुवर श्री कनकनन्दीजी श्रीसंघ निश्रा में वैश्विक प्रभावक भगवान् महावीर प्रभु की जयन्ती अत्यन्त हर्षोल्लास से मनाई गयी। आचार्यश्री के विविध शिष्य भक्तों द्वारा वैश्विक स्तर पर चल रही ज्ञान-विज्ञान-भाव-गुण आदि की आगमोक्त प्रभावना का बखान स्वप्रेरणा से किया गया। इस शृंखला में कलिकाल श्रेयांस ब्र.खुशपाल जी शाह ने आचार्यश्री से प्राप्त ज्ञान व अनुभव का बखान किया। कॉलोनी श्रीसमाज के अध्यक्ष श्री नगीनलालजी शाह ने आचार्य श्रीसंघ की निस्पृहता-निराडम्बरता-अयाचक आदि गुणों की अभिव्यक्ति व अनुमोदना की।

प्राचार्य श्री सुरेन्द्र कुमार जी पञ्चोरी ने भी अपने प्राप्त गुण व अनुभव के चौके-छक्के लगाए। आचार्यश्री संघ के हनुमान शिष्य श्री दिनेशचन्द्र जांगा जो कि अच्छे स्वयंसेवक भी हैं, अपने अनुभव बताकर आनन्दित हुए।

आचार्यश्री के ज्ञान-विज्ञान को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विविध शोधार्थी वैज्ञानिकों से सम्पर्क साधने वाले युवा इंजीनियर अभय कुमार ने बताया कि यू.के. में इण्टरनेशनल महावीर जैन मिशन, जैन आश्रम बर्मिंघम (ब्रिटेन) के प्रेसीडेण्ट श्री अरविन्दरजैन अपने चैरिटेबल ट्रस्ट के माध्यम से आचार्यश्री के शोध-बोध व जैन एकता आदि अभियान को प्रगतिशील कर रहे हैं। आचार्यश्री के इसरो के वैज्ञानिक शिष्य डॉ.एस. एस. पोखरना ने बताया कि विविध देशों के प्रायः 1000 वैज्ञानिक आगामी अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी की संयोजना कर रहे हैं जिसमें आचार्यश्री के नेतृत्व में “मैं आत्मा/चेतना (Consciousness)” विषय पर व्यापक संगोष्ठी होगी। ग्रंथांक 357 व 360 से 367 तक 9 ग्रन्थों का विमोचन हुआ।

इस महावीर जयन्ती की धर्म सभा में अनेक ग्रामों से आये हुए भक्त शिष्यों ने आगामी चातुर्मास-दीर्घप्रवास-(आजीवन) हेतु आचार्यश्री से अनुरोध किया। सागवाड़ा श्री समाज द्वारा अतिशय क्षेत्र योगेन्द्रगिरि पर श्रीसंघ के चातुर्मास प्रवास हेतु भावभीना निवेदन किया गया। नगरपालिका अध्यक्ष व आचार्यश्री के प्रायः 25 वर्ष पुराने शिष्य भक्त श्री नरेन्द्रकुमार खोड़निया ने कहा कि हम सभी सौभाग्यशाली हैं कि हमने आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव को इस अञ्चल में लाकर ज्ञान-गुण-पुण्य-प्रभावना को लाए। इस अवसर पर आचार्यश्री ने सागवाड़ा के सर्वांगीण विकास-महानता-उदारता-संगठन शान्ति आदि उपलब्धि का बखान कर योगेन्द्रगिरि आने हेतु आशीर्वाद प्रदान किया। भीलूड़ा से गुरुभक्त श्री का बखान कर योगेन्द्रगिरि आने हेतु आशीर्वाद प्रदान किया। भीलूड़ा से गुरुभक्त श्रीपाल जी, नन्दौड़ से मनीष जैन व जीवनलाल पाटीदार ने भी निवेदन किया। आचार्यश्री सृजित 9 ग्रन्थों का विमोचन किया गया।

-शुभभावनासह-श्रमणमुनिसुविज्ञसागर

शुभाशीर्वाद-आचार्य कनकनन्दी

इण्टरनेशनल महावीर जैन मिशन, जैन आश्रम बर्मिंघम
(U.K.) के प्रेसिडेन्ट श्री अरविन्दर जैन, चैरिटेबल ट्रस्ट

श्रीमान् परम-गम्भीर स्याद्वादा मोघ-लाञ्छनम्।

जीयात्-त्रैलोक्यनाथस्य, शासनं जिन-शासनम्॥ (ई.भ.)

धम्मो मंगल-मुक्किट्ठं अहिंसा संयमो तवो।

देवा वि तं णमसति जस्स धम्मे सया मणो॥ (प्रतिक्रमण से)

रयणत्तयं च वंदे, चउवीस जिणे च सव्वदावंदे।

पञ्च गुरुणां वंदे, चारणचरणं सदावंदे॥ (समाधि भक्ति)

धर्मात्मा बंधुओं आप जो जैन एकता के लिये कार्य कर रहे हो वह प्रशंसनीय है। जैनधर्म है वह श्रीमान् परम गम्भीर है, थोथा, संकीर्ण, भेदभाव पूर्ण नहीं है। स्याद्वाद-अमोघ-लाञ्छन अर्थात् अनेकान्त सिद्धान्त से युक्त है। यह जैन शासन कोई राजा-महाराजा, चक्रवर्ती या कार्ल मार्क्स, अब्राहम लिंकन से प्रेरित नहीं, सम्पादित नहीं, हेगले आदि से परे त्रैलोक्यनाथस्य जो तीन लोक के नाथ है ऐसे सर्वज्ञ वीतरागी द्वारा प्रतिपादित शासन जिनशासन जो त्रैलोक्य के सभी द्रव्यों के विश्व के लिए है। यह जैन धर्म केवल मानव, पशु-पक्षी नहीं अपितु विश्व के जीव, पुद्गल, धर्म-अधर्म-आकाश-काल के लिये है।

जिन शासन क्या है? जिससे तत्त्वज्ञान, आत्मज्ञान, परमज्ञान हो, जिससे चित्त विशुद्ध हो, निर्मल हो, जिसमें अनेकान्त हो व आत्मा परमात्मा बने, वह है जिनशासन। परन्तु वर्तमान में केवल पंथ-मत रीति-रिवाज, पूजा क्रियाकाण्ड के लिये स्व-आत्मा को विखण्डित कर रहे हैं। स्व आत्महिंसा कर रहे हैं। जैन-जयतु शासनम् यह गाथा दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों पंथों में है।

जो आसक्ति, मोह, ममकार, अहंकार से विरक्त होगा वह जैन धर्म है, जिनशासन है। आप स्वयं में जो श्रेय में आसक्त, प्रेरित हो, प्रिय सांसारिक भोग-उपभोग, सत्ता-सम्पत्ति, प्रसिद्धि इससे पर श्रेय है। अभ्युदय, विशेष चक्रवर्ती बनना,

राजा-महाराजा बनना है। अभ्युदय से परे विशेष अन्त्योदय से सर्वोदय है। इस सर्वोदय शब्द का प्रयोग विनोबा भावे ने किया था। जैनधर्म सर्वोदयी है इसलिये जैन जयतु शासनम्। अन्त्योदय का अर्थ बैक्टेरिया, वायरस से लेकर पशु-पक्षी, दुष्ट-दुर्जन, आतंकवादी का उत्थान, उद्धार हो। अन्त्योदय से लेकर सर्वोदय जैन धर्म में दिगम्बर श्वेताम्बर में समानता है। इनका मेरी (आचार्य कनकनन्दी) अनेक किताबों में उल्लेख किया है। दोनों पंथों में क्या समानता है? वत्थु सहावो धम्मो, दशविह धम्मो, जीवरक्खणं धम्म और रयणत्तयं च वंदे चउवीस जिणे च सव्वदा वंदे। पंचगुरुणम् वंदे, चारण चरणं सदावन्दे॥ यह समानता है। रत्नत्रय, मोक्षशास्त्र, भक्तामर, चौबीस तीर्थकर, पंचपरमगुरु, दोनों (दिगम्बर, श्वेताम्बर) सम्प्रदाय में समान है। दोनों का लक्ष्य केवल सेठ साहुकार बनना या साधु बनना नहीं, यहाँ तक तीर्थकर भी बनना नहीं है मोक्ष प्राप्त करना है। माता मे जिनवाणी पिता देव वीतराग। विश्व के सम्पूर्ण जीव (निगोदिया से लेकर समस्त जीव) हमारे बन्धु है। हमारा शाश्वत निवास मोक्ष स्थान है। तुम्हारे शरीर के अंग-उपांग में भिन्नता है। कहा भी है-णाणा जीवा णाणा कम्मं

अनन्त जीव, अनन्त कर्म, अनन्त भाव, अनन्त उपलब्धियाँ है। 9वें गुणस्थान तक अनेक भिन्न-भिन्न भाव व व्यवहार है। पूर्ण समानता 9वें गुणस्थान में है, 8वें में भी नहीं है। इसलिए णाणा जीवा णाणा कम्मं...

अतः स्व-मत या परमत में विवाद नहीं करना चाहिए। कोरोना ने सिद्ध कर दिया है जैन धर्म के सिद्धान्त कितने सत्य है। धार्मिक या अहिंसक दृष्टि से नहीं स्वास्थ्य की दृष्टि से भी। क्वॉन्टम सिद्धान्त, मनोविज्ञान से ले देश-विदेश के वैज्ञानिक जैन धर्म के सिद्धान्तों को सत्य सिद्ध कर रहे हैं।

जिज्ञासा-हे गुरुदेव! नयी पीढ़ी पढ़ी-लिखी है परन्तु धर्म से विमुख हो रही है। समाधान बताइये।

समाधान-मैं (आ. कनकनन्दी) नई पीढ़ी को आह्वान करता हूँ कि तुम कितने भी पढ़े-लिखे हो जाओ, वैज्ञानिक हो जाओ परन्तु जैन-धर्म के सिद्धान्तों को

तुम कितना जानते हो? आधुनिक विश्व विज्ञान जानते हो? आधुनिक होना अर्थात् घमण्डी, भ्रष्ट, उदण्ड होना, मनमानी करना नहीं हैं। आत्मा को परमात्मा बनाना है।

केवल पंथ-मत, ढोंग-पाखण्ड, पक्षपात, दुराग्रह ये मुक्ति नहीं है। मात्र वस्त्र त्याग से मोक्ष नहीं मिलता। असंख्यात नारकी, पशु-पक्षी नग्न रहते है तो उन्हें मोक्ष प्राप्त होता है। मात्र वस्त्र त्याग नग्नता से नहीं चलेगा। शरीर, वस्त्र परद्रव्य है। परिग्रह है तो मोक्ष कैसे मिलेगा? केवल तत्त्ववाद, तर्कवाद, न पक्षपात से मुक्ति है। न आधुनिक किताबें पढ़ने से न दिगम्बर-श्वेताम्बर से मुक्ति मिलती है। धर्म में आलस व भावात्मक बन्धन, पक्षपात नहीं है। मोक्ष कैसे मिलेगा? मन की पवित्रता, समानता, उदारता चाहिए। इसलिये जैन धर्म वत्थु सहावो धम्मो होने से वैश्विक धर्म कहा है। जीव धर्म है। परमाणु (पुद्गल) आकाश, काल का भी धर्म है। जैन धर्म बाह्य का नहीं है, स्व का धर्म है। आत्म धर्म, विश्व-स्वरूप धर्म-स्व-मत धर्म है। विज्ञान के Physics, Chemistry, Biology हो या क्वॉन्टम Theory हो कोई भी आत्मा को परमात्मा नहीं बना सकते। केवल इस जन्म में ही नहीं अनंत भवों में दुःख सहन करने पर भी बिना धर्म के परमात्मा नहीं बन सकते। वैज्ञानिक सनप्रता से कहते हैं हम सत्य को जानने का प्रयास कर रहे हैं। ॐ नमः।

कुछ बच्चों में होते हैं 7 तरह के परफेक्शन

अक्सर कुछ बच्चे हर काम में अव्वल रहते हैं, जबकि बाकी बच्चों को उस काम में परेशानी का अनुभव होता है। यह इस वजह से होता है कि कुछ कौशल का विकास बच्चों में समय पर नहीं हो पाता। यदि उनमें आत्मविश्वास, करुणा, वफादारी, आत्म-नियंत्रण, जिज्ञासा, दृढ़ता और आशावाद जैसे कौशलों का विकास समय पर हो तो वे सफलता की ओर कदम बढ़ा सकते है। जानते हैं इन्हें विकसित करने की कुछ टिप्स-

एजुकेशन साइकॉलोजिस्ट मिशेल बोरबा ने बताई ऐसे की बच्चों की क्वालिटी-

ये टिप्स करेंगे मदद

आत्मविश्वास: सफलता के लिए खुद पर यकीन होना जरूरी है। अध्ययनों

से पता चलता है कि अपने अच्छे नंबर्स का श्रेय खुद के प्रयासों को देने वाले बच्चे आगे सफल होते हैं।

करुणा: भावात्मक, व्यावहारिक और संज्ञानात्मक सहानुभूति से भी व्यक्ति सफल होता है। इसे विकसित करने के लिए बच्चों को भावनात्मक शब्दावली की जरूरत होती है।

आत्म-नियंत्रण: ध्यान, भावनाओं, विचारों, कार्यों और इच्छाओं को नियंत्रित करने की क्षमता भी दक्षता हासिल करने के लिए जरूरी है।

वफादारी: यह सीखे हुए विश्वासों, क्षमताओं, दृष्टिकोणों और कौशलों का समूह है, जिसके इस्तेमाल से बच्चे खुद के प्रति ईमानदार रह सकते हैं।

जिज्ञासा: बच्चों में जिज्ञासा पैदा करने के लिए खिलौनों, गैजेट्स और गेम्स की मदद ली जा सकती है।

दृढ़ता: जब बच्चे कुछ गलत करने से सीखते हैं तो यही दृढ़ता उनके जुनून को बढ़ाती है।

आशावाद: आशावादी बच्चे चुनौतियों और बाधाओं को दूर करने में खुद को काबिल पाते हैं और इसीलिए वे आगे चलकर सफल होते हैं।

इस कृति के शब्दांकन में आर्थिका सुवत्सलमती, सौ. ममता, सौ. नलिनी सौ. मनीषा (वर्दा), सौ. दीपिका, सौ. शिल्पा (चितरी) सौ. रूषमा, कु. मासुम आदि का सहयोग रहा।

भगवान् के सार्थक नामपरक स्तुति!

(चाल:-1 भातुकली... 2. रघुपति राघव...)

अनन्त गुणगण धाम हो! सर्वज्ञ, आपका वर्णन अतः न कर सके असर्वज्ञ।

तथापि भक्ति से कर रहा हूँ गुणगान, “वन्दे तद्गुणलब्धये” लक्ष्य सह॥ (1)

आपके गुणभाव (मान) से अनन्त होते, सार्थक नाम भी अनन्त होते।

अनन्तज्ञान अभी न मुझमें, (किन्तु) अनन्तज्ञान प्राप्ति हेतु वन्दना करूँ॥ (2)

सभी जानने से आप हो! सर्वज्ञ, घातीनाश से हो! अरिहन्त।

परमपद स्थित से हो! परमेष्ठी, ज्ञानलक्ष्मी प्राप्ति से लक्ष्मीपति॥ (3)

जिन में श्रेष्ठ होने जिनेन्द्र, अनन्त संसार नाशक अनन्तजित।

जगत् ज्येष्ठ होने से आप ऋषभ, मोक्ष पाने से शाश्वत् या शिव॥ (4)

विश्वशान्तिकर आप हो! शंकर, अनन्तगुणों के स्वामी हो! ईश्वर।

विश्वदृष्टा से हो! विश्वलोचन, ब्रह्मस्थित होने से आप ब्रह्मनिष्ठ॥ (5)

विश्वहित उपदेशक से हो! विश्वगुरु, परम उदार गुणधारी से आप पुरु।

अनन्त गुण-ज्ञानात्मा से अनन्तात्मा, तथाहि महिष्ठात्मा, निरुढात्मा, परमात्मा॥ (6)

विश्व के ज्ञाता से विश्वविज्ञानी, संशय-विपर्यास-अनध्यवसाय रिक्त सुज्ञानी।

तथाहि आप्त-विश्वनेता-जगन्नाथ, तव सम बनने हेतु 'कनक' करे वन्दना॥ (7)

ग.पु.कॉ. सागवाड़ा, दि-21/4/2022, रात्रि-12.18

जो आत्म साधना से अपने देवत्व को प्रकट कर लेता है, वही परमात्मा बन जाता है। इस मान्यता की पुष्टि "ऋग्वेद" (4/58-3) की निम्न ऋचा से होती है-

चत्वारि शृंगा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षेसप्तहस्ता को अस्य।

त्रिधा बद्धो 'वृषभो' रोरवीति महो देवो मर्त्या आ विवेश॥

अर्थात् जिसके चार शृंग (अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त चारित्र और अनन्त वीर्य) हैं, तीन पाद (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र) हैं, दो शीर्ष (केवल ज्ञान और मुक्ति) हैं और सात हाथ (सात व्रत) तथा मन, वचन और काय इन तीन योगों से बद्ध (संयत) है। उस वृषभ (श्री ऋषभदेव) ने घोषणा की है महादेव (परमात्मा) मनुष्य के भीतर ही आवास करता है।

अथर्ववेद (19/42/4) तथा यजुर्वेद में भी इस मान्यता के प्रमाण हैं।

1. जगत् के कर्ता हर्ता-

जथापश्चदुच्चैर्ज्वलत्पीठ मूर्च्छिन स्थितं देवदेवं चतुर्वक्त्रशोभम्।

सुरेन्द्रै नरेन्द्रै मुनीन्द्रैश्च वन्द्यं जगत्सृष्टिं संहारयोर्हे तुमादाम्॥ (12)

जो ऊँची और देदीप्यमान पीठिका के ऊपर विराजमान थे, देवों के भी देव थे, चारों ओर दिखने वाले चारमुखों की शोभा से सहित थे, सुरेन्द्र, नरेन्द्र और मुनीन्द्रों के द्वारा वंदनीय थे। जगत् की सृष्टि (मोक्ष मार्ग रूपी सृष्टि को उत्पन्न करने वाले) और संहारकर्ता (पापरूपी सृष्टि को संहार करने वाले) के मुख्य कारण थे।

2. स्वयंभू-

स्वयंभुवे नमस्तुभ्यमुत्पाद्यात्मानमात्मनि।

स्वात्मनैव तथोद्भूत वृत्तयेऽचिन्त्य वृत्तये॥ (66) आदिपुराण

हे नाथ! आप अपने आत्मा में अपने ही आत्मा के द्वारा, अपने आत्मा को उत्पन्न कर प्रकट हुए हैं, इसलिए आप स्वयंभू अर्थात् अपने आप उत्पन्न हुए कहलाते हैं। इसके सिवाय आपका माहात्म्य भी अचिन्त्य है, अतः आपको नमस्कार हो।

3. विश्व के स्वामी-

नमस्ते जगतां पत्ये लक्ष्मीभर्त्रे नमोऽस्तु ते।

विदांवर नमस्तुभ्यं नमस्ते वदतां वरं॥ (67)

आप तीनों लोकों के स्वामी हैं, इसलिए आपको नमस्कार हो और आप लक्ष्मी के भर्ता हैं इसलिए आपको नमस्कार हो, आप विद्वानों में श्रेष्ठ हैं इसलिए आपको नमस्कार हो और आप वक्ताओं में श्रेष्ठ हैं इसलिए आपको नमस्कार हो।

4. अनन्तजित्-

ध्यान द्रुघण निर्भिन्न घनघाति महातरुः।

अनन्त भव सन्तान ज्यादासीदनन्त जित्॥ (69)

आपने ध्यानरूपी कुठार से अतिशय मजबूत घातिया कर्म रूपी बड़े भारी वृक्ष को काट डाला है तथा अनन्त संसार की सन्तति को भी आपने जीत लिया है इसलिये आप अनन्तजित् कहलाते हैं।

5. मृत्युंजय-

त्रैलोक्य निर्जया वाप्तदुर्दर्थ मति दुर्जयम्।

मृत्युराजं विजित्यासीज्जिनमृत्युञ्जयो भवान्॥ (70)

हे जिनेन्द्र देव! तीनों लोकों को जीत लेने से जिसे भारी अहंकार उत्पन्न हुआ है और जो अत्यन्त दुर्जय है ऐसे मृत्युराज को भी आपने जीत लिया है, इसलिए आप मृत्युञ्जय कहलाते हैं।

6. त्रिपुरारि-

विधुताशेष संसार बन्धनो भव्य बान्धवः।

त्रिपुरारिस्त्व मीशासि जन्ममृत्यु जरान्त कृत्॥ (71)

आपने संसाररूपी समस्त बन्धन नष्ट कर दिये हैं, आप भव्य जीवों के बन्धु हैं, आप जन्म, मरण और बुढ़ापा तीनों का नाश करने वाले हैं, इसलिए आप त्रिपुरारि कहलाते हैं।

7. त्रिनेत्र-

त्रिकाल विषयाशेष तत्त्व भेदात् त्रिधोत्थितम्।

केवलाख्यं दधच्चक्षुस्त्रिनेत्रोऽसि त्वमीशितः॥ (72)

हे ईश्वर! जो तीनों काल विषयक समस्त पदार्थों को जानने के कारण तीन प्रकार से उत्पन्न हुआ कहलाता है, ऐसे केवलज्ञान नामक नेत्र को आप धारण कहते हैं इसलिए आप ही त्रिनेत्र कहलाते हैं।

8. अन्धकान्तक-

त्वामन्धकान्तकं प्राहुर्मोहान्धासुर मर्दनात्।

अर्ध ते नारयो यस्मादर्ध नारीश्वरोऽस्यतः॥ (73)

आपने मोहरूपी अन्धासुर को नष्ट कर दिया है, इसलिए विद्वान् लोग आपको ही अन्धकान्तक कहते हैं।

9. अर्धनारीश्वर-8 कर्मरूपी शत्रुओं में से आपके आधे अर्थात् चार घातिया कर्मरूपी शत्रुओं को ईश्वर नहीं है इसलिए आप अर्धनारीश्वर (अर्ध+न+अरि+ईश्वर=अर्धनारीश्वर) कहलाते हैं।

10. शिव-

शिवः शिवपदाध्यासाद् दुरितारि हरो हरः।

शंकरः कृतशं लोके शंभवस्त्वं भवन्सुखे॥ (74)

आप शिव पद अर्थात् मोक्षस्थान में निवास करते हैं इसलिए शिव कहलाते हैं।

11. हर-पापरूपी शत्रुओं का नाश करने वाले हैं इसलिए हर कहलाते हैं।

12. शङ्कर-लोक में शान्ति करने वाले हैं इसलिए शङ्कर कहलाते हैं।

13. संभव-सुख से उत्पन्न हुए हैं, इसलिए सम्भव कहलाते हैं।

14. वृषभ-

वृषभोऽसि जगज्जयेष्ठ पुरुः पुरुगुणोदयैः।

नाभयो नाभि संभूतेरिक्ष्वाकु कुलनन्दनः॥ (75)

जगत् में श्रेष्ठ हैं इसलिए 'वृषभ' कहलाते हैं।

15. पुरु-अनेक उत्तम गुणों का उदय होने से पुरु कहलाते हैं।

16. नाभेय-नाभिराज से उत्पन्न हुए हैं, इसलिए नाभेय कहलाते हैं।

17. इक्ष्वाकु कुलनन्दन-इक्ष्वाकुकुल में उत्पन्न हुए हैं, इसलिए इक्ष्वाकुकुलनन्दन कहलाते हैं।

18. सद्योजात-

स्वर्गावतरणेतुभ्यं सद्योजातात्मने नमः।

जन्माभिषेक रामाय वामदेव नमोऽस्तु ते॥ (78)

हे नाथ! आप स्वर्गावतरण के समय सद्योजात् अर्थात् शीघ्र ही उत्पन्न होने वाले कहलाये थे, इसलिए आपको नमस्कार हो।

19. वामदेव-आप जन्माभिषेक के समय बहुत सुन्दर जान पड़ते थे, इसलिए हे वामदेव! आपको नमस्कार हो।

20. ईश्वर-

सन्निष्क्रान्तवघोराय परं प्रशाममीयुषे।

केवलज्ञान संसिद्धावीशानाय नमोऽस्तु ते॥ (79)

दीक्षा कल्याणक के समय आप परम शान्ति को प्राप्त हुए और केवलज्ञान के प्राप्त होने पर परमपद को प्राप्त हुए तथा ईश्वर कहलाये। इसलिए नमस्कार हो।

21. विभु-

विश्वदृश्व विभुर्धाता विश्वेशो विश्वलोचनः।

विश्वव्यापी विधिर्वेधाः शाश्वतो विश्वतोमुखः॥ (102)

समस्त पदार्थों को देखने वाले हैं, इसलिए विश्वदृश्व हैं। केवलज्ञान की अपेक्षा सब जगह व्याप्त हैं अथवा सब जीवों को संसार से पार कराने में समर्थ हैं अथवा परमोत्कृष्ट विभूति से सहित हैं, इसलिए विभु हैं।

22. धाता-संसारि जीवों का उद्धार कर उन्हें मोक्षस्थान को धारण कराने वाले हैं, पहुँचाने वाले हैं अथवा मोक्षमार्ग की सृष्टि करने वाले हैं, इसलिए धाता कहलाते हैं।

23. विश्वेश-समस्त जगत् के ईश्वर हैं इसलिए विश्वेश कहलाते हैं।

24. विश्वलोचन-सब पदार्थों को देखने वाले हैं अथवा सबका हित सन्मार्ग का उपदेश देने के कारण सब जीवों के नेत्रों के समान हैं, इसलिए विश्वलोचन कहे जाते हैं।

25. विश्वव्यापी-संसार के समस्त पदार्थों को जानने के कारण आपका ज्ञान सब जगह व्याप्त है, इसलिए आप विश्वव्यापी कहलाते हैं।

26. विधि-आप समीचीन मोक्षमार्ग का विधान करने से विधि कहलाते हैं।

27. वेधा-धर्मरूप जगत की सृष्टि करने वाले हैं, इसलिए वेधा कहलाते हैं।

28. शाश्वत-सदा विद्यमान रहते हैं, इसलिए शाश्वत कहलाते हैं।

29. विश्वतोमुख-समवशरण में आपका मुख चारों दिशाओं में दिखता है अतः आप विश्वतोमुख अथवा जल की तरह पाप रूपी पंक को दूर करने वाले स्वच्छ तथा तृष्णा को नष्ट करने वाले हैं, इसलिए आप विश्वतोमुख कहे जाते हैं।

30. विश्वकर्मा-

विश्वकर्मा जगज्ज्येष्ठो विश्वमूर्तिर्जिनेश्वरः।

विश्वदृग् विश्वभूतेशो विश्वज्योतिनीश्वरः॥ (103)

आपसे कर्मभूमि की व्यवस्था करते समय लोगों की आजीविका के लिए असि, मसि आदि सभी कर्मों-कार्यों का उपदेश दिया था, इसलिए आप विश्वकर्मा कहलाते हैं।

31. जगज्ज्येष्ठ-आप जगत् में सबसे ज्येष्ठ अर्थात् श्रेष्ठ हैं, इसलिए जगज्ज्येष्ठ कहे जाते हैं।

32. विश्वमूर्ति-आप अत्यन्त गुणमय है अथवा समस्त पदार्थों के आकार आपके ज्ञान में प्रतिफलित हो रहे हैं, इसलिए आप विश्वमूर्ति हैं।

33. जिनेश्वर-कर्म रूप शत्रुओं को जीतने वाले सम्यग्दृष्टि आदि जीवों के आप ईश्वर हैं, इसलिए जिनेश्वर कहलाते हैं।

34. विश्वभूतेश-समस्त प्राणियों के ईश्वर हैं, इसलिये विश्वभूतेश कहे जाते हैं।

35. विश्वदृक्-आप संसार के समस्त पदार्थों का सामान्यावलोकन करते हैं, इसलिए विश्वदृक् कहलाते हैं।

36. विश्वज्योति-आपकी केवलज्ञानरूपी ज्योति अखिल संसार में व्याप्त है, इसलिए आप विश्वज्योति कहलाते हैं।

37. अनीश्वर-आप सबके स्वामी हैं किन्तु आपका कोई स्वामी नहीं है, इसलिये आप अनीश्वर कहे जाते हैं।

38. युगादि पुरुष-

युगादि पुरुषो ब्रह्मा पञ्च ब्रह्ममयः शिवः।

परः परतरः सूक्ष्मः परमेष्ठी सनातनः॥ (1)

आप इस कर्मभूमि रूपी युग के प्रारम्भ में उत्पन्न हुए थे, इसलिये आदि पुरुष कहे जाते हैं।

39. ब्रह्मा-केवलज्ञान आदि गुण आप में ब्रह्मण अर्थात् वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं, इसलिये आप ब्रह्मा कहे जाते हैं।

40. पंच ब्रह्ममय-आप पंच परमेष्ठी स्वरूप हैं, इसलिये पंच ब्रह्ममय कहलाते हैं।

41. शिव-शिव अर्थात् मोक्ष अथवा आनन्द रूप होने से शिव कहे जाते हैं।

उस परमध्यान में स्थित जीवों को जो वीतराग परमानन्द सुख प्रतिभासित होता है वही निश्चय मोक्षमार्ग का स्वरूप है। वह अन्य पर्यायवाची नामों से क्या-क्या कहा जाता है, सो कहते हैं। वही शुद्ध आत्म स्वरूप है, वही परमात्मा का स्वरूप है, वही एक देश में प्रकटतारूप विवक्षित एक शुद्ध-निश्चयनय से निज-शुद्ध-आत्मानुभाव से उत्पन्न सुख रूपी अमृत-जल के सरोवर में राग आदि मलों से रहित होने के कारण परमहंस स्वरूप है। परमात्मा ध्यान के भावना की नाममाला में इस एक देश व्यक्ति रूप शुद्धनय के व्याख्यान को यथासंभव सब जगह लगा देना चाहिये। ये नाम एकदेश शुद्ध निश्चयनय से अपेक्षित है।

वही परब्रह्म स्वरूप है, वही परमविष्णु है, वही परमशिवरूप है, वही परमबुद्धस्वरूप है, वही परमजिनस्वरूप है, वही परम निज-आत्मोपलब्धिरूप सिद्धस्वरूप है, वही निरंजनस्वरूप है, वही शुद्धात्मदर्शन है, वही परम अवस्था स्वरूप है, वही ध्यान भावनारूप है, वही शुद्ध चारित्र है, वही परम पवित्र है, वही अंतरंग तत्त्व है, वही परम तत्त्व है, वही शुद्ध आत्म द्रव्य है, वही परम ज्योति है,

वही शुद्ध वही निर्मल स्वरूप है, वही शुद्ध आत्म द्रव्य है, वही परम ज्योति है, आत्मानुभूति है, वही आत्मा की प्रतीति है, वही आत्म-संवित्ति आत्म-संवेदन है, वही निज आत्मस्वरूप की प्रतीति है, वही आत्म-संवित्ति आत्म-संवेदन है, वही निज आत्मस्वरूप की प्राप्ति है, वही नित्य पदार्थ की प्राप्ति है, वही परम-समाधि है, वही परम-आनंद है, वही नित्य आनंद है, वही स्वाभाविक आनंद है, वही सदानंद है, वही शुद्ध आत्म पदार्थ के अध्ययन रूप है, वही परम स्वाध्याय है, वही निश्चय मोक्ष का उपाय है, वही एकाग्र चिंता निरोध है, वही परमज्ञान है, वही शुद्ध उपयोग है, वही परम-योग समाधि है, वही भूतार्थ है, वही परमार्थ है, वही निश्चय ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप-वीर्यरूप निश्चय पंचाचार है, वही समयसार है, वह ही अध्यात्मसार है, वही समता आदि निश्चय षट्-आवश्यक स्वरूप है, वह ही अभेद रत्नत्रय स्वरूप है वही वीतराग सामायिक है, वह ही परमशरणरूप उत्तम मंगल है, वही केवल ज्ञानोत्पत्ति का कारण है, वही समस्त कर्मों के क्षय का कारण है, वही निश्चय दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, आराधना स्वरूप है, वही परमात्मा भावनारूप है, वही परम अद्वैत है, वही अमृतस्वरूप परमधर्मध्यान है, वही शुक्लध्यान है, वही राग आदि विकल्परहित ध्यान है, वही निष्फल ध्यान है, वही परम स्वास्थ्य है, वही परम वीतरागता है, वही परम-समता है, वही परम एकत्व है, वही परम भेदज्ञान है, वही परम समरसी भाव है, इत्यादि समस्त रागादि विकल्प-उपाधि रहित, परम आह्लाद एक-सुख लक्षणमयी ध्यान स्वरूप निश्चय मोक्षमार्ग को कहने वाले अन्य बहुत से पर्यायवाची नाम परमात्म तत्त्व ज्ञानियों के द्वारा जानने योग्य होते हैं।

प्रेरणा

हम तब तक कुछ नहीं बदल सकते जब तक कि हम उसे स्वीकार नहीं कर लेते। -कार्ल जुंग ए विश्वप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक

अथ सर्वज्ञशतम्

सर्वज्ञः सर्ववित्सर्वदर्शी सर्वावलोकनः।

अनन्तविक्रमोऽनन्तवीर्योऽनन्तसुखात्मकः॥ (18)

अनन्तसौख्यो विश्वज्ञो विश्वदृश्वोऽखिलार्थदृक्।

न्यक्षद्विष्वतश्चक्षुर्विष्वचक्षुरशेषवित्॥ (19) पं. आशाधर

अर्थ-हे भगवान्, आप सर्वज्ञ हैं, सर्ववित् हैं, सर्वदर्शी है, सर्वावलोकन हैं, अनन्तविक्रम हैं, अनन्तवीर्य हैं, अनन्तगुणात्मक हैं, अनन्तसौख्य हैं, विश्वज्ञ हैं, विश्वदृशवा हैं, अखिलार्थदृक् हैं, न्यक्षदृक् हैं, विश्वतश्चक्षु हैं, विश्वचक्षु हैं और अशेषवित् हैं। **व्याख्या**-हे भगवान्, आप त्रिलोक-त्रिकालवर्ती सर्वद्रव्य-पर्यायात्मक वस्तुस्वरूप के जानने वाले हैं, अतः सर्वज्ञ हैं। (1) सर्व लोक और अलोक के वेत्ता हैं, अतः सर्ववित् हैं (2)। सर्व चराचर जगत् के देखने वाले हैं, अतः सर्वदर्शी हैं (3)। सर्व-पदार्थ-जात के अवलोकन करने के कारण सर्वावलोकन कहलाते हैं (4)। अनन्त पराक्रम के धारक होने से अनन्त-विक्रम कहे जाते हैं। अर्थात् तीर्थकर या अरिहंत दशा में आप अपने शरीर की सामर्थ्य के द्वारा सुमेरु पर्वत को भी उखाड़कर फेंकने की सामर्थ्य रखते हैं और अपने ज्ञान के द्वारा सर्व पदार्थों के जानने-देखने की शक्ति से सम्पन्न हैं। अथवा अनन्त अलोकाकाश में विक्रम अर्थात् ज्ञान के द्वारा गमन करने की सामर्थ्य के धारक हैं। अथवा अनन्त नाम शेषनाग और आकाश-स्थित सूर्य, चन्द्रमादिक का भी है, सो आप ने अपने विशेष प्रभाव के द्वारा उन्हें अपने क्रम अर्थात् चरण में नम्रीभूत किया है। अथवा क्रम नाम चारित्र का भी है, आप यथाख्यातरूप अनन्त विशिष्ट चारित्र के धारक हैं, अतः अनन्तविक्रम इस नाम के धारक हैं (5)। अनन्त बल के धारी होने से अनन्तवीर्य कहलाते हैं (6)। आपका आत्मा अनन्त सुखस्वरूप है, अतः आप अनन्तसुखात्मक हैं। अथवा आपने निश्चयनय से आत्मा को अनन्त सुखशाली हैं, अतः आप अनन्तसुखात्मक कहलाते हैं (7)। अनन्त सौख्य से युक्त होने के कारण आपका नाम अनन्तसौख्य है (8)। आप समस्त विश्व को जानते हैं, अतः विश्वज्ञ हैं (9)। आपने सारे विश्व को देख लिया है, अतः आप विश्वदृशवा हैं (10)। अखिल अर्थों के देखने के कारण आप अखिलार्थदृक् कहलाते हैं (11)। न्यक्ष नाम सर्वका है, आप सर्व लोकालोक को देखते हैं, अतः न्यक्षदृक् हैं। अथवा अक्ष नाम इन्द्रिय का है, आप इन्द्रियों की सहायता के बिना ही सर्व के देखने वाले हैं, अतः न्यक्षदृक् कहलाते हैं (12)। आप केवल ज्ञान और केवल दर्शनरूप चक्षुओं के द्वारा सर्व विश्व को देखने वाले हैं अतः विश्वतश्चक्षु और विश्वचक्षु इन दो नामों से पुकारे जाते हैं (13-14)। तथा अशेष अर्थात् समस्त लोक और अलोक के वेत्ता होने से अशेषवित् कहे जाते हैं (15)।

आनन्दः परमानन्दः सदानन्दः सदोदयः।

नित्यानन्दो महानन्दः परानन्दः परोदयः॥ (20)

परमोजः परंतेजः परंधाम परंमहः।

प्रत्यग्ज्योतिः परंज्योतिः परंब्रह्म परंरहः॥ (21)

प्रत्यागात्मा प्रबुद्धात्मा महात्मात्ममहोदयः।

परमात्माः प्रशान्तात्मा परात्मात्मनिकेतनः॥ (22)

अर्थ-हे स्वामिन्, आप आनन्द हैं, परमानन्द हैं, सदानन्द हैं, सदोदय हैं, नित्यानन्द हैं, महानन्द हैं, परानन्द हैं, परोदय हैं, परमोज हैं, परंतेज हैं, परंधाम हैं, परंमह हैं, प्रत्यग्ज्योति हैं, परंज्योति हैं, परब्रह्म हैं, परंरह हैं, प्रत्यागात्मा हैं, प्रबुद्धात्मा हैं, महात्मा हैं, आत्ममहोदय हैं, परमात्मा हैं, प्रशान्तात्मा हैं, परात्मा हैं, और आत्मनिकेतन हैं।

व्याख्या-हे अनन्त सुख के स्वामी जिनेन्द्रदेव, सर्वदा सर्वाङ्ग में आप समृद्धिशाली हैं, अतः आनन्दरूप हैं (16)। परम अर्थात् उत्कृष्ट आनन्द के धारक हैं, अतः परमानन्द हैं (17)। सदा-सर्वकाल सुखरूप होने से सदानन्द हैं, अथवा सत् अर्थात् समीचीन अविनाशी आनन्दरूप हैं, अतः सदानन्द कहलाते हैं (18)। सदा उदयरूप हैं, अर्थात् किसी भी समय आपकी ज्ञानज्योति अस्तंगत नहीं होती है, अतः सदोदय हैं। अथवा सदाकाल उत्कृष्ट अय अर्थात् जगद्-हितकारी शुभावह विधि के कर्ता होने से भी सदोदय कहलाते हैं (19)। नित्य आनन्दरूप होने से नित्यानन्द कहे जाते हैं (20)। महान् आनन्द के धारक हैं, अतः महानन्द हैं। अथवा भव्य जीव आपकी मह अर्थात् पूजा करने से आनन्द को प्राप्त होते हैं, इसलिए भी आप महानन्द कहलाते हैं (21)। पर अर्थात् उत्कृष्ट आनन्द के धारक हैं, अतः परमानन्द हैं। अथवा पर अर्थात् अन्य सर्व प्राणियों को आनन्द के उत्पन्न करने वाले हैं, इसलिए भी परमानन्द कहलाते हैं (22)। पर उत्कृष्ट अभ्युदयशाली होने से परोदय कहलाते हैं। अथवा पर प्राणियों के उत्-उत्कृष्ट अय अर्थात् तीर्थकरादि विशिष्ट पुण्य उत्पादक होने से भी परोदय कहे जाते हैं (23)। परम अतिशयशाली ओज अर्थात् उत्साह के धारक हैं, अतः परमोज हैं (24)। परम तेज के धारक होने से परंतेज कहलाते हैं

(25)। धाम औरमह शब्द भी तेज अर्थ के वाचक हैं। हे भगवान्! आप परम धाम और परममहके धारक होने से परंधाम और परंमह कहे जाते हैं (26-27)। प्रत्यक् अर्थात् पाश्चात्य ज्योति के धारक हैं अतः प्रत्यग्ज्योति हैं: अर्थात् आपके पीछे कोटि रवि की प्रभा को लज्जित करने वाला भामण्डल रहता है (28)। परम ज्योति के धारक होने से परंज्योति कहलाते हैं (29)। परमब्रह्म अर्थात् केवलज्ञान के धारक हैं, अतः परंब्रह्म हैं (30)। रह नाम गुप्त और तत्त्व का है, आपका स्वरूप अत्यन्त गुप्त अर्थात् सूक्ष्म और अतीन्द्रिय है, अतः आप परंरह कहलाते हैं (31)। प्रत्यक् शब्द श्रेष्ठ का और आत्मा शब्द बुद्धि का भी वाचक है। आप सर्वश्रेष्ठ बुद्धि के धारक हैं, अतः प्रत्यात्मा हैं (32)। आपका आत्मा सर्वकाल प्रबुद्ध अर्थात् जाग्रत रहता है, अतः आप प्रबुद्धात्मा हैं (33)। आपका आत्मा महान् है अर्थात् ज्ञान की अपेक्षा लोकालोक में व्यापक हैं, अतः आप महात्मा हैं (34)। आप आत्मा के महान् उदयशाली तीर्थंकर पद को प्राप्त हैं, अतः आत्ममहोदय हैं (35)। आपका आत्मा परम केवलज्ञान का धारक है, अतः आप परमात्मा हैं (36)। आपने घातिया कर्मों का क्षय कर उन्हें सदा के लिए प्रशान्त कर दिया है, अतः आप प्रशान्तात्मा हैं (37)। पर अर्थात् उत्कृष्ट आत्मा होने से परात्मा कहलाते हैं। अथवा एकेन्द्रियादि सर्व पर प्राणियों के आत्माओं को भी निश्चयनय से आपके अपने समान बताया है, अतः आप परात्मा कहे जाते हैं (38)। आपके आत्मा का निकेतन अर्थात् रहने का आवास (घर) आपका आत्मा ही है, बहिर्जनों के समान शरीर नहीं, अतः आप आत्मनिकेतन कहलाते हैं।

परमेष्ठी महिष्ठात्मा श्रेष्ठात्मा स्वात्मनिष्ठितः।

ब्रह्मनिष्ठो महानिष्ठो निरूढात्मा दृढात्मदृक्॥ (23)

एकविद्यो महाविद्यो महाब्रह्मपदेश्वरः।

पंचब्रह्ममयः सार्वः सर्वविद्येश्वरः स्वभूः॥ (24)

अर्थ-हे परमेश्वर! आप परमेष्ठी हैं, महिष्ठात्मा हैं, श्रेष्ठात्मा हैं, स्वात्मनिष्ठित हैं, ब्रह्मनिष्ठ हैं, महानिष्ठ निरूढात्मा हैं, और दृढात्मदृक् हैं।

व्याख्या-हे परमेष्ठिन! आप परम अर्थात् इन्द्र नागेन्द्र, धरणेन्द्र, गणधरादि से वंद्य आर्हन्त्य पद में तिष्ठते हैं, अतएव परमेष्ठी कहलाते हैं (40)। अतिशय महान्

आत्मस्वरूप के धारक हैं, अतः महिष्ठात्मा हैं। अथवा ईषत्प्राग्भार नामक आठवीं मोक्षमही पर आपका आत्मा विराजमान हैं, इसलिए भी आप महिष्ठात्मा हैं (41)। श्रेष्ठ शब्द अति प्रशस्त और वृद्ध या व्यापक अर्थ का वाचक है। आपका आत्मा अति प्रशस्त है और केवलज्ञान की अपेक्षा सर्वव्यापक है, अतः श्रेष्ठात्मा हैं (42)। आप स्व अर्थात् निज शुद्ध-बुद्धस्वरूप आत्मास्वभाव में अतिशय करके अवस्थित हैं, उससे कदाचित् भी विचलित नहीं होते, अतः स्वात्मनिष्ठित कहे जाते हैं (43)। ब्रह्म अर्थात् अनन्तज्ञानी आत्मा में विराजमान होने से ब्रह्मनिष्ठ कहलाते हैं (44)। महान् निष्ठवान् हैं अर्थात् परम उदासीनतारूप यथाख्यात-चारित्र के धारक हैं, अतः महानिष्ठ कहे जाते हैं (45)। निरूढ अर्थात् त्रिभुवन में आपका आत्मा प्रसिद्ध है, अतः निरूढात्मा हैं (46)। दृढात्मा अर्थात् निश्चल स्वरूप वाले अनन्त दर्शन के धारक हैं, अतः दृढात्मदृक् हैं (47)।

अनन्तधीरनन्तात्माऽनन्तशक्तिरनन्तदृक्।

अनन्तानन्तधीशक्तिरनन्तचिदनन्तमुत्।। (25)

अर्थ—हे परमेश्वर! आप एकविद्य हैं, महाविद्य हैं, महाब्रह्मपदेश्वर हैं, पंचब्रह्ममय हैं, सार्व हैं, सर्वविद्येश्वर हैं, स्वभू हैं, अनन्तधी हैं, अनन्तात्मा हैं, अनन्तशक्ति हैं, अनन्तदृक् हैं, अनन्तान्तधीशक्ति हैं, अनन्तचित् हैं और अनन्तमुत् हैं।

व्याख्या—एक अर्थात् अद्वितीय केवलज्ञानरूप विद्या के धारक होने से एक विद्य हैं (48)। केवलज्ञानलक्षण महाविद्या के धारी हैं अतः महाविद्य कहलाते हैं (49)। महाब्रह्मरूप मोक्षपद के स्वामी होने से महाब्रह्मपदेश्वर कहलाते हैं। अथवा हरि, हर, ब्रह्मादि लोक-प्रसिद्ध महादेवता भी आपके पद-पद्यों की सेवा करते हैं, और आप महाब्रह्मपद अर्थात् गणधरादिकों से युक्त समवसरण के ईश्वर हैं, इसलिए भी महाब्रह्मपदेश्वर कहलाते हैं (50)। आप पाँचों ज्ञानों के निष्पन्न हैं, अथवा पाँचों परमेष्ठियों के गुणों से सम्पन्न हैं, अतएव पंचब्रह्ममय हैं (51)। सर्व प्राणियों के हितैषी हैं, अतः सार्व कहलाते हैं (52)। आप लोक-प्रसिद्ध स्वसमय-परसमय सम्बन्धी सर्व विद्याओं के ईश्वर हैं, तथा परमार्थ-स्वरूप निर्मल केवलज्ञान रूप विद्या के स्वामी हैं, अतः सर्वविद्येश्वर हैं (53)। अरहन्त-अवस्था में समवसरणस्वरूप और सिद्ध-दशा में सिद्धशिलारूप सुन्दर भूमि पर विराजमान होने के कारण सुभू

कहलाते हैं (54)। अनन्तपरिमाण वाली केवलज्ञान लक्षण बुद्धि के धारक हैं, अतः अनन्तधी हैं। अथवा अनन्तकाल तक एक स्वरूप रहने वाले तथा अनन्त सुख से संयुक्त मोक्ष में ही निरन्तर बुद्धि के लगे रहने से भी अनन्तधी कहलाते हैं। अथवा अनन्त नाम शेषनाग का भी है, उसकी बुद्धि निरन्तर आपके गुण-चिन्तन में ही लगी रहती है, इसलिए भी आप अनन्तधी कहे जाते हैं। अथवा दीक्षा के समय अनन्त सिद्धों में आपकी बुद्धि लगी रही, अतः आपका अनन्तधी नाम सार्थक है (55)। अनन्त केवलज्ञान से युक्त आपका आत्मा है, अतः आप अनन्तात्मा हैं। अथवा जिसका कभी अन्त न हो, उसे अनन्त कहते हैं, आपकी शुद्ध दशा को प्राप्त आत्मा का कभी विनाश नहीं होगा, अतः आप अनन्तात्मा कहलाते हैं। अथवा आपके मत में अनन्त आत्माएँ बतलाई गई हैं (56)। आपकी शक्ति अनन्त है, अतः आप अनन्तशक्ति कहलाते हैं (57)। आपका केवलदर्शन भी अनन्त है, अतः आप अनन्तदृक् हैं (58)। आपके ज्ञान की शक्ति अनन्तानन्त हैं, अतः आप अनन्तानन्तधीशक्ति कहलाते हैं (59)। आपका चित् अर्थात् केवलज्ञान अनन्त है, अतः आप अनन्तचित् हैं (60)। आपका मुत् अर्थात् आनन्द-सुख भी अनन्त है, अतः आप अनन्तमुत् भी कहे जाते हैं (61)।

स्व-उपलब्धि ही सर्व उपलब्धि

अध्यात्म रहस्यवादी कविता

(स्व-आत्म सम्बोधन एवं मेरा अन्तिम लक्ष्य)

(चाल: कसमें वादे प्यार वफा सब बाते हैं...)

तू ही तेरा परम सत्य है...अन्य सब सहयोग है

तू ही तेरा आदि अन्त...मध्य शाश्वतिक/(सार्वभौम) शाश्वत सत्य है...(स्थायी/धत्ता)...

जब से है ऽऽ ब्रह्माण्ड भी यह...तब से तेरा भी अस्तित्वऽऽ

अनादि अनन्तऽऽशाश्वतिक यह...तेरा भी हैऽऽ सह-अस्तित्व

तू ही तेरा परम सत्य...(1)...

तू तो चेतनऽऽ ज्ञानानन्दमय...विश्व/(ब्रह्माण्ड) उभय रूप हैऽऽ

तेरे समान हीऽऽ अनन्त चेतन...और भी अचेतन रूप हैऽऽ

तू ही तेरा परम सत्य...(2)...

अणु से लेकर ऽऽ निहारिका तक...अनन्त अचेतन रूप हैऽऽ

निगोदिया से ऽऽ नित्यानन्दमय...अनन्त चिन्मय रूप हैऽऽ

तू ही तेरा परम सत्य...(3)...

तेरा अस्तित्व ऽऽ यदि न होता...अन्य से (तेरा) क्या लाभ है ऽऽ

तुझे तू ही ऽऽ यदि न पाया/(मिला) तो...अन्य लाभ क्या लाभ है ऽऽ

तू ही तेरा परम सत्य...(4)...

यदि शरीर में ऽऽ तू न रहा तो...शरीर जड़ का पिण्ड हैऽऽ

जलाओ गाढो ऽऽ या फेंक दो...तुझ से नहीं सम्बन्ध हैऽऽ

तू ही तेरा परम सत्य...(5)...

ऐसा ही तेरा ऽऽ अस्तित्व कारण...विश्व/(ब्रह्माण्ड) अस्तित्ववान् हैऽऽ

अन्यथा स्व ऽऽ अस्तित्व बिन...तेरे लिए सत्ता शून्य है ऽऽ

तू ही तेरा परम सत्य...(6)...

तू है ज्ञाता ऽऽ ब्रह्माण्ड ज्ञेय...ज्ञाता बिन न ज्ञेय है ऽऽ

ज्ञाता-ज्ञेय ऽऽ उभय सम्बन्ध...ज्ञाता से ज्ञेय अनुबन्ध है ऽऽ

तू ही तेरा परम सत्य...(7)...

यथा दीप ऽऽ स्व-पर प्रकाशी...ज्योति से प्रकाशित द्रव्य है ऽऽ

द्रव्य से द्वीप ऽऽ न प्रकाशित है...तथा ही ज्ञान व ज्ञेय है

तू ही तेरा परम सत्य...(8)...

इसीलिये तो ऽऽ स्वयं को जानो...ब्रह्माण्ड/(विश्व) बनेगा ज्ञेय हैऽऽ

स्वज्ञान हेतु ऽऽ अनन्त ज्ञान...जिससे ब्रह्माण्ड ज्ञेय है

तू ही तेरा परम सत्य...(9)...

स्वात्मोपलब्धि ऽऽ सर्वोपलब्धि...यह आध्यात्मिक सार हैऽऽ

‘कनकनन्दी’ का ऽऽ सर्वस्व यह...अन्य तो मिथ्या मोह हैऽऽ

तू ही तेरा आदि अन्त...(10)...

हे दिलदार ! स्वयं को पाओ! (आह्वान गीत)

(विश्व के दिलदारों के लिए आह्वान!)

(मेरा दृष्टि में दिलदार)

चलो दिलदार चलो-संकीर्णता दूर करो/(संकीर्ण से पार चलो) SSS
भेद-भाव दूर करो-उदार भाव धरो SSS
अपना कोई नहीं-पराया कोई नहीं
उदार जनों को-वसुधा गृह होई-चलो...
बड़ों की भक्ति करो-छोटों से नेह धरो
सभी से मैत्री करो-जीवों की रक्षा करो...चलो...
रोगी की सेवा करो-वैश्विक भाव धरो
आध्यात्मिकता युक्त-समस्त क्रिया करो...चलो...
पवित्र भाव धरो-कषाय दूर करो
सत्य व समता से-कष्टों को पार करो...चलो...
संकट आने पर-धैर्य को नहीं छोड़ो
धैर्य से संकटों को-कुचल कर चलो...चलो...
मोह व अज्ञान को-आत्म-ज्योति/(बल/शक्ति) से नाशो/(हनो)
भौतिकता से परे-आत्मिक सुख पाओ...चलो...
अनादिकाल से तो-अनन्त जन्म लिया
राग-द्वेष व मोह-अज्ञानता को पाला...चलो...
तन मन धन को-अपना रूप माना
इसके निमित्त से-अनेक पाप क्रिया...चलो...
शोषण अत्याचार-अनाचार भी क्रिया
भौतिक सुख हेतु-बहु अनर्थ किया...चलो...
परम सत्य जानो-आत्मा/(स्वयं) को पहिचानों
स्वयं की प्राप्ति हेतु-शोध-बोध भी करो...चलो...
आत्मिक साधना से-स्वयं की प्राप्ति करो
स्वयं की प्राप्ति हेतु-सर्वविभाव छोड़ो...चलो...

आत्मा की प्रतीती के उपाय एवं अनुभव

(चाल: रातकली)....

धन्य हमारे भाग्य/(भाव) जगे हैं-सत्य-तथ्य का ज्ञान (जो) करे है।
त्याग के मोह-माया लोभ प्रपञ्च को-आत्म-तत्त्व का भान करे हैं।। (टेक...)
छोड़ के संकीर्ण पन्थ परम्परा-तर्क-कुतर्क शमन करे है।
भौतिकवाद व विज्ञान छोड़कर...आत्मानुभव से प्रतीती करे है।।...(1)
अनेकान्त व नय प्रमाण से...कर्म सापेक्ष से गमन करे है।
वस्तु स्वरूप को लक्ष्य में रखकर...गुण-पर्यायों से चिन्तन करे है।।...(2)
जीव समास रूपी शरीर विकास...गुणस्थान रूपी आत्मा विकास।
उत्पाद व्यय ध्रौव्य सदद्रव्य लक्षणम्...सच्चिदानन्द को प्रमुख करे है।।...(3)
आत्म प्रतीती न होती है केवल...मिथ्या धार्मिक-क्रिया-काण्ड से।
तोता रटन्त रूपी धार्मिक ग्रन्थों से...जब न हो विशुद्धि आत्म-भाव से।।...(4)
आत्म श्रद्धान युक्त आत्म विज्ञान से...होता जब सद आचरण है।
समता से युक्त ध्यान जब होता...होता तब आत्म-अनुभवन है।।...(5)

मेरे लक्ष्य-साधना व उपलब्धि

(चाल: छोटी-छोटी गैया..., तुम दिल की...)

अज्ञान मोही व स्वार्थी जीवों में...सदा मुझे रहना है निर्लिप्त...
यथा पंक में पंकज के सम...सदा मुझे रहना है निर्लिप्त...(स्थायी)...
घोर अंधेरा में दीपक समान...मुझे बनना है सदा प्रकाशित...
व्यापक अंधेरा में भी दीपक सम...नहीं होना है कभी पराजित...
सती के समान अचल रहूँ...लोभ-भय-राग व काम से...
अभंगुर बनूँ मैं वज्र के सम...अपेक्षा-उपेक्षा व दवाब से...(1)...
अमोघ वाण सम लक्ष्य में ही चलूँ...सूर्य समान 'मैं' तेजस्वी बनूँ...
समता-शांत-शीतल 'मैं' बनूँ...यथा वीतरागी श्रमण तपस्वी...
मृदु व मधुर बनूँ मलाई सम...सुगंधित बनूँ यथाहि मलय चन्दन...

स्निग्ध बन्नूँ मैं गाय घृत सम...सरल शिशु सम मनभावन...(2)...

स्व-दुर्गुण कर्तक बन्नूँ कैँची सम...मिलापक/(संगठक) बन्नूँ मैं सुई सम...

गाय सम बन्नूँ मैं वात्सल्यधारी...फलप्रद वृक्ष सम परोपकारी...

बन्नूँ सत्यग्राही निस्पृह निराडम्बर...आत्मा में ही हो जाऊँ स्थिर...

स्व-अनन्त आत्म वैभव 'मैं' पाऊँ... 'कनक' 'मैं' बन्नूँ सत्य-शिव-सुन्दर...(3)...

'मैं' हूँ अमृत स्वरूप

(चाल: शास्त्रीय राग..., मन तड़पत..., बिन गुरु...)

'मैं' (तो) अमृत हूँ...कभी न मरता...

'मैं' अविनाशी...तन तो विनाशी...

मेरा मरण...कभी न होता...(ध्रुवप्रद)...

यथा आकाश में बादल की स्थिति...उमड़-घुमड़ कर नाश होती...

किन्तु आकाश तो शाश्वत रहता...तथाहि मैं कभी न मरता...(1)...

जन्म-मरण व बालक वृद्ध दशा...यह सब तन की होती अवस्था...

कर्मजनित यह सब अवस्था...मेरी तो सच्चिदानन्द दशा...(2)...

राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोध सभी...मेरी न होती शुद्ध दशा...

तन-मन-इन्द्रिय परे मेरी दशा...शुद्ध-बुद्ध-आनंद अवस्था...(3)...

अज्ञान-मोह से 'मैं' मुझे न जाना...तन-मन-अक्ष को 'मैं' माना...

सत्ता-सम्पत्ति व प्रसिद्धि डिग्री को... 'मैं' मानकर भ्रम कीना...(4)...

इसी से ही मुझे प्राप्त हुए तन...अनंत जन्म-मरण भी कीना...

अभी 'मैं' मुझको 'मैं' रूप जाना...अतः 'कनक' 'मैं' को अमृत माना...(5)...

'मैं' ही मेरी समस्त अवस्था में...

आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य।

आदा पच्चक्खवाणे आदा मे संवरे जोगे।। (18) नियमसार

मेरे दर्शन, ज्ञान और चारित्र में तथा प्रत्याख्यान में एवं संवर में और ध्यान के समय में केवल आत्मा ही आत्मा है।

मैं निर्विकल्प समाधि अथवा परम सामायिक या परम ध्यान की प्राप्ति के लिए भोगाकांक्षा, निदानबंध और शल्य आदि भावों से रहित उस शुद्धात्मा का ध्यान करने का पुरुषार्थ करता हूँ, जो स्पष्ट रूप से मेरा एक शुद्धात्मा है, सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र, प्रत्याख्यान, संवर और योग इन सब ही भावनाओं में मेरा एक आत्मा ही है।

कम्मस्स य परिणामं णोकम्मस्स य तहेव परिणामं।

ण करेदि एयमादा जो जाणदि सो हवदि णाणी।। (80) स.सार

यह आत्मा उपादान रूप से कर्म के परिणाम का और नोकर्म के परिणाम का करनेवाला नहीं है। इस प्रकार जो जानता है अर्थात् समाधिस्थ होकर अनुभव करता है, वह ज्ञानी होता है।

सर्वज्ञ V/S अल्पज्ञ

(सर्वज्ञ जानते अनन्त परम सत्य तो असर्वज्ञ नहीं जानते अनन्त परम सत्य) एक सूक्ष्म जीव को भी पूर्णतः सर्वज्ञ को छोड़कर अल्पज्ञ नहीं जान सकते)

(चाल:-1. भातुकली... 2. क्या मिलिए...)

अति गहन है सर्वज्ञ ज्ञान जिसे न जान सकते अल्पज्ञ।

सर्वज्ञ जानते हैं मूर्तिक-अमूर्तिक चेतन से ले अचेतन।।

त्रिकालवर्ती शुद्धाशुद्ध द्रव्यगुण पर्यायों को जानते सर्वज्ञ।

अभी तक भौतिक वैज्ञानिक पाँच प्रतिशत जानते भौतिक।। (1)

जीव वैज्ञानिक से ले मनवैज्ञानिक नहीं जानते हैं शुद्धात्मा।

अभी तक वे जानते हैं जीनोम से ले चेतनादि तीन मन।।

इन से भी परे हैं अनन्त परमसत्य शुद्धाशुद्ध चेतन व अचेतन।

हर जीव में है अनन्तज्ञानदर्शनसुखवीर्य भले अल्पज्ञ में नहीं प्रगट।। (2)

एक भी जीव को आधुनिक वैज्ञानिक तक न पूर्णतः जानते।

उसमें कितने परमाणु से ले रागद्वेषमोहादि भी रहते।।

भले पूर्व से उत्तरोत्तर विज्ञान में सूक्ष्म व्यापक ज्ञान हो रहे हैं।
किन्तु एक सूक्ष्म वायरस को भी पूर्णतः न जानते ऐसा भी मानते हैं॥ (3)
एक सूक्ष्म वायरस का शरीर भी अनन्तानन्त परमाणु से निर्मित है।
शक्ति रूप में अनन्तज्ञानदर्शनसुख वीर्यादि गुण निहीत है ॥
इसके साथ-साथ भी उस में अनन्त क्रोधमानमाया लोभ मोह हैं।
एक सुदृष्टि शेर चित्ता सर्प गण्डा (हिप्पो) व नारकी में इतने क्रोधादि नहीं है॥ (4)
पाण्डव, राम आदि युद्ध करते हुए भी निगोदिया सम न पापी है।
“भाव कलंक सुपहुरा निगोदवास न विमुच्यते” कहा सर्वज्ञ देव ने॥
स्थूल पंच पाप व सप्त व्यसन बिना भी वे होते नारकी से भी पापी।
नारकी तो सञ्जी पंचेन्द्रिय से ले हो सकते क्षायिक सुदृष्टि सुज्ञानी॥ (5)
ऐसा ही सर्वत्र जानने योग्य इस हेतु भावशुद्धि श्रद्धा प्रज्ञा विधेय।
आगम अनुभव विज्ञान से जानकर सर्वज्ञ बनना ही “कनक” ध्येय॥
तथापि भद्रमिथ्यादृष्टि या भद्रपरिणामी होता विधेय।
“स्वभाव मारद्वं च” से ज्ञात होता है भद्रपरिणामी होते देव या मानव॥ (6)
भद्रमिथ्यादृष्टि तो प्रथमोपशम से ले क्षायिक सम्यक्त्वी होते हैं।
जिससे वे श्रावक व श्रमण बनकर स्वर्ग-मोक्ष को पाते हैं॥ (7)

ग.पु.कॉ. सागवाड़ा 20-4-2022 पूर्वाह्न-9.41 व 12.50

संदर्भ-

संवेदनशील होते हैं पौधे-पुरी कहते हैं कि यह कोई अंधविश्वास नहीं है।
वैज्ञानिक अनुसंधान के बाद यह बात सामने आई थी कि पौधे भी संवेदनशील होते
हैं। नोबल पुरस्कार प्राप्त वैज्ञानिक जे.सी. बसु के शोध-नतीजों में पौधों की
संवेदनाओं का जिक्र करते कहा गया है कि शांत और धीमे संगीत की तरंगें पौधों
से टकराती है तो स्पन्दन होता है। बस इसी तथ्य के आधार पर यह प्रयोग किया
गया और इसमें काफी हद तक सफलता भी मिली।

यह भी है वैज्ञानिक सच-मंदिरों के इर्द-गिर्द पीपल, बिल्व पत्र, चंदन,
रूद्राक्ष सरीखे पौधे अन्य जगह की तुलना में तेजी से पनपते है। शांत माहौल और

घंटियों की गूँज और भजन-कीर्तन उनके लिए बड़े प्रेरक हैं, पौधों पर बच्चे हाथ फ़िराए तो इनमें स्पन्दन सहज ही हो जाता है, सड़क किनारे लगाये पौधों में आधे आकार ही नहीं ले पाते। बढ़ने वाले पेड़ भी आयु से पहले ही झुक जाते हैं। कोलाहल और प्रदूषित जल वाले हिस्सों में पौधे पनपना मुश्किल है। फूलदार पौधों पर सिगरेट का धुआं छोड़ें, तो वह मुरझा जाता है। वहीं ताजी हवा इसकी खिलखिलाहट बढ़ा देगा।

ग्लोबल वार्मिंग से बचने के लिए जगह बदल रहे पेड़

क्या आपको पता है कि जलवायु परिवर्तन जीवों के साथ-साथ पेड़पौधों पर भी असर डाल रहा है। शोध बताते हैं कि ग्लोबल वार्मिंग से बचने के लिए पेड़-पौधों की नई प्रजातियाँ अपना मूल स्थान छोड़कर दूसरी तरफ जा रही हैं।

1980 के दशक से उत्तर-पूर्वी हिस्सों में ज्यादा बारिश होने लगी है, वहीं दक्षिण-पूर्वी हिस्सों में बारिश कम हुई है। इसी का ये नतीजा है।

हाल ही में हुए एक सर्वे में यह जानने की कोशिश की गई कि पिछले 3 दशकों में पेड़-पौधों की आबादी किधर की ओर स्थान परिवर्तन कर रही है। देखा गया कि पौधों के खिसकने की प्रक्रिया शुरू हो गई है और वे पश्चिम की ओर बढ़ रही है।

पौधों के खिसकने का मतलब यह नहीं है कि पेड़ एक जगह से चलकर दूसरी जगह चले जाते हैं। इसका मतलब यह है कि पौधों की आबादी एक समय के बाद अपनी जगह बदलने में सक्षम होती है। उस प्रजाति के पेड़ नई जगहों पर फैल जाते हैं और संभव है कि पुरानी जगह पर उनका जन्म लेना व फलना-फूलना पूरी तरह से खत्म हो जाये।

‘द अटलांटिक’ ने इस शोध के हवाले से बताया है कि सफेद ओक, शुगर मेपल्स व अमरीकन हॉली प्रजाति सहित कई पौधे जो कि पूर्वी अमरीका में आमतौर पर पाये जाते हैं, वे पश्चिम की ओर खिसक रहे हैं। यह प्रक्रिया 1980 के दशक से ही शुरू हो गई थी। जिन वृक्षों की प्रजातियों को इस शोध में शामिल

किया गया, उनमें से आधी से ज्यादा प्रजातियाँ इसी अवधि में उत्तर की ओर बढ़ी। यह अपनी तरह का पहला प्रयोग है जो कि यह दिखाता है कि जलवायु में हो रहे बदलावों का पूर्वी प्रदेश में स्थित जंगलों पर क्या असर पड़ रहा है।

भिन्न प्रजातियों की भिन्न प्रतिक्रिया-शोधकर्ताओं के अनुसार, अलग-अलग प्रजातियाँ अलग-अलग तरीके से प्रतिक्रिया दे रही हैं। चौड़े पत्ते वाले पेड़ नमी की तलाश में पश्चिम की ओर जा रहे हैं तो सदाबहार व कोणधारी वृक्ष उत्तर की ओर। शोधकर्ता इन प्रतिक्रियाओं को समझने के लिए और रिसर्च कर रहे हैं।

एकेन्द्रिय (5 स्थावरों) में 24 स्थान

| क्र.सं. | नाम | भेद | एकेन्द्रिय |
|---------|----------|-----|---|
| 1. | गुणस्थान | 14 | 1 मिथ्यात्व गुणस्थान |
| 2. | जीवसमास | 14 | 4 (एकेन्द्रिय सूक्ष्म-बादर, पर्याप्त-अपर्याप्त) |
| 3. | पर्याप्त | 6 | 4 पर्याप्तियाँ, 4 अपर्याप्तियाँ |
| 4. | प्राण | 10 | 4 पर्याप्त के, 3 अपर्याप्त के |
| 5. | संज्ञा | 4 | 4 |
| 6. | गति | 4 | 1 तिर्यच |
| 7. | इन्द्रिय | 5 | 1 एकेन्द्रिय |
| 8. | काय | 6 | 5 स्थावरकाय |
| 9. | योग | 15 | 3 (2 औदा.-औदा.मिश्रकाययोग+ 1 कार्मण काययोग) |
| 10. | वेद | 3 | 1 नुपंसकवेद |
| 11. | कषाय | 25 | 23 (स्त्री-पुरुषवेद बिना) |
| 12. | ज्ञान | 8 | 2 (कुमति, कुश्रुत) |
| 13. | संयम | 7 | 1 असंयम |
| 14. | दर्शन | 4 | 1 अचक्षुदर्शन |
| 15. | लेश्या | 6 | 3 (कृष्ण, नील, कापोत) |
| 16. | भव्य | 2 | 2 (भव्य, अभव्य) |

| | | |
|---------------|--------|---|
| 17. सम्यक्त्व | 6 | 1 मिथ्यात्व |
| 18. संज्ञी | 2 | 1 असंज्ञी |
| 19. आहारक | 2 | 2 (आहारक, अनाहारक) |
| 20. उपयोग | 12 | 8 (2 ज्ञान + 1 दर्शन) |
| 21. ध्यान | 16 | 8 (4 आर्त्तध्यान + 4 रौद्रध्यान) |
| 22. आस्रव | 57 | 38 (5 मिथ्यात्व+ 7 अविरति+ 23 कषाय+3 योग) |
| 23. जाति | 84 लाख | 52 लाख |
| 24. कुल | 197½ | 67 लाख कोटि लाख कोटि |

एकेन्द्रिय सूक्ष्म-बादर, पर्याप्त-अपर्याप्त जीवों की अपेक्षा 4 जीवसमास होते हैं। पर्याप्त एकेन्द्रिय जीवों में 4 पार्यप्तियाँ एवं 4 प्राण होते हैं। निर्वृत्यपर्याप्त एवं लब्ध्यपर्याप्त एकेन्द्रिय जीवों में 4 अपर्याप्तियाँ एवं 3 प्राण होते हैं। विग्रहगति में भी 4 अपर्याप्तियाँ एवं 3 प्राण होते हैं।

एकेन्द्रिय जीवों के औदारिक शरीर होता है, अतः औदारिक शरीर संबंधी 2 योग और कार्मण काययोग होता है।

इन जीवों के वचन और मन नहीं होने से वचन और मन संबंधी एवं शेष शरीर संबंधी योग नहीं होते हैं।

एकेन्द्रिय जीवों का नियम से सम्मूर्च्छन जन्म होता है और सम्मूर्च्छन जन्म वाले नियम से नपुंसकवेदी होते हैं, अतः एकेन्द्रिय जीव नपुंसकवेदी ही होते हैं। इस प्रकार स्त्रीवेद और पुरुषवेद नामक नो कषाय इन जीवों में नहीं होती हैं।

एकेन्द्रिय जीवों में मिथ्यात्व गुणस्थान होने से दो मिथ्याज्ञान ही होते हैं। कुअवधिज्ञान नियम से संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों को ही होता है।

चक्षुइन्द्रिय को छोड़कर शेष 4 इन्द्रिय एवं मन के अवलंबन से होने वाला सामान्य सत्तावलोकन रूप दर्शन अचक्षुदर्शन है। एकेन्द्रिय जीवों के स्पर्शन इन्द्रियजन्य अचक्षुदर्शन होता है।

चक्षु इन्द्रिय के अभाव में चक्षुदर्शन एवं शेष दो दर्शन इन जीवों के नहीं होते हैं। क्योंकि त्रीन्द्रिय तक के जीवों में एक मात्र अचक्षुदर्शन ही होता है।

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवों में द्रव्य से छह लेश्या होती हैं। सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवों में द्रव्य से एकमात्र कापोत लेश्या होती है। बादर-सूक्ष्म दोनों जीवों की अपर्याप्त अवस्था में द्रव्य से शुक्ल एवं कापोत लेश्या होती है। अर्थात् विग्रहगति में शुक्ल लेश्या होती है एवं निर्वृत्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त अवस्था में कापोत लेश्या होती है। भाव की अपेक्षा सब एकेन्द्रिय जीवों में 3 अशुभ लेश्या ही होती हैं।

एकेन्द्रिय जीवों में एकमात्र प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है, अतः मिथ्यात्व कर्म के उदय से होने वाला सात तत्त्व के विषय में भावात्मक विपरीत श्रद्धान इन जीवों के पाया जाता है। इस विपरीत श्रद्धान की अपेक्षा यहाँ मिथ्यात्व सम्यक्त्व होता है।

आत्मा के श्रद्धा गुण की दो पर्याय हैं-मिथ्यात्व और सम्यक्त्व। सात तत्त्वों के असमीचीन व्यक्त श्रद्धान को मिथ्यात्व कहते हैं। सात तत्त्वों के समीचीन व्यक्त श्रद्धान को सम्यक्त्व कहते हैं। श्रद्धा गुण से संबंधित होने के कारण मिथ्यात्व को भी सम्यक्त्व मार्गणा में घटाया है।

सामान्य से एकांत, विपरीत, विनय, संशय और अज्ञानरूप गृहीत मिथ्यात्व एकेन्द्रिय जीवों में नहीं होता है। विशेष अपेक्षा-संज्ञी पंचेन्द्रिय अवस्था में जिन्होंने गृहीत मिथ्यात्व को धारण किया है, ऐसे जीव मरकर जब एकेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होते हैं उन जीवों के पूर्व संस्कार अपेक्षा गृहीत मिथ्यात्व पाया जाता है।

एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच तक के सभी जीव मन रहित असंज्ञी ही होते हैं, अतः इन सब जीवों में इस मार्गणा में असंज्ञित्व ही बनता है।

वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय जीवों की जड़ें जमीन में गाड़े हुए धन की ओर जाती हैं एवं वहाँ पर रखे हुए धन के कलश को वे जड़ें चारों ओर से वेष्टित कर देती हैं। यह सारा कार्य परिग्रह संज्ञा के निमित्त से होता है।

एकेन्द्रिय जीवों के एकमात्र स्पर्शन इन्द्रिय होती है, इस स्पर्शन इन्द्रिय को

वश में नहीं करने वाली अविरति होती है। शेष इन्द्रियाँ एवं मन नहीं हैं, अतः इनको वश नहीं करने का प्रश्न ही नहीं है। इस प्रकार छह काय के जीवों की रक्षा नहीं करना एवं स्पर्शन इन्द्रिय को वश नहीं करने रूप 7 अविरति एकेन्द्रिय जीवों में होती हैं।

पेड़-पौधे भी आत्महत्या करते हैं

-सुभाष आनंद

पेड़-पौधों पर कई प्रकार के अनुसंधान होते रहते हैं। पेड़-पौधों के संबंध में यह पता चला है कि वे मनुष्यों के व अन्य प्राणियों के सुख-दुःख में भी शामिल होते रहते हैं। वैज्ञानिकों का मानना है कि पेड़-पौधे अपने पालनकर्ता के साथ घनिष्ठ और आत्मिक संबंध स्थापित कर लेते हैं। वैज्ञानिकों का मत है कि पेड़-पौधे मनुष्य की अपेक्षा कहीं अधिक सूक्ष्म और पैनी ज्ञानेन्द्रियों से युक्त होते हैं। वैज्ञानिक यह भी मानते हैं कि पौधों और मनुष्य के नाड़ी संस्थानों में कहीं न कहीं कोई संबंध अवश्य है, जिसके कारण पौधों में मनुष्यों के सदृश्य संवेगों का सही संवेदन होता है।

पौधों में जीवन का शोध करने वाले पहले वैज्ञानिक जगदीशचंद्र बसु हैं। पेड़पौधों के बारे में उन्होंने विचित्र रहस्य प्रकट किये। पौधे दुःख-दर्द का अनुभव करते हैं। पेड़-पौधे थकान का भी अनुभव करते हैं। बाहरी उत्तेजना पर प्रतिक्रिया भी व्यक्त करते हैं। वैज्ञानिकों के शोधों से यह भी पता चला है कि पेड़-पौधे संगीत के प्रति संवेदनशील होते हैं। पेड़-पौधे भी मंद संगीत का ज्यादा मजा लेते हैं, जबकि तीव्र संगीत को वह बिल्कुल पसंद नहीं करते। मंद संगीत सुनने वाले पौधे शीघ्रता से फलते-फूलते हैं और फूल भी ज्यादा खिलते हैं।

पेड़-पौधे नशीले पदार्थों से भी बहुत डरते हैं। कई वैज्ञानिकों ने पेड़-पौधों में शराब डालकर प्रयोग किया। ऐसे पौधे तुरंत मुरझा गये और मदहोश होकर गिर गये। पेड़-पौधों की याददाश्त भी बहुत तेज होती है। यदि उनके सामने कोई घटना हुई तो वह काफी समय तक उसे याद रखते हैं।

वैज्ञानिकों का मानना है कि पेड़-पौधे काफी संवेदनशील होते हैं। उन्हें

भूकंप और प्राकृतिक आपदाओं की सूचना पहले ही मिल जाती है। शिकागो विश्वविद्यालयों के जीव-विज्ञान के एक वैज्ञानिक के शोध से पता चला है कि पेड़-पौधे आत्महत्याएँ भी करते हैं वह आत्महत्या व्यर्थ ही नहीं करते। वह अत्यधिक निराशा की स्थिति में, किसी की भलाई के लिए आत्महत्या करते हैं।

पेड़-पौधों की आत्महत्या करने के संबंध में वैज्ञानिकों ने पेड़-पौधों पर प्रकार के शोध किये। टेफीगोलिया नामक वृक्ष पर अध्ययन किया गया। यह पेड़ एक वर्ष के भीतर-भीतर नष्ट हो जाता है। वैज्ञानिकों ने जब टेफीगोलिया कोलर के 18 वृक्षों को लगाया तो ये वृक्ष भी फल एवं बीज देकर स्वयं गिरकर नष्ट हो गये। सन् 1974 में 105 पेड़ ऐसी प्रजाति के लगाये गये थे। वैज्ञानिकों ने पाया कि एक वर्ष बाद (1975) में यह पेड़ पूर्व की भाँति अपने बीजों को हवा में फैलाकर स्वयं गिर गये।

कुछ वैज्ञानिकों का कहना था कि यह एक प्राकृतिक प्रक्रिया है। पेड़ों के आत्महत्या कर लेने से नई संतति को अच्छी सेहत मिल सके। यह वास्तव में संवेदनशील गुण है। इस प्रकार पेड़-पौधों में संवेदनशीलता इंसानों से ज्यादा होती है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी निर्बाध रूप से चली आ रही है इस परंपरा को अभी तक किसी पौधे ने नहीं तोड़ा है। पेड़-पौधों में कई प्राकृतिक परंपराएँ कायम हैं। वैज्ञानिकों का मानना है कि पौधों में सोचने-समझने का पूरी तरह ज्ञान होता है। पेड़-पौधे जानवरों से बचने के लिए अपनी रक्षा करने में भी सक्षम होते हैं।

नरक आयुका आस्रवः

बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकास्यायुषः। (15)

As to the age karma the inflow of Techlych i hellish age karma is caused by too much wordly activity and by attachment to too many worldly objects or by too much attachment.

बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह वाले का भाव नरकायु का आस्रव है। प्राणियों को दुःख पहुँचाने वाली प्रवृत्ति करना आरम्भ है। यह वस्तु मेरी है इस प्रकार का संकल्प रखना परिग्रह है। जिसके बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह

हो वह बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह वाला कहलाता है और उसका भाव बह्वारम्भ परिग्रहत्व है। हिंसा आदि क्रूर कार्यों में निरंतर प्रवृत्ति, दूसरे के धन का अपहरण, इन्द्रियों के विषयों में अत्यन्त आसक्ति तथा मरने के समय कृष्ण लेश्या और रौद्रध्यान आदि का होना नरकायु के आस्रव हैं।

तत्त्वार्थसार में कहा भी है।

उत्कृष्टमानता शैलराजीसदृशरोषता।

मिथ्यात्वं तीव्रलोभत्वं नित्यं निरनुकम्पता॥ (30)

अज्रसं जीवघातित्वं सततानृतवादिता।

परस्वहरणं नित्यं नित्यं मैथुनसेवनम्॥ (31)

कामभोगाभिलाषाणां नित्यं चातिप्रवृद्धता।

जिनस्यासादनं साधुसमयस्य च भेदनम्॥ (32)

मार्जारताम्रचूडादिपापीयः प्राणिपोषणम्।

नैःशील्यं च महारम्भपरिग्रहतया सह॥ (33)

कृष्णलेश्यापरिणतं रौद्रध्यानं चतुर्विधम्।

आयुषो नारकस्येति भवन्त्यासवहेतवः॥ (34)

तीव्र मान करना, पाषाण रेखा के समान तीव्र क्रोध करना, मिथ्यात्व धारण करना, तीव्र लोभ करना, निरंतर निर्दयता के भाव रखना, सदा जीवघात करना, निरंतर झूठ बोलना, सदा परधनहरण करना, निरंतर मैथुन सेवन करना, हमेशा काम भोग सम्बन्धी अभिलाषाओं को अत्यधिक बढ़ाना, जिनेन्द्र भगवान् में दोष लगाना, जिनागम का खण्ड करना, विलाव, मुर्गा आदि पापी जीवों का पोषण करना, शील रहित होना, बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह रखना, कृष्णलेश्यारूप परिणति करना तथा चार प्रकार का (हिंसानन्द, मृषानन्द, स्तेयानन्द, परिग्रहानन्द) रौद्रध्यान करना, ये सब नरकायु के आस्रव के हेतु हैं।

नरकगति में 24 स्थान

| क्र.सं. | नाम | भेद | नरकगति |
|---------|-----------|-----|---|
| 1. | गुणस्थान | 14 | 4 (प्रथमादि 4 गुणस्थान) |
| 2. | जीवसमास | 14 | 2 (संज्ञी पर्याप्त, संज्ञी निर्वृत्यपर्याप्त) |
| 3. | पर्याप्ति | 6 | 6 पर्याप्तियाँ, 6 अपर्याप्तियाँ |
| 4. | प्राण | 10 | 10 पर्याप्त के, 7 अपर्याप्त के |
| 5. | संज्ञा | 4 | 4 |
| 6. | गति | 4 | 1 नरक |
| 7. | इन्द्रिय | 5 | 1 पंचेन्द्रिय |
| 8. | काय | 6 | 5 त्रस |
| 9. | योग | 15 | 11 (4 मनोयोग+4 वचनयोग+2 वैक्रि.द्विक+ 1 कार्मणकाययोग) |
| 10. | वेद | 3 | 1 नुपंसकवेद |
| 11. | कषाय | 25 | 23 (स्त्री-पुरुष वेद बिना) |
| 12. | ज्ञान | 8 | 6 (3 ज्ञान+ 3 कुज्ञान) |
| 13. | संयम | 7 | 1 असंयम |
| 14. | दर्शन | 4 | 3 (चक्षु, अचक्षु, अवधि) |
| 15. | लेश्या | 6 | 3 (कृष्ण, नील, कापोत) |
| 16. | भव्य | 2 | 2 (भव्य, अभव्य) |
| 17. | सम्यक्त्व | 6 | 6 |
| 18. | संज्ञी | 2 | 1 संज्ञी |
| 19. | आहारक | 2 | 2 (आहारक, अनाहारक) |
| 20. | उपयोग | 12 | 9 (6 ज्ञान + 3 दर्शन) |
| 21. | ध्यान | 16 | 12 (4 आर्तध्यान + 4 रौद्रध्यान + 4 धर्मध्यान) |

| | | |
|-----------|--------|---|
| 22. आस्रव | 57 | 51 (5 मिथ्यात्व+ 12 अविरति+ 23 कषाय+11 योग) |
| 23. जाति | 84 लाख | 4 लाख |
| 24. कुल | 197½ | 25 लाख कोटि लाख कोटि |

नारकी जीव नियम से संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त ही होते हैं, अतः उनकी पर्याप्त अवस्था में संज्ञी पर्याप्त जीवसमास, 6 पर्याप्तियाँ एवं 10 प्राण होते हैं। नारकी जीवों की निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था में संज्ञी निर्वृत्यपर्याप्त जीवसमास, 6 अपर्याप्तियाँ एवं 7 प्राण होते हैं। विग्रहगति में संज्ञी अपर्याप्त जीवसमास, 6 अपर्याप्तियाँ एवं 7 प्राण होते हैं।

नारकी जीवों के विग्रहगति में पंचेन्द्रिय जाति नामकर्म के उदय से संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवसमास है। विग्रहगति में जीव पर्याप्त न होने से अपर्याप्त ही है, अतः जीवसमास संज्ञी अपर्याप्त है। विग्रहगति के पश्चात् शरीर ग्रहण करने के प्रथम समय से पर्याप्तियों का प्रारंभ होता है, परंतु विग्रहगतिस्थ जीवों की निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था के साथ अत्यंत निकटता है, अतः अपर्याप्त अवस्था के समान यहाँ 6 अपर्याप्तियाँ हैं। विग्रहगति में जीवों के 5 इन्द्रिय प्राण, कायबल एवं आयु प्राण, ये 7 प्राण होते हैं।

विग्रहगति की अपर्याप्त अवस्था में इन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम रूप भावेन्द्रियाँ कारण हैं और ज्ञानरूप कार्य भी है। भावेन्द्रियों की अपेक्षा 5 इन्द्रिय प्राण हैं। विग्रहगति की अपर्याप्त अवस्था में जीव प्रदेशों के परिस्पन्दन लक्षण वाले कार्मण काययोग रूप कार्य हैं, जिनमें कायबल कारण है। कार्य के सद्भाव में कारण भी पाया जाता है अथवा योग सामान्य है, कायबल प्राण विशेष है। सामान्य-विशेष संबंध अपेक्षा योग के सद्भाव में कायबल प्राण भी है। गति के साथ आयु प्राण का साहचर्य संबंध है। विग्रहगति के प्रथम समय से ही गति नामकर्म का उदय होता है, अतः आयुकर्म का उदय भी साथ-साथ प्रथम समय से ही होता है, अतः आयु प्राण भी है।

इस प्रकार विग्रहगति की अपर्याप्त अवस्था में एवं निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था में 7 प्राण होते हैं।

नारकी जीवों का वैक्रियिक शरीर होता है, अतः औदारिक एवं आहारक शरीर संबंधी 2-2 योग नहीं होते हैं।

नारकी जीव नियम से नपुंसकवेदी ही होते हैं, अतः शेष 2 वेद नहीं है। विशेष यह है कि नारकी जीव द्रव्यवेद और भाववेद दोनों की अपेक्षा नपुंसकवेदी ही होते हैं।

सभी नारकी जीवों के नियम से भवप्रत्यय अवधिज्ञान होता है। सम्यग्दृष्टि नारकी जीवों को सुअवधिज्ञान और मिथ्यादृष्टि नारकी जीवों को कुअवधिज्ञान होता है। मति और श्रुत ये दोनों ज्ञान भी इसी प्रकार सुज्ञान एवं कुज्ञान रूप होते हैं। इस प्रकार नरकगति में 3 सुज्ञान और 3 कुज्ञान मिलकर 6 ज्ञान होते हैं।

नारकी जीवों के प्रथम 4 गुणस्थान ही होते हैं। नारकी जीवों में संयम नहीं होता है, अतः संयमी अवस्था में प्राप्त मनःपर्यय ज्ञान एवं केवलज्ञान यहाँ नहीं होते हैं।

विग्रहगति में नारकी जीवों की द्रव्य लेश्या शुक्ल होती है। निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था में नारकी जीवों की द्रव्य लेश्या कापोत होती है। पर्याप्त अवस्था में नारकी जीवों की द्रव्य लेश्या अतिकृष्ण होती है। उपर्युक्त तीनों अवस्था प्राप्त सभी नारकी के 3 अशुभ लेश्या होती है।

प्रथम नरक में जघन्य कापोत लेश्या होती है।

द्वितीय नरक में मध्यम कापोत लेश्या होती है।

तृतीय नरक के नौ इन्द्रक बिलों में से (नौ पटल से) ऊपर के आठ इन्द्रक बिलों में उत्कृष्ट कापोत लेश्या होती है।

नीचे के नवमें इन्द्रक बिल में कितने ही नारकी जीवों के उत्कृष्ट कापोत लेश्या होती है और कितने ही नारकी जीवों के जघन्य नील लेश्या होती है।

चतुर्थ नरक में मध्यम नील लेश्या होती है।

पंचम नरक के पाँच इन्द्रक बिलों में से ऊपर के 4 इन्द्रक बिलों में उत्कृष्ट नील लेश्या होती है।

पाँचवें इन्द्रक बिल में कितने ही नारकी जीवों के उत्कृष्ट नील लेश्या एवं कितने ही नारकी जीवों के जघन्य कृष्ण लेश्या होती है।

छठे नरक में मध्यम कृष्ण लेश्या होती है।

सातवें नरक में उत्कृष्ट कृष्ण लेश्या होती है।

विग्रहगति में 4 गति से सभी जीवों का तैजस-कार्मण शरीर होता है। कार्मण शरीर के निमित्त से कार्मण वर्गणा आती है। कार्मण वर्गणा अर्थात् कर्मरूप होने योग्य विस्त्रसोपचय (उम्मीदवार कार्मण वर्गणा) का धवल वर्ण होने से विग्रहगति में 4 गति के सभी जीवों की द्रव्य से शुक्ल लेश्या होती है।

देव और नारकी जीवों की निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था में वैक्रियिक शरीर और कार्मण शरीर के निमित्त से नौ कर्मरूप आहार वर्गणा एवं कर्मवर्गणा आती हैं।

मनुष्य और तिर्यच जीवों की निर्वृत्यपर्याप्त एवं लब्ध्यपर्याप्त अवस्था में औदारिक शरीर और कार्मण शरीर के निमित्त से नौ कर्मरूप आहार वर्गणा एवं कर्मवर्गणा आती हैं।

आहार वर्गणा सकल (सभी) वर्ण वाली होती है, अतः सकल वर्ण वाली आहार वर्गणा के साथ शुक्ल वर्ण वाली कर्मवर्गणा का मिश्रण होने से अपर्याप्त सभी जीवों के द्रव्य से कापोत लेश्या होती है।

क्षायिक सम्यक्त्व का प्रारंभ कर्मभूमिज मनुष्य ही केवली-श्रुतकेवली के पादमूल में करते हैं। एक कर्मभूमिज संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त मनुष्य ने नरकायु का बंध किया। आयुबंध के पश्चात् उसी जीव ने केवली-श्रुतकेवली के पादमूल में क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त किया अथवा क्षायिक सम्यक्त्व का प्रतिष्ठापन किया। ऐसा जीव क्षायिक सम्यक्त्व सहित प्रथम नरक में उत्पन्न होता है अथवा जिसने क्षायिक सम्यक्त्व का प्रतिष्ठापन किया है ऐसा जीव प्रथम नरक में कृतकृत्य वेदक सम्यक्त्व सहित उत्पन्न होकर वहाँ क्षायिक सम्यक्त्व का निष्ठापन करता है अर्थात् क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त करता है। इस प्रकार प्रथम नरक में क्षायिक सम्यक्त्व पाया जाता है।

द्वितीयादि नरकों में क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता है क्योंकि इन नरकों में

सम्यक्त्व सहित कोई भी जीव उत्पन्न नहीं होता है। क्षायिक सम्यग्दर्शन एक बार होने के बाद छूटता नहीं है, अतः आगे के नरकों में यह नहीं घटित होता है।

जो क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के सम्मुख हो मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व तथा अनंतानुबंधी चतुष्क इन छह प्रकृतियों का क्षय कर चुकता है, मात्र सम्यक्त्व प्रकृति का उदय जिसके रह जाता है, वह कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि कहलाता है। उनका सम्यक्त्व कृतकृत्य वेदक सम्यक्त्व है।

असंयतादि 4 गुणस्थानों में धर्मध्यान होता है (सर्वार्थसिद्धि) तत्त्वानुशासन और भावसंग्रह के अनुसार चतुर्थ-पंचम-षष्ठ गुणस्थान में उपचार से धर्मध्यान होता है। अप्रमत्त गुणस्थान में मुख्य रूप से धर्मध्यान होता है। गुणस्थानों में पृथक्-पृथक् कौन-कौनसे धर्मध्यान होते हैं, ऐसा आगम प्रमाण हमारी जानकारी में नहीं है। 'गुणस्थान-मार्गणा चर्चा' में पं. रतनचंदजी मुख्तार ने भी नरकगति में उपचार से 4 धर्मध्यान घटाये हैं। इस प्रकार नरकगति में उपचार से 4 धर्मध्यान होते हैं।

तीर्थकरसत्त्वी असंयत सम्यग्दृष्टि नारकी जीवों में दर्श-विशुद्धि भावना के साथ अपायविचय धर्मध्यान घटित हो सकता है।

अथवा अनंतानुबंधी विसंयोजक नारकी जीवों के भाव उच्च स्तरीय होते हैं। उनमें भी अपायविचय का अस्तित्व संभव है, क्योंकि अपायविचय धर्मध्यान जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट, प्रकट, अप्रकट आदि के भेद से अनेक प्रकार का है।

इसी प्रकार विपाकविचय और संस्थानविचय धर्मध्यान घटित होते हैं, क्योंकि इनमें भी प्रकट-अप्रकट आदि अनेक भेद होते हैं।

विशेष-अभी तक की प्रायः सभी पुस्तकों में नरकगति में दो अथवा एक धर्मध्यान घटाया है, परंतु उनका आगम प्रमाण देखने में नहीं आया, अतः हमने यहाँ 4 धर्मध्यान उपचार से घटित किये हैं।

सम्यक्त्व को जाना तो ऐसा जाना?

(सत्य-विश्वास-आत्म विश्वास से सहित जीव सम्यक्त्वी
चतुर्थ गुणस्थानवर्ती)

(चाल - एक लड़की को देखा तो...)

सम्यक्त्व को जाना तो ऐसा पाया...आत्म श्रद्धान / (सत्य श्रद्धान) सहित जीवों को जाना...
चारों गति में संज्ञी (पंचेन्द्रिय जीव) सम्यक्त्वी संभव...मनुष्य तिर्यञ्च नारकी देव
संभव...(1)

अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ...मिथ्यात्व के उपशमादि से होता सम्यक्त्व...
देवशास्त्र गुरु व द्रव्य तत्त्व पदार्थ...श्रद्धान होता है स्व-शुद्धात्मा तक... (2)

अष्ट अंग सहित अष्टमद रहित...सप्त व्यसन व सप्त भय रहित...
संवेग-वैराग्य-आस्तिक-अनुकंपा युक्त...सनम्र सत्यग्राही अष्टमल रहित... (3)

सम्यक्त्व सहित ही होता सुज्ञान...दोनों सहित ही होता सदाचरण...
यहाँ से ही मोक्षमार्ग होता प्रारंभ...अरहित सिद्ध में होता मोक्षमार्ग पूर्ण...(4)

सम्यक्त्वी होते दश प्राण युक्त...चारों संज्ञाओं से होते संयुक्त...
त्रसकाय व तीनों वेद से युक्त...इक्कीस कषाय व तीन सुज्ञान युक्त...(5)

असंयमी होते हैं वे छहों लेश्या युक्त...भव्य वे होते तीन दर्शन युक्त...
संज्ञी वे होते तीन सम्यक्त्व युक्त...छहों उपयोग सहित बारह ध्यान युक्त...(6)

छियालीस (46) आस्रव से वे सहित होते...छब्बीस लाख जाति में वे होते...
साढ़े एक सौ छह लाख (106½) कुल कोटि युक्त...आहारक द्वय से भी होते
संयुक्त...(7)

वे श्रावक से लेकर साधु बनकर...यथायोग्य गति के अनुसार...

कर्म नाशकर अवश्य वे मोक्ष पाते...‘कनक’ सूरी संक्षेप से काव्य में लिखे...(8)

अविरत-सम्यग्दृष्टि

इस गुणस्थान से वास्तविक मोक्ष का मंगलाचरण होता है अंतरंग-बहिरंग
समस्त कारणों के सद्भाव से मिथ्यात्व एवं अनंतानुबंधी चतुष्क का उपशम, क्षयोपशम,
क्षय से यथाक्रम उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है जो कि मोक्षफल

के लिए बीजभूत है। जिस प्रकार बीज के अभाव से बीज की उत्पत्ति, वृद्धि नहीं हो सकती है। सम्यग्दर्शन एक अंक प्रमाण है और ज्ञान चारित्र दो शून्य के समान है। जैसे स्वतंत्र शून्य का कोई मूल्य नहीं है परन्तु एक के आगे जोड़ने पर 100 संख्या हो जाती है। वर्तमान शून्य में विशेष मूल्य है जिसके कारण एक मूल्य बढ़कर सौ हो गया। यदि सौ पूर्ण मोक्षमार्ग है तो स्वतंत्र एक संख्या रूपी सम्यग्दर्शन मोक्षमार्ग नहीं है, दश स्थान स्थित शून्य रूपी सम्यग्ज्ञान पूर्ण मोक्षमार्ग नहीं है तथा तृतीय स्थान स्थित शून्य रूपी चारित्र मोक्षमार्ग नहीं है परन्तु सम्यग्दर्शन रूप एक के आगे सम्यग्ज्ञान रूप शून्य जोड़ने पर दश तथा सम्यक् चारित्र रूप शून्य जोड़ने पर सौ हो जाता है जो कि पूर्णमोक्षमार्ग है। वर्तमान काल में संस्कृत जैनवाङ्मय के आद्य सूत्रकार उमास्वामी प्रथम सूत्र में कहते हैं-

“सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः”

इस सूत्र में सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि बहुवचन है और मोक्षमार्ग एक वचन रखने का एक महान् रहस्य छिपा हुआ है, जिसका अर्थ है स्वतंत्र सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र मोक्षमार्ग नहीं है परन्तु तीनों का सम्यक् समन्वय ही मोक्षमार्ग है। सूत्र में जो पद क्रम रखा गया है, उसमें भी एक महान् आगमिक एवं आध्यात्मिक सूक्ष्म रहस्य भरा है अर्थात् सम्यग्दर्शन पूर्वक सम्यग्ज्ञान और सम्यग्ज्ञान पूर्वक सम्यक्चारित्र होता है। अन्य भी एक कारण है जो कि सम्यग्दर्शन पूर्ण होने के बाद भी साक्षात् तत्काल मोक्ष नहीं है। कोई जघन्य से एक भव तो और कोई उत्कृष्ट से 4 भवों तक परिभ्रमण करता है।

सम्यग्ज्ञान 13वें गुणस्थान में पूर्ण हो जाता है तो भी तत्क्षण मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है, जघन्य से अन्तर्मुहूर्त से लेकर उत्कृष्ट से कुछ कम एक पूर्व कोटि वर्ष तक संसार में रुका रहता है। चौदहवें गुणस्थान के अंत में शैलेश अवस्था प्राप्त होती है एवं चारित्र पूर्ण होता है तब सम्पूर्ण कर्म नष्ट होकर शाश्वतिक मोक्ष पदवी प्राप्त होती है। इस सिद्धांत को जब हम सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करते हैं तब पाते हैं कि सम्यग्दर्शन की पूर्णता मोक्षमार्ग की पूर्णता नहीं है, तथा सम्यग्ज्ञान की पूर्णता भी मोक्षमार्ग की पूर्णता नहीं है, किन्तु सम्यक्चारित्र की पूर्णता ही मोक्षमार्ग की पूर्णता है। इसलिये सूत्र में पहले सम्यग्दर्शन को उसके पश्चात् सम्यग्ज्ञान और शेष में सम्यक्चारित्र

को रखा है। मोक्षमार्ग का प्रारंभ सम्यग्दर्शन से एवं पूर्णता सम्यक्चारित्र से होती है। जहाँ पर सम्यक्चारित्र है वहाँ सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान निश्चित रूप से रहेंगे ही, किन्तु जहाँ पर सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान है वहाँ चारित्र भजनीय है अर्थात् हो भी सकता है और नहीं भी। जैसे किसी के पास दस हजार रुपये हैं उसके पास सौ रुपये, दस हजार रुपये हैं ही। किन्तु जिनके पास दस रुपये और सौ रुपये है उसके पास हजार रुपये हो सकते हैं, नहीं भी हो सकते हैं। इसलिये मोक्षमार्ग का धनी सम्यक्चारित्रवान् जीव है।

णो इंदिएसु विरदो णो जीवे थावरे तसे वापि।

जोसद्दहदिजिणुत्तसम्माइट्ठी अविरदोसो।। (29) (गो.सा.)

जो इन्द्रिय के विषयों से विरत नहीं है तथा त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा से भी विरत नहीं है केवल जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा प्रतिपादित तत्त्वों के ऊपर श्रद्धान रखता है, इसलिये वह जीव अविरत सम्यग्दृष्टि है। अपि शब्द से संवेगादि गुण प्रगट होते हैं।

सम्माइट्ठी जीवों उवइट्ठ पवयणं तु सद्दहहि।

सद्दहहि असब्भावं अजाणमायो गुरुणियोगा।। (27)

सुत्तादो तं सम्मं दरसिज्जतं जदा ण सद्दहहि।

सो चेव हवइ मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदि।। (28)

जो जीव अरहन्त आदि के द्वारा उपदिष्ट प्रवचन अर्थात् आप्त, आगम और पदार्थ इनकी श्रद्धा रखता है, साथ ही उनके विषय में असद्भाव अर्थात् अतत्त्व भी स्वयं के विशेष ज्ञान से शून्य होने से, केवल गुरु के नियोग से जो गुरु ने कहा वही अर्हत भगवान् की आज्ञा है ऐसा श्रद्धान करता है, वह भी सम्यग्दृष्टि ही है। अर्थात् अपने को विशेष ज्ञान न होने से और गुरु भी अल्पज्ञानी होने से वस्तु स्वरूप अन्यथा कहे और सम्यग्दृष्टि उसे ही जिनाज्ञा मानकर अतत्त्व का श्रद्धान कर ले तब भी सम्यग्दृष्टि ही है, क्योंकि उसने जिनाज्ञा का उल्लंघन नहीं किया।

उक्त प्रकार से असत् अर्थ का श्रद्धान करता हुआ सम्यग्दृष्टि जीव जब अन्य कुशल आचार्यों के द्वारा पूर्व में उसके द्वारा गृहीत असत्यार्थ से विपरीत तत्त्व

गणधरादि द्वारा कथित सूत्रों को दिखाकर सम्यक् रूप से बतलाया जावे और फिर भी वह दुराग्रह वश उस सत्यार्थ का श्रद्धान न करे तो उस समय से वह जीव मिथ्यादृष्टि होता है, क्योंकि गणधरादि के द्वारा कथित सूत्र का श्रद्धान न करने से जिनाज्ञा का उल्लंघन सुप्रसिद्ध है। इसी कारण वह मिथ्यादृष्टि है।

भयवसण मल विवज्जिद-संसार सरीर भोग णिव्विण्णो।

अट्ट गुणं समग्गो दंसण सुद्धो हु पंचगुरु भत्तो।। (5) रयणसार

जो सप्त भय से रहित, सप्त व्यसन से रहित, सम्यग्दर्शन के 25 अतिचार मल दोष से रहित है, संसार शरीर भोग से विरक्त है, सम्यग्दर्शन के 8 अंग सहित है एवं पंचपरमेष्ठी की जो भक्ति करता है वह शुद्ध सम्यग्दृष्टि है।

सम्यग्दर्शन सामान्य से एक प्रकार है। सराग सम्यग्दर्शन और दूसरा वीतराग सम्यग्दर्शन अपेक्षा दो प्रकार है। (1) उपशम (2) क्षयोपशम (3) क्षायिक की अपेक्षा तीन प्रकार का है।

(1) आज्ञा (2) मार्ग (3) उपदेश (4) सूत्र (5) बीज (6) संक्षेप (7) विस्तार (8) अर्थ (9) अवगाढ़ (10) परम अवगाढ़ भेद से सम्यक्त्व 10 प्रकार भी है। उसमें से प्रथम सम्यक्त्व आज्ञा सम्यग्दर्शन है। यथा-

आज्ञासम्यक्त्व मुक्तं यदुत विरुचितं वीतरागज्ञयैव।

त्यक्तग्रंथप्रपंच शिवामृतपथं श्रद्धाधन्मोहशान्तेः।। (आत्मानुशासन)

दर्शनमोहनीय के उपशांत होने से ग्रंथ श्रवण के बिना केवल वीतराग भगवान् की आज्ञा से ही जो तत्त्व श्रद्धान उत्पन्न होता है उसको आज्ञा सम्यग्दर्शन कहते हैं क्योंकि उसका श्रद्धान होता है कि सर्वज्ञ हितोपदेशी भगवान् कभी भी अन्यथा उपदेश नहीं करते हैं जो भी कथन करते हैं वह सत्य ही कथन करते हैं।

सूक्ष्म जिनोदितं तत्त्वं हेतुर्भिनैव हन्यते।

आज्ञासिद्धंतद्ग्राह्यानान्यथावादिनोजिना।। (5)

वीतराग सर्वज्ञ हितोपदेशी भगवान् के द्वारा प्रतिपादित तत्त्व त्रिकाल अबाधित परम सत्य एवं सूक्ष्म है, जो कि परोक्ष मतिज्ञान श्रुतज्ञान के अवयवभूत हेतु, तर्क उदाहरण से खंडित नहीं होता है। जिनेन्द्र भगवान् अन्यथावादी नहीं होते हैं। इसलिये उनकी आज्ञा ग्रहण करने योग्य है। यहाँ से ही सम्यग्दर्शन का प्रारंभ होता है। आज्ञा

सम्यक्त्व तलहटी (आधारशिला) है। उसके ऊपर अन्य सम्यग्दर्शन रूपी महल अवस्थित है।

कुछ वर्ष पूर्व जैन धर्म के अनेकांतवाद, स्याद्वाद, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशस्तिकाय, कालद्रव्य, परमाणुवाद, वनस्पति एकेन्द्रिय हैं, इत्यादि सिद्धांत अन्य कोई दर्शन एवं विज्ञान नहीं मानते थे, वर्तमान वैज्ञानिक शोध से उपरोक्त समस्त विषय को आज वैज्ञानिक जगत् एवं साधारण जन भी मानने लगे हैं। विज्ञान की नवीन शोध से जैन धर्म की प्रमाणिकता अधिक दुनिया के सन्मुख स्पष्ट होती जा रही है इससे सिद्ध होता है कि जिनेन्द्र भगवान् द्वारा प्रणीत समस्त सिद्धांत सत्य पूर्ण और तथ्यपूर्ण है इसलिये जो जिनेन्द्र भगवान् की आज्ञा को नहीं मानता है वह मिथ्यादृष्टि है।

अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान में 24 स्थान

| क्रम | नाम | भेद | अविरतसम्यक्त्व |
|------|----------|-----|---|
| 1. | गुणस्थान | 14 | 1 अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान |
| 2. | जीवसमास | 14 | 2 (संज्ञी पर्याप्त, संज्ञी निर्वृत्यपर्याप्त) |
| 3. | पर्याप्त | 6 | 6 पर्याप्तियाँ, 6 अपर्याप्तियाँ |
| 4. | प्राण | 10 | 10 पर्याप्त के, 7 अपर्याप्त के |
| 5. | संज्ञा | 4 | 4 |
| 6. | गति | 4 | 4 |
| 7. | इन्द्रिय | 5 | 1 पंचेन्द्रिय |
| 8. | काय | 6 | 1 त्रस |
| 9. | योग | 15 | 13 आहारकद्विक बिना |
| 10. | वेद | 3 | 3 |
| 11. | कषाय | 25 | 21 अनंतानुबंधी 4 बिना |
| 12. | ज्ञान | 8 | 3 (मति, श्रुत, अवधि) |
| 13. | संयम | 7 | 1 असंयम |
| 14. | दर्शन | 4 | 3 (चक्षु, अचक्षु, अवधि) |

| | | | |
|---------------|--------|---|----------|
| 15. लेश्या | 6 | 6 | |
| 16. भव्य | 2 | 1 भव्य | |
| 17. सम्यक्त्व | 6 | 3 (उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक) | |
| 18. संज्ञी | 2 | 1 संज्ञी | |
| 19. आहारक | 2 | 2 (आहारक, अनाहारक) | |
| 20. उपयोग | 12 | 6 (3 ज्ञान + 3 दर्शन) | |
| 21. ध्यान | 16 | 12 (4 आर्त्तध्यान + 4 रौद्रध्यान + 4 धर्मध्यान) | |
| 22. आस्रव | 57 | 46 (12 अविरति + 21 कषाय + 13 योग) | |
| 23. जाति | 84 लाख | 26 लाख | |
| 24. कुल | 197½ | 106½ | लाख कोटि |
| | | | लाख कोटि |

चारों गति के संज्ञी पंचेन्द्रिय, पर्याप्त-निर्वृत्यपर्याप्त भव्य जीवों में यह गुणस्थान होता है।

इस गुणस्थान की पर्याप्त-निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था में पुरुषवेद और नपुंसकवेद घटित होता है। अविरत सम्यक्त्व की पर्याप्त अवस्था में ही स्त्रीवेद होता है। निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था में द्रव्य-भाव स्त्रीवेद नहीं होता है।

सामान्य से सम्यग्दृष्टि जीव मरकर द्रव्य-भाव स्त्रीवेद एवं नपुंसकवेद में उत्पन्न नहीं होते हैं, अतः निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था में स्त्रीवेद और नपुंसकवेद नहीं होते हैं।

नारकी जीवों में मात्र नपुंसकवेद ही होता है, अतः नारकी जीवों की अपेक्षा ही सम्यग्दृष्टि जीव नपुंसकवेद में उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार नारकी जीवों की निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था में नपुंसकवेद घटित होता है। अन्य सभी स्थानों में सम्यग्दृष्टि जीव मरकर द्रव्य-भाव पुरुषवेद में ही उत्पन्न होते हैं।

सामान्य से चारों गति के अविरत सम्यग्दृष्टि जीवों के 6 लेश्या पाई जाती हैं। पर्याप्त देव-नारकी के इस गुणस्थान में क्रमशः 3 शुभ और 3 अशुभ लेश्या होती हैं। निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था में देवों (भवनत्रिक को छोड़कर) के इस गुणस्थान में 3 शुभ लेश्या होती है एवं नारकी देवों के मात्र कापोत लेश्या होती है।

पर्याप्त मनुष्य-तिर्यञ्च के इस गुणस्थान में 6 लेश्या होती हैं। निर्वृत्यपर्याप्त

मनुष्य के 6 लेश्या होती है। भोगभूमिज मनुष्य की पर्याप्त अवस्था में 3 शुभ लेश्या होती हैं। भोगभूमिज मनुष्य की निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था में कापोत लेश्या होती है।

कर्मभूमिज तिर्यञ्च की निर्वृत्यपर्याप्ति अवस्था में यह गुणस्थान नहीं होता है। भोगभूमिज तिर्यञ्च की निर्वृत्यपर्याप्ति अवस्था में इस गुणस्थान में मात्र कापोत लेश्या होता है। क्षायिक सम्यक्त्व या कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्व सहित मनुष्य मरकर प्रथम नरक में ही उत्पन्न होते हैं। प्रथम नरक से आगे के नरकों में सम्यक्त्व सहित उत्पन्न नहीं होते हैं। प्रथम नरक में मात्र कापोत लेश्या ही हैं, अतः निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था सहित इस गुणस्थान में मात्र कापोत लेश्या है।

क्षयोपशम या क्षायिक सम्यग्दृष्टि नारकी जीव मरकर जब कर्मभूमिज मनुष्य में उत्पन्न होते हैं, तब मनुष्य ही निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था में अपनी-अपनी पूर्व की 3 अशुभ लेश्या अंतर्मुहूर्त पर्यंत पाई जाती है।

क्षयोपशम या क्षायिक सम्यग्दृष्टि देव मरकर जब कर्मभूमिज मनुष्य में उत्पन्न होते हैं, तब उन मनुष्यों की निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था में अपनी-अपनी पूर्व की 3 शुभ लेश्या अंतर्मुहूर्त पर्यंत पाई जाती हैं।

इस प्रकार अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान में निर्वृत्यपर्याप्त अवस्थागत मनुष्य के 6 लेश्या पाई जाती है।

प्रथमोपशम सक्त्व सहित इस गुणस्थान में अनाहारक अवस्था नहीं होती है, क्योंकि इस सम्यक्त्व में मरण नहीं है।

द्वितीयोपशम सम्यक्त्व सहित इस गुणस्थान में अनाहारक अवस्था मात्र देवगति की अपेक्षा घटित होती है; क्योंकि इस सम्यक्त्व सहित मरण को प्राप्त जीव नियम से देवगति में उत्पन्न होते हैं।

क्षयोपशम सम्यक्त्व सहित इस गुणस्थान में अनाहारक अवस्था देवगति और मनुष्यगति अपेक्षा घटित होती है, क्योंकि इस सम्यक्त्व सहित देव-नारकी नियम से मनुष्यगति में एवं मनुष्य-तिर्यच नियम से देवगति में उत्पन्न होते हैं।

कृतकृत्यवेदक एवं क्षायिक सम्यक्त्व सहित इस गुणस्थान में अनाहारक अवस्था पूर्व में बध्यमान आयु अपेक्षा चारों गतियों में घटित होती है।

अविरत सम्यक्त्व आदि में 4 गुणस्थानों में धर्मध्यान होता है (सर्वार्थसिद्धि)।

सम्यक्त्व के प्रभाव से अविरत सम्यक्त्व आदि 4 गुणस्थानों में धर्मध्यान है (रा.वा.)। तत्त्वानुशासन और भावसंग्रह के अनुसार चतुर्थ-पंचम षष्ठ गुणस्थान में उपचार से धर्मध्यान होता है। अप्रमत्त गुणस्थान में मुख्य रूप से धर्मध्यान होता है।

‘गुणस्थान मार्गणा चर्चा’ में पं. रतनचंदजी मुख्तार ने इस गुणस्थान में उपचार से 4 धर्मध्यान घटाये हैं। अविरतादि गुणस्थानों में कौन-कौनसे धर्मस्थान होते हैं, ऐसा आगम प्रमाण हमारी जानकारी में नहीं है, अतः अविरत सम्यक्त्वादि तीन गुणस्थानों में उपचार से 4 धर्मध्यान होते हैं, इसी को हमने यहाँ ग्रहण किया है। (गुणस्थान मार्गणा)

एक मानव में देखा...!?

(मानव के विश्वरूप!)

(चाल - एक लड़की को देखा...)

एक मानव को देखा तो ऐसा देखा...एक भावी भगवान् सभी जीवों में महान्...

ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न सभी आदर्श सम्पन्न...दया दान सेवान्व सत्य

समतावान्..एक..(1)

अन्य पक्ष भी सहित महान् दुर्गुण युक्त..(हर) पाप में अग्रगण्य सभी जीवों में क्रूरतम..

दयादान सेवाहीन सत्य-समता विहीन..मोह अज्ञान आच्छन्न सभी दुर्गति कारण..एक..(2)

सभी गुणस्थान सम्पन्न संज्ञी पर्याप्त प्राणवान्...आहार-भय-मैथुन-परिग्रहवान्...

पंचेन्द्रिय त्रस व मनुष्य गति सम्पन्न...योगवेद व सभी कषाय सम्पन्न...एक...(3)

कुज्ञान-सुज्ञान सम्पन्न संयम व असंयम...चारों दर्शन सम्पन्न षट् लेश्या युक्तवान्...

भव्य-अभव्य संभव इससे परे मोक्षजीव..छहों सम्यक्त्व संभव सभी उपयोग सह..एक..(4)

अशुभ-शुभ-शुक्लध्यान से युक्त...आस्रव-बंध से मोक्ष पर्यन्त..

कुलकोटि बारह लाख जाति चौदह लाख...चारों गति व पंचम गति मोक्ष तक..एक..(5)

विश्व रूप है मानव अनंत आयामवान्...सभी के केन्द्र में है विराजमान्...

मानव ! विकास से तू बनो महान्/(भगवान्)..‘कनकनंदी’ अतः करे तुझे आह्वान..एक..(6)

मनुष्यगति में 24 स्थान

| क्र.सं. | नाम | भेद | मनुष्यगति |
|---------|-----------|-----|--|
| 1. | गुणस्थान | 14 | 14 गुणस्थान |
| 2. | जीवसमास | 14 | 2 (संज्ञी पर्याप्त, संज्ञी अपर्याप्त) |
| 3. | पर्याप्ति | 6 | 6 पर्याप्तियाँ, 6 अपर्याप्तियाँ |
| 4. | प्राण | 10 | 10 पर्याप्त के, 7 अपर्याप्त के केवली जिन के 4/2/1 |
| 5. | संज्ञा | 4 | 4 तथा क्षीणसंज्ञा |
| 6. | गति | 4 | 1 मनुष्य |
| 7. | इन्द्रिय | 5 | 1 पंचेन्द्रिय |
| 8. | काय | 6 | 1 त्रस |
| 9. | योग | 15 | 13 (4 मनोयोग + 4 वचनयोग) + 2 औदा. द्विक + 2 आहा. द्विक+1 कार्मणकाययोग) |
| 10. | वेद | 3 | 3 तथा अपगतवेद |
| 11. | कषाय | 25 | 25 तथा अकषाय |
| 12. | ज्ञान | 8 | 8 (5 ज्ञान + 3 कुज्ञान) |
| 13. | संयम | 7 | 7 (मोक्ष) |
| 14. | दर्शन | 4 | 4 (चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल) |
| 15. | लेश्या | 6 | 6 तथा अलेश्या |
| 16. | भव्य | 2 | 2 (भव्य, अभव्य) |
| 17. | सम्यक्त्व | 6 | 6 |
| 18. | संज्ञी | 2 | 1 संज्ञी तथा संज्ञी-असंज्ञी रहित मोक्ष |
| 19. | आहारक | 2 | 2 (आहारक, अनाहारक) |
| 20. | उपयोग | 12 | 12 (8 ज्ञान + 4 दर्शन) |
| 21. | ध्यान | 16 | 16 (4 आर्त्तध्यान + 4 रौद्रध्यान + 4 धर्म + 4 शुक्ल) मोक्ष |

| | | |
|-----------|----------|---------------------------|
| 22. आस्रव | 57 | 55 (2 वैक्रि. द्विक बिना) |
| 23. जाति | 84 लाख | 14 लाख |
| 24. कुल | 197½ | 12 लाख कोटि |
| | लाख कोटि | |

मनुष्य नियम से संज्ञी पंचेन्द्रिय ही होते हैं, अतः पर्याप्त मनुष्य के संज्ञी पर्याप्त एवं निर्वृत्यपर्याप्त-लब्ध्यपर्याप्त अवस्था प्राप्त अपर्याप्त मनुष्य के संज्ञी अपर्याप्त जीवसमास होता है।

पर्याप्त मनुष्य के विग्रहगति एवं निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था में 6 अपर्याप्तियाँ होती हैं। पर्याप्त मनुष्य के पर्याप्त अवस्था में 6 पर्याप्तियाँ होती हैं।

लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य के विग्रहगति एवं शरीर ग्रहण करने में प्रथम समय से लेकर पूरे जीवनकाल में 6 अपर्याप्तियाँ होती हैं।

पर्याप्त अवस्था में 10 प्राण एवं विग्रहगति और अपर्याप्त (दोनों) अवस्था में 7 प्राण होते हैं। स्वस्थान केवली जिन के 4 प्राण, कपाट-प्रतर-लोकपूरण-प्रतर-कपाट समुद्घातगत केवली जिन के 2 प्राण एवं आयोग केवली जिन के 1 प्राण होते हैं।

मनुष्यगति में 14 गुणस्थान होते हैं। मोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय होने से प्राप्त क्षीण कषाय गुणस्थान में 4 संज्ञा का अभाव है अर्थात् 4 संज्ञायें नष्ट हो चुकी हैं, अतः 12-13-14 इन गुणस्थान से क्षीण संज्ञा होती है।

वैक्रियक शरीर के निमित्त से उत्पन्न 2 योग औदारिक शरीरधारी मनुष्यों के नहीं होते हैं। छोटे गुणस्थानवर्ती मुनिराज के तपश्चरण विशेष से विक्रिया ऋद्धि प्रकट होती है। चक्रवर्ती, बलदेव, नारायण आदि महापुरुषों के भी पृथक् विक्रिया होती है। कोई-कोई तिर्यच जीवों में और अग्निकायिक वायुकायिक जीवों में भी विक्रिया देखी जाती है, परंतु इन सबके औदारिकात्मक वैक्रियिक शरीर होता है, अतः वैक्रियिक शरीर के निमित्त से होने वाले 2 योग यहाँ नहीं होते हैं।

मनुष्य गति में 3 वेद होते हैं। द्रव्य पुरुष में 14 गुणस्थान होते हैं। द्रव्य स्त्री एवं द्रव्य नपुंसक में 5 गुणस्थान होते हैं। भाववेद अपेक्षा तीनों वेद का उदय प्रथम गुणस्थान से नवमें गुणस्थान तक होता है। उससे ऊपर के सभी गुणस्थानों में

अपगतवेद (वेद रहित) अवस्था है। कषाय का उदय दसवें गुणस्थान तक ही है, अतः ऊपर के गुणस्थानों में अकषाय अवस्था है।

पर्याप्त मनुष्य के प्रथमादि 4 गुणस्थानों में 6 लेश्या होती हैं। लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य के प्रथम गुणस्थान में एवं निर्वृत्यपर्याप्त मनुष्य के प्रथम 2 गुणस्थानों में 3 में अशुभ लेश्या होती हैं। निर्वृत्यपर्याप्त मनुष्य के चतुर्थ गुणस्थान में 6 लेश्या होती हैं। पर्याप्त मनुष्य के पाँचवें गुणस्थान से सातवें गुणस्थान तक 3 शुभ लेश्या होती है एवं ऊपर के गुणस्थानों में सर्वत्र शुक्ल लेश्या होती है। अयोगकेवली गुणस्थान में लेश्या नहीं है। प्रथम नरक से छठे नरक तक के असंयत सम्यग्दृष्टि नारकी मरण करके मनुष्यों में अपनी-अपनी पूर्व लेश्याओं के साथ ही उत्पन्न होते हैं, अतः मनुष्य की निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था में 3 अशुभ लेश्या होती हैं। उसी प्रकार असंयत सम्यग्दृष्टि देव भी मरण करके अपनी-अपनी पूर्व लेश्याओं के साथ मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं, उस समय असंयत सम्यग्दृष्टि मनुष्य की निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था में 3 शुभ लेश्या होती हैं। मनुष्य के चतुर्थ गुणस्थान में छह लेश्या होती हैं। कर्मभूमिज मनुष्य ही केवली-श्रुतकेवली के पादमूल में क्षायिक सम्यक्त्व का प्रारंभ करते हैं। किसी कर्मभूमिज मनुष्य ने मनुष्यायु का बंध किया। आयु बंध करने के पश्चात् उस मनुष्य ने क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त किया अथवा क्षायिक सम्यक्त्व का प्रतिष्ठापन किया। ऐसा मनुष्य मरकर भोगभूमिज मनुष्य में ही उत्पन्न होता है। जिन्होंने क्षायिक सम्यक्त्व का प्रतिष्ठापन किया है, ऐसा जीव भोगभूमि में उत्पन्न होकर वहाँ क्षायिक सम्यक्त्व का निष्ठापन करता है। इस प्रकार कर्मभूमिज एवं भोगभूमिज मनुष्यों में क्षायिक सम्यक्त्व होता है।

**आप कितने सफल है और कितने असफल,
जानिए...मैरीएलेन ट्रिबी के 'द सक्सेस इंडिकेटर' से**

सफल व्यक्ति

खुद से जुड़े लोगों की उनके उत्कृष्ट कार्यों के लिए प्रशंसा करते हैं।

हमेशा दूसरों के प्रति कृतज्ञता की भावना रखते हैं।

दूसरों को उनकी गलतियों के लिए माफ करते हैं।
दूसरों को उनकी जीत पर श्रेय देने का काम करते हैं।
अपनी विफलताओं की जिम्मेदारी खुद उठाते हैं।
रोज पढ़ने के साथ ही लगातार सीखते भी हैं।
हमेशा अपने पास एक जर्नल रखते हैं।
आइडियाज के बारे में बात करते हैं।
दूसरों को सफल होते देखना चाहते हैं।
इंफॉर्मेशन व डेटा शेयर करते हैं। एक टु-बी लिस्ट बनाते हैं।
खुशी व्यक्त करते हैं। गोल्स को सेट व लाइफप्लान्स को डेवलप करते हैं।
बदलाव का स्वागत करते हैं। एक दु-डू/प्रोजेक्ट लिस्ट बनाते हैं।
परिवर्तनकारी दृष्टिकोण रखते हैं।

असफल व्यक्ति

अक्सर लोगों या परिस्थितियों की आलोचना करते हैं।
दूसरों पर अपने अधिकार की भावना रखते हैं।
किसी से भूल हो तो नाराजगी बनाए रखते हैं।
दूसरों की जीत का श्रेय भी खुद ले लेते हैं।
अपनी विफलताओं के लिए दूसरों को जिम्मेदार मानते हैं।
रोज टीवी देखते हैं और सोचते हैं कि वे सब जानते हैं।
कहते हैं कि वे जर्नल रखते हैं, लेकिन असल में ऐसा नहीं करते हैं।
लोगों के बारे में बात करते हैं। चाहते हैं कि दूसरे अपने प्रयासों में विफल हों।
इंफॉर्मेशन व डेटा अपने पास रखते हैं। नहीं जानते कि वे क्या बनना चाहते हैं।
गुस्से का प्रदर्शन करते हैं। बिना प्लान के काम करते हैं।
बदलाव से डरते हैं। कभी गोल्स नहीं बनाते हैं।
लेन-देन का रवैया रखते हैं।

स्व-परमात्मा प्राप्ति के उपाय- स्व-परमात्मा को स्वयं में ही प्रगट कर

(चाल:-1. क्या मिलिए... 2. भातुकली...)

- तेरा परमात्मा तुझमें ही स्थित, कहाँ ढूँढ रहा बहिरंग में मूढ़।
गोघृत तो गोदुग्ध में ही स्थित, गोघृत न मिले कोई नदी पर्वत॥ (1)
- अभी तक जितने हुए अरिहंत-सिद्ध, मिथ्यादृष्टि भव्य से हुए अरिहंत-सिद्ध।
महावीर स्वामी ही नहीं थे क्रूर शेर, सभी सिद्ध भगवान् थे संसारी जीव॥ (2)
- वे जैसे बने आत्मा से परमात्मा, गुणस्थान आरोहण से पाई ये दशा।
तथा ही हर भव्य बनते जिन से जिनेन्द्र, अन्तरंग-बहिरंग निमित्त के माध्यम॥ (3)
- यथा बीज बनते हैं विशालवृक्ष, जलमृदावायु आदि के पाकर निमित्त।
तथाहि भव्य क्रमशः बनते भगवान्, भूतपूर्व में सभी भगवान् थे भव्य॥ (4)
- देव-शास्त्र-गुरु निमित्त पाकर, पंचविध लब्धियों के सुयोग पाकर।
हे! भव्य तू निज मूढ़ता को छोड़कर, सुदृष्टि बनके मोक्षमार्ग प्रारंभ कर॥ (5)
- श्रद्धान करो स्वआत्मस्वरूप, मैं हूँ निश्चय से शुद्ध-बुद्ध आनन्द।
अनादि कर्म बन्ध से बना हूँ संसारी, कर्मबन्ध नाश से पाऊँ शिवपुरी॥ (6)
- कर्मबन्ध नाश हेतु करो पुरुषार्थ, राग-द्वेष-मोह क्षय करना ही पुरुषार्थ।
चतुः आश्रम चतुः पुरुषार्थ कर, अन्तिम आश्रम पुरुषार्थ में तत्पर॥ (7)
- समस्त विभाव-परभाव हो दूर, स्व-स्वभाव में ही हो जाओ स्थिर।
इससे ही तेरा परमात्मा होगा प्रगट, इस हेतु ही साधना रत “सूरी कनक”॥ (8)

ग.पु.काँ. सागवाड़ा, दि-24-04-2022, मध्याह्न-2.48

संदर्भ-

यस्य स्वयं स्वभावाप्तिरभावे कृत्स्नकर्मणः।

तस्मै संज्ञानरूपाय नमोस्तु परमात्मने॥ (1) इष्टो.

He who has attained the purity of his nature by the destruction of all his karmas by his own effort-to such an omniscient Paramatma Salutation is offered.

परमात्मा को मेरा नमस्कार हो। परम सर्वोत्कृष्ट अप्रतिहत अव्याबाध होने के कारण समस्त संसारी जीवों से प्रकृष्ट होने से वह परमात्मा परम चैतन्य स्वरूप उत्कृष्ट आत्मा नमस्कार के योग्य है। वह परमात्मा सम्यग्ज्ञान स्वरूप है। समस्त अर्थ का साक्षात्कारी होने के कारण अत्यन्त सूक्ष्म वस्तु का भी ज्ञान कर लेता है। यह परम उत्कृष्ट ज्ञान समस्त कर्म शत्रुओं को नष्ट करने के कारण, विकार के त्याग के कारण स्वपर अवबोध रूप सम्पूर्ण ज्ञान को प्राप्त हुआ है।

ऐसे सम्यग्ज्ञान स्वरूप परमात्मा को नमन हो। ऐसे परम आराध्य का स्वरूप कहकर उसकी प्राप्ति के उपाय कह रहे हैं। यह परमात्मा अवस्था स्वस्वभाव की प्राप्ति से अर्थात् निर्मल निश्चल चित् स्वरूप की उपलब्धि से तादात्म परिणति से उपलब्ध होता है। इसका अर्थ है कृतकृत्य होकर स्वरूप में अवस्थित होना। इससे वह स्वयं सम्पूर्ण रत्नत्रयात्मक हो जाता है। इस अवस्था की उपलब्धि समस्त द्रव्य भाव कर्म जो आत्म पारतंत्र के लिए निमित्त भूत है उसकी शक्ति के विनाश से होती है।

समीक्षा:—जो जिस गुण की उपलब्धि चाहता है वह उसको नमस्कार करता है, जिसके पास वे गुण विद्यमान हो। परमात्मा के गुण को चाहने वाले आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने परमात्मा को इसलिए यहाँ पर नमस्कार किया है।

जिस प्रकार सूर्य स्वयं प्रकाशमान होते हुए भी घने बादल के कारण उसकी किरणें छिप जाती हैं तथा सूर्य नहीं दिखाई देता है, उसी प्रकार प्रत्येक आत्मा में परमात्मा के अनंतगुण विद्यमान हैं। तथापि कर्मरूपी घने बादल के कारण वे आध्यात्मिक गुण जीव में गुप्त रूप में, सुप्त रूप में, अविकसित रूप में विद्यमान रहते हैं। परंतु जिस प्रकार पवन प्रवाह आदि से बादल हट जाने के बाद, छंट जाने के बाद सूर्य प्रकट हो जाता है और सूर्य रश्मियाँ बिखर जाती हैं, उसी प्रकार रत्नत्रयरूपी साधन से कर्मरूपी बादल आत्मा से हट जाते हैं जिसके कारण आत्मा के समस्त गुण प्रकट हो जाते हैं। इस कर्मरहित अवस्था को ही परमात्मावस्था, सिद्धावस्था, आत्मोपलब्धि, परमार्थ सिद्धि, केवलज्ञान घन स्वरूप, सच्चिदानंद स्वरूप, मोक्षावस्था, निर्वाण आदि शब्दों से सम्बोधित किया जाता है। उपर्युक्त परमात्म स्वरूप को प्राप्त करना प्रत्येक सम्यग्दृष्टि, मुमुक्षु जीव का परम लक्ष्य, परम उद्देश्य होता है। इसलिए वह

उस परमावस्था का श्रद्धान करता है, विश्वास करता है, प्रतीति करता है, परिज्ञान करता है, उसका स्मरण करता है, उसका ध्यान करता है, उसे नमन करता है। इसके माध्यम से वह स्वनिहित आध्यात्मिक शक्तियों का प्रकटीकरण करता है। जिस प्रकार चुम्बक के संपर्क से, उसके घर्षण से लोहा भी चुम्बक बन जाता है; प्रज्वलित दीपक के संपर्क से बुझा हुआ दीपक भी प्रज्वलित हो जाता है। पूज्यपाद स्वामि ने समाधितंत्र में कहा भी है-

भिन्नात्मानमुपास्यात्मा परो भवतितादृशः।

वत्तिर्दीपं यथोपास्यं भिन्ना भवति तादृशि।।

अपने आत्मा से भिन्न अरिहन्त, सिद्ध परमात्मा की उपासना, आराधना करके आत्मा उनके समान परमात्मा बन जाता है। जैसे दीपक से भिन्न बत्ती दीपक की उपासना करके यानी साथ रहकर दीपक के समान प्रकाशमान बन जाती है।

येन भावेन तद्रूपं ध्यायेतमात्मानमात्मवित्।

तेन तन्मयता याति सोपाधिः स्फटिको यथा।।

जिस भाव से जिस प्रकार यह आत्मा का ध्यान करता है उस स्वरूपमय हो जाता है। जैसे स्फटिक मणि विभिन्न रंगों के सम्पर्क से उस वर्ण रूप परिणमन करता है।

परिणमते येनात्मा भावेन स तेन तन्मयो भवति।

अर्हत्ध्यानविष्टो भवार्हन् स्यात् स्वयं तस्मात्।।

यह आत्मा जिस भाव से परिणमन करता है वह उस स्वरूपमय हो जाता है। अर्हत् के ध्यान सहित ध्याता स्वयं अर्हत् रूप हो जाता है।

शुद्धात्मा होने का उपाय

योग्योपादानयोगेन दृषदः स्वर्णता मता।

द्रव्यादिस्वादि संपत्तावात्मनोप्यात्मता मता।। (2)

As gold in the ore is held to become pure gold on the intervention of the real causes of purification, in the same manner on the attainment to self-nature the impure (unemancipated) Soul is also regarded as pure spirit.

शिष्य प्रश्न करता है कि-

“स्वयं स्वयं की आत्मोपलब्धि किस प्रकार होती है?”

स्वयं आत्मा के द्वारा स्वस्वरूप की उपलब्धि अर्थात् सम्यक्त्व आदि अष्टगुण की प्राप्ति किस प्रकार, किस उपाय से होती है उसके दृष्टान्त का अभाव है। इस प्रकार शिष्य की शंका होने पर आचार्य उसका समाधान निम्न प्रकार से देते हैं-

जिस प्रकार सुवर्ण परिणमन करने योग्य उपादान से युक्त सुवर्ण पाषाण योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अर्थात् तापन, ताडन, घर्षण, छेदन आदिको प्राप्त करके शुद्ध सुवर्ण बन जाता है उसी प्रकार भव्यजीव भी भव्यात्मा भी स्वद्रव्यादि चतुष्टय को प्राप्त करके निर्मल चैतन्य स्वरूप परमात्मा बन जाता है। भव्य जीव सुस्वद्रव्य, सुस्वक्षेत्र, सुस्वकाल, सुस्वभाव रूपी चतुष्टय को प्राप्त करके शुद्ध आत्म स्वभाव को प्राप्त कर लेता है। सुशब्द प्रशंसावाची/ प्रशस्तवाची है। उसका अर्थ यह है कि प्रकृत कार्य के लिए जिस द्रव्यादिक की आवश्यकता है उसकी परिपूर्णता है।

समीक्षा:-योग्य सुवर्ण पाषाण भी जब तक योग्य सुवर्णकार, अग्नि आदि निमित्त को प्राप्त नहीं करता है तब तक शुद्ध नहीं बनता है, उसी प्रकार भव्य भी जब तक गुरु उपदेश योग्य काल, उत्तम शरीर उत्तम भाव आदि को प्राप्त नहीं करता है तब तक मोक्ष को प्राप्त नहीं कर पाता है। परन्तु जिस प्रकार अंध सुवर्ण पाषाण को कितना भी शुद्ध करने पर वह शुद्ध सुवर्ण नहीं बनता है, भट्टरा मूंग को कितना भी सीजाने पर वह सीजती नहीं है, उसी प्रकार जो अभव्य होता है वह बाह्य निमित्त को प्राप्त करके भी भगवान् नहीं बन पाता है। प्रत्येक कार्य सम्यक् अन्तरंग-बहिरंग भावों के सद्भाव से एवं विरोधी कारणों के अभाव से होता है। यथा:-

कालो सहाव णियइ पुव्वकयं पुरिस कारणेगंता।

मिच्छंतं ते चेव उ समासओ होंति सम्मत्त।। (53)

प्रत्येक कार्य के लिए (1) काल (2) स्वभाव (3) नियति (4) पूर्वकृत (5) पुरुषार्थ। इन पाँच कारणों का सम्यक् समन्वय चाहिए और प्रत्येक कार्य के लिए पाँचों को मानना सम्यक्त्व है। एक-एक को कार्योत्पत्ति में कारण मानना मिथ्यात्व है। काल रूपी कारण केवल बाह्य उदासीन कारण है, उपादान अथवा प्रेरक कारण नहीं है।

यदि काल को ही संपूर्ण कार्यों का कर्त्ता मानेंगे तब काल को ही कर्मबंध होना चाहिए, काल को ही सुख-दुःख होना चाहिए, काल को ही मोक्ष पद की प्राप्ति होनी चाहिए, परन्तु यह आगम, प्रत्यक्ष एवं अनुमान विरुद्ध है क्योंकि इस प्रकार उपलब्ध नहीं है।

इस प्रकार नियति को ही यदि कार्य के लिए कारण मानेंगे तब काल, स्वभाव, पूर्वकृत, पुरुषार्थ रूप चार कारणों के लोप का प्रसंग प्राप्त होता है परन्तु विकल अर्थात् न्यून कारण से कार्य नहीं हो सकता है। द्रव्य में परिणमन के लिए उदासीन रूप काल का अभाव होने पर द्रव्य में परिणमन नहीं होगा, स्वभाव के अभाव से द्रव्य का ही लोप होगा। पूर्वकृत के अभाव से एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक एवं मिथ्यात्व से चौदह गुणस्थान तक जीव की अवस्था विशेष का अभाव होने से संसार का अभाव हो जायेगा। जिससे प्रत्येक जीव शुद्ध-बुद्ध, नित्य निरंजन स्वरूप हो जायेंगे जो कि प्रत्यक्ष विरुद्ध है।

कर्म नहीं है तो कर्म नष्ट करने के लिए पुरुषार्थ की क्या आवश्यकता है? संसार के अभाव से प्रतिपक्षभूत मोक्ष का भी अभाव हो जायेगा। संसारी मुक्त जीवों का अभाव होने से प्रतिपक्षभूत अजीव द्रव्य का अभाव हो जायेगा तब सर्व शून्यता का प्रसंग आयेगा जो कि अनुपलब्ध है।

यदि केवल नियति को ही कार्य में कारण मानेंगे तो पुरुषार्थ के अभाव होने से लौकिक व अलौकिक कार्य के लिए जीव बुद्धिपूर्वक अथवा अबुद्धिपूर्वक क्रिया करता है, उसका लोप होगा, पुरुषार्थ के अभाव से मोक्ष का भी अभाव हो जायेगा। परन्तु जो अनंत केवली हुए हैं वे सभी पुरुषार्थपूर्वक, बुद्धिपूर्वक, गृहस्थ जीवन का त्यागकर, शरीर स्थित पोषाक निकालकर, केशलोच कर, निर्ग्रन्थ रूप धारण कर, कठोर अंतरंग-बहिरंग तपश्चरण कर मोक्ष पदवी प्राप्त किये हैं।

ध्रुव सिद्धि तित्थयरो चउणाण जुदोवि करेइ तवयरणं।

णाऊण ध्रुवं कुज्जा तवयरणं णाणजुत्तो वि।। (60)

तद्भव मोक्षगामी, चरमशरीरी, निश्चितरूप से तद्भव में मोक्ष जाने वाले, जन्म से ही क्षायिक सम्यग्दृष्टि, मति-श्रुत-अवधिज्ञान के धारक होते हैं और अंतरंग-बहिरंग कारण मिलने पर सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग कर 'नमः सिद्धेभ्यः'

बोलकर केंशलोच कर दीक्षा लेते है। तब अनेक ऋद्धि-सिद्धि सहित मनःपर्यय ज्ञान प्रगट होने पर चार ज्ञानीधारी होने के कारण उन्हें स्पष्ट अवगत है कि मैं निश्चित मोक्ष जाऊँगा तो भी तीर्थंकर भगवान् कठोर-कठोर अंतरंग-बहिरंग तपश्चरण करते हैं, मासोपवासी होकर पर्वत शिखर पर ग्रीष्म ऋतु में, जिस समय पाँव के नीचे पृथ्वी जलती है और सूर्य ऊपर अत्यन्त संताप देता है, चारों ओर उष्ण वायु शरीर का शोषण करती है, तब भी कर्म शत्रु को नष्ट करने के लिए अंतरंग-बहिरंग तपश्चरण करते हैं, अन्यथा कर्म नष्ट नहीं हो सकता है कर्म नष्ट हुए बिना शाश्वतिक आत्मोत्थ अतीन्द्रिय ज्ञानानंद सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

तीर्थेश्वरा जगज्येष्ठा, यद्यपि मोक्षगामिना।

तथापि पालितं तैश्च चारित्रं मुक्ति हेतवे॥

जगत् में ज्येष्ठ तीर्थ के ईश्वर जो निश्चित मोक्षगामी है तो भी वे मुक्ति के हेतु चारित्र का पालन करते हैं।

जदि ण वि कुव्वदि छेदं ण मुच्चदे तेण बंधणवसो स।

काले ण दु बहुहेण ण सो णरोपावदि विमोक्खं॥(289)

जहं बंधे छेत्तूण य बंधण बद्धो दु पापदि विमोक्खं।

तह बंधे छेत्तूण य जीवो संपावदि विमोक्खं॥(292)

कोई एक पुरुष धातु निर्मित श्रृंखला से बंधनबद्ध होकर पड़ा है, वह उस श्रृंखला का वर्ण, स्वभाव, गुणधर्म के बारे में जानता है, और मनन चिंतवन भी करता है, तो भी तब तक उस बंधन से मुक्त नहीं हो सकता है जब तक कि वह बंधन को छेदन, भेदन, खण्डन नहीं करेगा। उसी प्रकार संसारी जीव कर्मरूपी बंधन में पड़ा है। वह विषय को जानता है, मानता है और बंधन से मुक्त होने के लिए चिंतन-मनन भी करता है, परन्तु जब तक कर्मबंधन को नष्ट करने के लिए दृढ़ पुरुषार्थ रूप क्रिया नहीं करेगा वह पुरुष बहुकाल तक मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता है।

जैसे रज्जु (रस्सी), लोह, स्वर्ण, काष्ठ रूप बंधन को तोड़कर-फोड़कर, खोलकर, नष्ट कर अपने विज्ञान और पुरुषार्थ के बल से उस बंधन से मुक्त हो

सकता है उसी प्रकार मुमुक्षु वीर भी स्वविज्ञान, पुरुषार्थ रूपी वीतराग निर्विकल्प, स्वसंवेदन ज्ञान के बल से उस बंधन को छेदकर, भेदकर, तोड़कर, नष्ट कर विदारण कर अपने शुद्धात्मा को उपलंभ स्वरूप मोक्ष को प्राप्त करता है वही परम पुरुषार्थ है।

बिना पुरुषार्थ मोक्ष नहीं होता, केवल नियति का मानना, परम पुरुषार्थ का तिरस्कार करना, अवहेलना करना, नकार करना है। इसलिये एकांत नियतिवाद घोर मिथ्यात्व है, शिथिलाचार, भ्रष्टाचार का पोषक है। यदि नियति से सब कुछ होता है तो धन-संपत्ति के लिए व्यापार, पुत्र उत्पत्ति के लिए विवाह, रोग निवारण के लिए औषध सेवन, ज्ञानार्जन के लिए विद्यालय जाना, शास्त्र अध्ययन प्रवचन, शिविर आदि की क्या आवश्यकता है?

मोक्ष की उपलब्धि तो दूर रहे किन्तु बिना सुद्रव्यादि के सम्यग्दर्शन की उपलब्धि भी दूर ही है। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के कारण में कहा है-

दंसणमोहुवसमदो उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं।

उवसमसम्मत्तमिणं पसण्णमलपंकतोयसमं।। (650)

खयउवसमियविसोही देसण-पाउग्ग-करणलब्धी य।

चत्तारि वि सामण्णा करणं पुण होदि सम्मते।। (657)

गाथार्थः-जिस प्रकार कीचड़ के नीचे बैठ जाने से जल निर्मल हो जाता है, उसी प्रकार दर्शन मोहनीय कर्म के उपशम से पदार्थ का जो श्रद्धान होता है वह उपशम सम्यक्त्व है। क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य और करण ये पाँच लब्धियाँ होती हैं। इनमें से चार तो सामान्य हैं परन्तु करण लब्धि के होने पर सम्यक्त्व अवश्य होता है।

विशेषार्थः-जैसे कतक आदिद्रव्य के सम्बन्ध से जल में कीचड़ का उपशम हो जाता है उसी प्रकार आत्मा में कर्म की निज शक्ति का कारणवश प्रकट न होना उपशम है। प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन से पूर्व क्षयोपशम लब्धि-1, विशुद्धि लब्धि-2, देशना लब्धि-3, प्रायोग्य लब्धि-4, करणलब्धि-5. ये पाँच लब्धियाँ होती हैं। इनका सविस्तार कथन लब्धिसार ग्रन्थ में है। यहाँ भी संक्षेप में कहा जाता है।

कम्ममल पडलसत्ती पडिसमयमणंत गुणविहीणकमा।

होदूणुदीरदि जदा तदा खओवसम लब्धी दु।। (4)

कर्ममल रूप पटल की फलदान शक्ति अर्थात् अनुभाग जिस काल में प्रति समय क्रम से अनन्तगुणा हीन होकर उदय को प्राप्त होता है, वह क्षयोपशम लब्धि है।

धवलाकार ने भी कहा है कि पूर्वसंचित कर्मों के मलरूपी पटल के अनुभाग स्पर्धक जिस समय विशुद्धि के द्वारा प्रति समय अनन्तगुणहीन होते हुए भी उदीरणा को प्राप्त किए जाते हैं, उस समय क्षयोपशम लब्धि होती है।

आदिमलद्धिभवो जो भावो जीवस्स सादंपहुदीणं।

सन्थाणं पयडीणं बंधणजोगो विसुद्धिलद्धि सो।। (5)

क्षयोपशम लब्धि से उत्पन्न जीव के जो परिणाम साता आदि प्रशस्त प्रकृतियों के बन्ध के कारणभूत हैं वे विशुद्ध परिणाम विशुद्धि लब्धि हैं।

धवलाकार ने भी कहा है कि प्रति समय अनन्तगुणित हीन क्रम से उदीरित अनुभाग स्पर्धकों से उत्पन्न हुआ, साता आदि शुभ कर्मों के बन्ध का निमित्तभूत और असातादि अशुभ कर्मों के बन्ध का विरोधी जो जीव का परिणाम है उसे विशुद्धि कहते हैं। उसकी प्राप्ति का नाम विशुद्धि लब्धि है।

छह्वणवपयत्थोपदेशयर-सूरिपहुदि लाहो जो।

देसिदपत्थधारण लाहो वा तदियलद्धी दु।। (6) (लब्धिसार)

छह द्रव्य और नव पदार्थ का उपदेश करने वाले आचार्यादि का लाभ अथवा उपदिष्ट पदार्थों को धारण करने की शक्ति की प्राप्ति देशना लब्धि है।

धवलाकार ने भी कहा है कि छह द्रव्य और नव पदार्थों के उपदेश का नाम देशना है। उस देशना से परिणत आचार्य आदि की उपलब्धि को और उपदिष्ट अर्थ के ग्रहण, धारण तथा विचारण की शक्ति के समागम को देशना लब्धि कहते हैं।

अंतो कोड़ाकोड़ी विट्टाणे ठिदिरसाण जं करणं।

पाउग्गलद्धिणामा भव्वाभव्वेसु सामण्ण।। (7) (लब्धिसार)

पूर्वोक्त तीन लब्धि युक्त जीव में प्रतिसमय विशुद्धि में वृद्धि होने के कारण आयु के अतिरिक्त शेष सात कर्मों में स्थिति काटकर अन्तःकोडाकोडी मात्र कर देता है और अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग द्विस्थानिक अर्थात् लता दारू रूप कर देता है। इस योग्यता की प्राप्ति प्रायोग्य लब्धि है।

धवलाकार ने भी कहा है कि सर्व कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति और अप्रशस्त प्रकृतियों के उत्कृष्ट अनुभाग को घात करके क्रमशः अन्तःकोड़ाकोड़ी स्थिति में द्विस्थानीय अनुभाग में अवस्थान करने को प्रायोग्य लब्धि कहते हैं। क्योंकि इन अवस्थाओं के होने पर जीव करणलब्धि के योग्य होते हैं। प्रारंभ की ये चारों लब्धियाँ भव्य और अभव्य जीवों के साधारण है, क्योंकि दोनों ही प्रकार के जीवों में इन चारों लब्धियों का होना संभव है। किन्तु अधःकरण अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण ये तीनों करण भव्य मिथ्यादृष्टि जीव के ही होते हैं, क्योंकि अन्यत्र वे पाये नहीं जाते।

चदुगदिभव्वो सण्णी पज्जत्तो सुज्झगो य सागारो।

जागारो सल्लेसो सलद्धिगो सम्ममुवगमई॥ (652)

गाथार्थः चारों गति का भव्य, संज्ञी, पर्याप्त, विशुद्ध, साकार उपयोगी, जागृत, प्रशस्त लेश्या वाला और लब्धि संयुक्त जीव सम्यक्त्व को प्राप्त करता है।

विशेषार्थः नारक, तिर्यच, मनुष्य और देव इन चारों गतियों के जीवों में से किसी भी गति का जीव दर्शन मोहनीय कर्म को उपशमाता है। कहा भी है-

दंसणमोहस्सुवसामओ दु चदुसु वि गदीसु बोद्धव्वो।

पंचिदिओ य सण्णी णियमा सो होदि पज्जता।।

दर्शनमोहनीय कर्म को उपशमाता हुआ यह चारों ही गतियों में उपशमाता है। चारों ही गतियों में उपशमाता हुआ पंचेन्द्रियों में उपशमाता है, एकेन्द्रियों और विकलेन्द्रियों में नहीं। पंचेन्द्रियों में उपशमाता हुआ संज्ञियों में उपशमाता है, असंज्ञियों में नहीं। संज्ञियों में उपशमाता हुआ गर्भोपक्रान्तिकों में अर्थात् गर्भज जीवों में उपशमाता है, सम्मूर्च्छिओं में नहीं। गर्भोपक्रान्तिकों में उपशमाता हुआ पर्याप्तकों में उपशमाता है, अपर्याप्तकों में नहीं। पर्याप्तकों में उपशमाता हुआ संख्यात वर्ष की आयु वाले जीवों में भी उपशमाता है और असंख्यात वर्ष की आयु वाले जीवों में भी उपशमाता है। लब्धपर्याप्त और निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था को छोड़कर नियम से निवृत्ति पर्याप्त जीव ही प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति के योग्य होता है।

व्रत ग्रहणीयः अव्रत त्याजनीय

वरं व्रतैः पदं दैवं नाव्रतैर्वृत नारकं।

छायातपस्ययोर्भेदः प्रतिपालयतोर्महान्॥ (3)

Observance of vow lead to birth in the heavens, therefore their observance is proper. The vowless life drag one to a birth in the hells, which is painful. Therefore vowlessness should be avoided, when two persons are waiting for the arrival of another person, but one of them waits in the heat of the sun and the other in the shade, great is the difference between their conditions; precisely the same difference is to be found between the condition of him who leads a life regulated by the vows and of him whose life is not so regulated.

शिष्य प्रश्न करता है कि-हे भगवन्। यदि सुद्रव्यादि की समग्रता से यह आत्मा शुद्ध आत्मा की उपलब्धि करता है तब हिंसादि विरति रूप व्रत-अनर्थ हो जाएंगे। आचार्य उत्तर देते हैं कि-हे वत्स! तुम्हारी जो शंका है कि व्रतादि अनर्थ हो जाएंगे वह नहीं है। उन व्रतादि से अशुभ कर्म का निरोध होता है, प्राचीन कर्म का एक देश क्षय अर्थात् निर्जरा होती है, पुण्य कर्म का संचय होता है-उससे स्वर्ग आदि पद की प्राप्ति होती है, इसे ही आचार्य श्री आगे तीसरे नं. श्लोक में स्पष्ट कर रहे हैं-

व्रतादि से विषय राग जनित सुख को देने वाला देव का अभ्युदय व्रतादि से प्राप्त होना श्रेष्ठ है जो कि सर्व जन प्रसिद्ध है। अव्रतादि से नरक-दुःख प्राप्त करना श्रेष्ठ नहीं है। खेद की बात यह है कि हिंसादि रूप अव्रत से अशुभ से दुःख स्वरूप नरक प्राप्त करना कैसे श्रेष्ठ हो सकता है? जब व्रत से देव एवं अव्रत से नरक की समानता की आशंका होती है तब आचार्य दोनों के महान् अन्तर को स्पष्टीकरण करने के लिए छाया एवं आतप का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। कोई दो व्यक्ति स्वकार्य वशात् नगर से यात्रा के लिए निकले। तीसरे मित्र के लिए दोनों को प्रतीक्षा करनी पड़ी। एक छाया में प्रतीक्षा करता है तो एक कड़ी धूप में प्रतीक्षा करता है। दोनों तब तक प्रतीक्षा करते हैं जब तक कि उनका मित्र नहीं आ जाता है। प्रतीक्षा की अपेक्षा दोनों की प्रतीक्षा समान होते हुए भी छाया में प्रतीक्षा करने वाला सुखमें रहता है, धूप में रहनेवाला कष्ट

में रहता है। इसी प्रकार जो व्रतादि करता है वह जब तक सुद्रव्यादि को प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त नहीं करता है तब तक वह स्वर्गादि सुख में रहता है, अन्य जो व्रतादि पालन नहीं करता है वह नरकादि दुःख में रहता है।

समीक्षा-शुद्ध निश्चय नय से आत्मा शुभ अशुभ तथा पुण्य-पाप से रहित सच्चिदानंद स्वरूप है। परन्तु जब तक वह शुद्ध अवस्था को प्राप्त नहीं करता है तब तक उसे शुभ के माध्यम से पुण्य का उपार्जन करना चाहिए। सम्यग्दृष्टि का पुण्य परम्परा से स्वर्ग एवं मोक्ष के लिए कारण बनता है। सम्यग्दृष्टि श्रावक तथा मुनि व्रत शुभोपयोग सहित, पुण्य उत्पादक तथा परंपरा से मोक्ष साधक है।

णाणादिरयण तियमिह सज्जं तं साधयन्ति जमणियमा।

जत्थ जमा सरसदिया णियमा णियतप्प परिणामः।। (2)

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप साध्य हैं। यम और नियम इस रत्नत्रय रूप साध्य को सिद्ध करने वाले हैं। साधन के बिना साध्य सिद्ध नहीं होती है इसलिये महाव्रतादि यम सामायिकादि नियम के बिना रत्नत्रय की सिद्धि नहीं हो सकती है। इसलिए मोक्ष के लिए व्रतादि अनिवार्य हैं। जो महाव्रतादि आजीवन पालन किया जाता है उसे यम कहते हैं। सामायिकादि अल्पकालावधि होने से यम कहलाते हैं।

मूलगुणेषु विसुद्धे वंदित्ता सव्व संजदे सिरसा।

इह परलोग हिदत्ये मूलगुणे कित्तइस्सामि।। (1)

“इह” शब्द प्रत्यक्ष को सूचित करने वाला है। “पर” शब्द इन्द्रियातीत जन्म को कहने वाला है और “लोक” शब्द देवो के ऐश्वर्य आदि का वाचक है। ‘हित’ शब्द से सुख, ऐश्वर्य पूजा सत्कार और चित्त की निवृत्ति फल आदि कहे जाते हैं, और ‘अर्थ’ शब्द से प्रयोजन अथवा फल विवक्षित है। इस प्रकार से इहलोक और परलोक के लिए अथवा इन उभय लोकों में सुख ऐश्वर्य आदि रूप ही है जिनका, वे इहलोक के लिए हितार्थ कहे जाते हैं। अर्थात् ये मूल गुण इहलोक और परलोक में सुख ऐश्वर्य आदि के निमित्त हैं। इन मूलगुणों का आचरण करते हुए जीव इस लोक में पूजा, सर्वजन से मान्यता गुरुता (बड़प्पन) और सभी जीवों से मैत्री भाव आदि को प्राप्त करते हैं तथा इन मूलगुणों को धारण करते हुए परलोक में देवों के ऐश्वर्य, तीर्थकर पद, चक्रवर्ती, बलदेव आदि के पद और सभी जनों में मनोज्ञता,

प्रियता आदि प्राप्त करते हैं। ऐसे मूलगुण जो कि सभी उत्तर गुणों के आधारपने को प्राप्त आचरण विशेष है।

ऐसा पसत्थभूदा समणाणं वा पुणो घरत्थाणं।

चरिया परेति भणिदा ताएव परं लहदि सोक्खं।। (254)

गाथार्थः—यह प्रशस्तभूत चर्या श्रमणों की होती है और गृहस्थों के तो मुख्य होती हैं ऐसा शास्त्रों में कहा गया है। उसी से गृहस्थ परम सौख्य को प्राप्त होता है।

तपोधन दूसरे साधुओं की वैयावृत्ति करते हुए अपने शरीर के द्वारा जो कुछ भी वैयावृत्य करते हैं वह पापारंभ व हिंसा से रहित होती है तथा वचनों के द्वारा धर्मोपदेश करते हैं। शेष औषधि अन्नपान आदि की सेवा गृहस्थों के आधीन है, इसलिये वैयावृत्य गृहस्थों का मुख्य धर्म है किन्तु साधुओं का गौण है। दूसरा कारण यह है कि विकार रहित चैतन्य के चमत्कार की भावना के विरोधी तथा इन्द्रिय विषय और कषायों के निमित्त से पैदा होने वाले आर्त और रौद्रध्यान में परिणमने वाले गृहस्थों को आत्माधीन निश्चय धर्म के पालने का अवकाश नहीं है। यदि वे गृहस्थ वैयावृत्यादि रूप शुभोपयोग धर्म वर्तन करें तो खोटे ध्यान से बचते हैं तथा साधुओं की संगति से गृहस्थों को व्यवहार मोक्षमार्ग के उपदेश का लाभ हो जाता है, इससे ही गृहस्थ परम्परा से निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

धम्मो दयाविसुद्धो पव्वज्जा सव्वंसंग परिचित्ता।

देवो ववगयमोहो उदयकरो भव्यजीवाणं।। (2)

दया से विशुद्ध जो धर्म सर्वसंग से रहित प्रवज्या अर्थात् मुनि दीक्षा, मोक्ष से रहित देव भव्य जीवों के लिये उदय कर रहा है।

वर वय तवेहि सग्गो मा दुक्खं होउ णिरइ इयरेहिं।

छायातविट्ठायाणं पडिवातंताण गुरु भेद।। (25)

जब तक रत्नत्रय की पूर्णता नहीं होती है तब तक मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती है। जब तक मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है तब तक व्रत तपों का पालन करके स्वर्ग प्राप्त करना श्रेष्ठ है। परन्तु अव्रती होकर नरक तिर्यचगति सम्बन्धी दुःख प्राप्त करना श्रेष्ठ नहीं है। जिस प्रकार एक पथिक को पीछे आनेवाले अपने साथी की राह देखने के लिए अत्यन्त उष्ण धूप में बैठने की अपेक्षा शीतल वृक्ष की छाया में

बैठना श्रेयस्कर है। ऐसा कौन मूर्ख होगा जो शीतल छाया को छोड़कर अत्यंत उष्ण धूप में बैठेगा।

अव्रतानि परित्यज्य व्रतेषु परिनिष्ठतः।

त्यजेत्यान्यपि सम्प्राप्य परमं पदमात्मनः॥ (84)

हिंसा पापादि अव्रतों को छोड़कर अहिंसादि व्रत में अत्यन्त निष्ठावान् होना चाहिए उस व्रत के माध्यम से जब परमात्मा पद की प्राप्ति हो जायेगी तब उन व्रतों को भी त्यागना चाहिये। जिस प्रकार मंजिल के ऊपर चढ़ने के लिये सीढ़ी की आवश्यकता होती है, बिना सीढ़ी के चढ़ा नहीं जा सकता है, परन्तु मंजिल के ऊपर जाने के बाद सीढ़ी स्वयमेव छूट जाती है, अथवा सीढ़ी की शेष सीमा के बाद उस सीढ़ी को त्यागकर मंजिल में प्रवेश करते हैं। जैसे हम आगे बढ़ जाते हैं पीछे का रास्ता छूट जाता है उसी प्रकार हम गुणश्रेणी आरूढ़ होकर बढ़ जाते हैं तो पीछे की गुणश्रेणी छूट जाती है। जैसे मुनि होने पर श्रावक के व्रत छूट जाते हैं, उसी प्रकार परमात्म पद को प्राप्त करते हैं तो व्रतादि के विकल्प नहीं रहते हैं, जैसे दूध से दही, घी बनता है। जब तक घी नहीं बनता है तब तक दूध दही का संरक्षण करना आवश्यक है परन्तु घी बनने के बाद दूधादि अवस्था नहीं रहती है। जैसे फूल से फल बनता है फल होने पर स्वयं फूल गिर जाता है।

अशुभाच्छुभमायात् शुद्धः स्यादयमागमात्।

खेरप्राप्तसंध्यस्य तमसो न समुद्गमः॥(122)

विधूततमसो रागस्तपः श्रुतनिबंधनम्।

संध्याराग इवार्कस्य जन्तोरभ्युदयाय सः॥(123)

विहाय व्याप्तमालोकं पुरस्कृत्य पुनस्तमः।

रविद्रागमागच्छन् पातालतलमृच्छति॥ (124)

यह आराधक भव्य जीव आगमज्ञान के प्रभाव से अशुभ स्वरूप असंयम अवस्था से शुभ रूप संयम अवस्था को प्राप्त हुआ समस्त कर्ममल से रहित होकर शुद्ध हो जाता है। ठीक है-सूर्य जब तक संध्या (प्रभातकाल) को नहीं प्राप्त होता है तब तक वह अंधकार को नष्ट नहीं कर सकता है।

अज्ञान रूप अंधकार को नष्ट कर देने वाले प्राणी के जो तप एवं शास्त्र विषयक अनुराग होता है वह सूर्य की प्रभातकालीन लालिमा के समान उसके अभ्युदय (अभिवृद्धि) के लिए होता है।

जिस प्रकार सूर्य फैले हुए प्रकाश को छोड़कर और अंधकार को आगे करके जब (अस्त) राग (लालिमा) को प्राप्त होता है तब वह पाताल को जाता है अर्थात् अस्त हो जाता है। उसी प्रकार जो प्राणी वस्तु स्वरूप को प्रकाशित करने वाले ज्ञान रूप प्रकाश को त्यागकर अज्ञान, असंयम को स्वीकार करता हुआ संसार-शरीर-भोग संबंधी राग को प्राप्त होता है तब वह पाताल तल अर्थात् आत्मपतन रूप अवस्था को प्राप्त होता हुआ नरकादि दुर्गति को प्राप्त होता है। आत्मरूपी सूर्य अनादिकाल से अज्ञान, असंयम, मोहरूपी अंधकार से व्याप्त संसार रूपी रात्रि में संचरण कर रहा है। उसको चिज्ज्योति स्वरूप मुक्ति लोक प्राप्त करना है। उसको पहले अज्ञान असंयम रूपी अंधकार को छोड़कर देव, शास्त्र, गुरु, व्रत, नियम संबंधी राग रूपी दिग्बलय में आना ही होगा। उस समय में पूर्ण अंधकार नहीं तो पूर्ण प्रकाश भी नहीं है परन्तु वह उस आत्मारूपी सूर्योदय के कारण है। जिस प्रकार सूर्योदय के पूर्व पूर्ण प्रकाश नहीं तथा पूर्ण अंधकार नहीं है परन्तु वह लालिमा सूर्योदय रूपी अभ्युदय का सूचक है। जब जीव देवशास्त्र-गुरु-तप-संयम को छोड़कर संसार शरीर के प्रति अनुराग करता है तब वह राग उसके पतन का ही कारण होता है। जिस प्रकार सायंकालीन राग (लालिमा) पतन का सूचक है अर्थात् प्रभातकालीन और सायंकालीन दोनों राग समान होते हुए भी प्रभातकालीन राग अभ्युदय के सूचक है और सायंकालीन राग पतन के सूचक है। उसी प्रकार देव शास्त्र-गुरु के प्रति और संसार शरीर भोग के प्रति राग समान होते हुए भी एक उत्थान का कारण है तो दूसरा पतन का कारण है।

णिज्जावगो य णाणं वादो ज्ञाणं चरित्तं णावा हि।

भवसागरं तु भविया तरंति तिहिसण्णिवायेण।। (100)

खेवटिया ज्ञान है, वायु ध्यान है और नौका चरित्र है। इन तीनों के संयोग से ही भव्य जीव भवसागर से तिर जाते हैं।

विषयविरतिः संगत्यागः कषायविनिग्रहः।

शमयमदमास्तत्त्वाभ्यासस्तपश्चरणोद्यमः।

नियमितमनोवृत्तिर्भक्तिर्जिनेषु दयालुता।

भवतिकृतिनः संसारब्धेस्तटे निकटे सति॥(224)

इन्द्रियों विषयों से विरक्त, परिग्रह का त्याग, कषायों का दमन, राग-द्वेष की शान्ति, यम-नियम, इन्द्रिय दमन, सात तत्त्वों का विचार, तपश्चरण में उद्यम, मन की प्रवृत्ति पर नियंत्रण, जिन भगवान् में भक्ति और प्राणियों पर दया भाव; ये सब गुण उसी पुण्यात्मा जीव के होते हैं जिनके कि संसार रूपी समुद्र का किनारा निकट में आ चुका है। अर्थात् निकट भव्य सम्यग्दृष्टि जीव उपरोक्त व्रतादि स्वरूप नौका में बैठकर संसार रूपी सागर को शीघ्र रूप से पार करता है।

आत्म परिणाम से मोक्ष मिलता है

यत्रभावः शिवं दत्ते द्यौः कियद्दूरवर्तिनी।

यो नयत्यासु गव्यूतिं क्रोशार्धं किं स सीदति॥(4)

The soul that is capable of conferring the divine status when meditated upon, how far can the heavens be from him? can the man who is able to carry a load to a distance of two Koses feel tired when carrying it only half a Kos?

गुरुपदेशमासाद्य ध्यायमानः समाहितैः।

अनन्तशक्तिरात्मायं भुक्तिं मुक्तिं च यच्छति॥(196)

ध्यातोऽर्हसिद्धरूपेण चरमांगस्य मुक्तये।

तद्भ्यानोपात्तपुण्यस्य स एवान्यस्य भुक्तये॥(197)

पुनः विनेय अर्थात् शिष्य प्रश्न करता है कि आत्मा की भक्ति के बिना केवल व्रतादि से चिरभावित मोक्ष सुख नहीं मिलता है किन्तु व्रतों से संसार के सुख सिद्ध हो जाते हैं। संसार के सुख प्राप्त होने पर चिद्रूप स्वरूप आत्मा में भक्ति विशुद्धि भाव और अन्तरंग अनुराग नहीं होगा और यह आत्मा में भक्ति ही मोक्ष के लिए कारण है। व्रत होते हुए और संसार के सुख सद्भाव होते हुए भी मोक्ष के लिए उत्तम साधन

स्वरूप सुद्रव्यादि साध्य अभी दूर है। अतः मध्य में मिलने वाले स्वर्गादि सुख व्रतादि के द्वारा ही साध्य है। इस प्रकार प्रश्न होने पर आचार्य उसका उत्तर देते हैं कि वह भी नहीं है। व्रतादि का आचरण निरर्थक नहीं होता है। उसी प्रकार आत्मभक्ति आदि जो तेरे द्वारा की जाती है वह भी असाधु अर्थात् अयोग्य नहीं है। इसे ही स्पष्ट करते हैं -

जिसे आत्मा के विषय में प्रणिधान - अर्थात् भक्ति होने पर शिव अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है वही आत्मभक्ति से भव्यों के लिए स्वर्ग क्या दूर हो सकता है? आत्मध्यान, आत्मभक्ति, आत्मअनुराग के फलस्वरूप प्राप्त पुण्य से यदि मोक्षसुख मिल सकता है तब स्वर्गसुख क्या नहीं मिलेगा? अर्थात् अवश्य स्वर्गसुख उसके लिए निकट है, मिलने योग्य है। तत्त्वानुशासन में कहा भी है -

जो गुरु के उपदेश को प्राप्त करके आत्मध्यान को समाहित चित्त से करता है उसे आनन्द शक्ति सम्पन्न यह आत्मा मुक्ति और भुक्ति को प्रदान करता है जो चरम शरीरी है जब वह स्वयं को अरिहन्त-सिद्ध रूप से ध्यान करता है तब उसके पुण्य से मोक्ष मिलता है तथा अन्य अचरम शरीर को स्वर्ग सुखादि मिलता है।

उपर्युक्त विषय को दृष्टान्त के द्वारा स्पष्ट कर रहे हैं। यथा - जो भारवाहक जिस भार को लेकर 2 कोश (4 मील) प्रमाण दूरी को शीघ्र ही पार कर लेता है वह क्या उस भार को 1/2 कोश लेने में थक जायेगा अर्थात् नहीं थकेगा। सिद्धान्त है कि महाशक्ति में छोटी शक्ति निहित होती है।

होतिं सुहावसव-संवर-णिज्जरामर सुहाई विउलाई।

ज्झाण वरस्स फलाइं सुहाणुबंधीणि धम्मस्स॥(56)

जह वा घण संघात खणेण परणाहा विलिज्जाति।

ज्झाणप्प वणोवहया तह कम्म घणा विलिज्जाति॥(57)

शंका-इस धर्मध्यान का क्या फल है?

समाधान: अक्षपक जीवों को देव पर्याय सम्बन्धी विपुल सुख मिलना उसका फल है और गुणश्रेणी में कर्मों की निर्जरा होना भी उसका फल है, तथा क्षपक जीवों के तो असंख्यात गुणश्रेणी रूप से कर्म प्रदेशों की निर्जरा होना और शुभ कर्मों के उत्कृष्ट अनुभाग का होना उसका फल है। अतएव जो धर्म से अनुप्रेत है वह धर्मध्यान है, यह बात सिद्ध होती है।

उत्कृष्ट धर्मध्यान के शुभ आस्रव संवर निर्जरा और देवों के सुख में शुभानुबन्धी विपुल फल होते हैं। अथवा जैसे मेघपटल तड़ित होकर क्षण मात्र में विलीन हो जाते हैं वैसे ही ध्यान रूपी पवन से उपहत होकर कर्ममेघ भी विलीन हो जाते हैं। (ध.पु.)

अर्थ : मोह का सर्वोपशमन करना धर्म ध्यान का फल है; क्योंकि कषाय सहित धर्मध्यानी के सूक्ष्म एवं सांपराय गुणस्थान के अन्तिम समय में मोहनीय कर्मों की सर्वोपशमना देखी जाती है। तीन घाती कर्मों का निर्मूल विनाश करना एकत्व वितर्क अविचार ध्यान का फल है। परन्तु मोहनीय का विनाश करना धर्मध्यान का फल है क्योंकि सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान के अन्तिम समय में उसका विनाश करना देखा जाता है।

अर्थ : ध्यान के प्राथमिक साधकों को चित्त के स्थिर करने के लिये और विषय कषाय स्वरूप दुर्ध्यान से बचने के लिए परम्परा मुक्ति के कारण स्वरूप अरिहन्तादि ध्यान करने योग्य है। अर्थात् ध्येय हैं। पश्चात् चित्त स्थिर होने पर साक्षात् मुक्ति का कारण जो निज शुद्धात्म तत्त्व है वही ध्यावने योग्य है। परद्रव्य होने से अरिहन्तादि ध्यावने योग्य नहीं है, यह एकान्त से ठीक नहीं है। अतः सविकल्प अवस्था में अरिहन्तादि उपादेय ही है। इस प्रकार साध्य साधन जानकर ध्यावने योग्य वस्तु में विवाद नहीं करना। पंचपरमेष्ठी का ध्यान साधक है, और आत्मध्यान साध्य है, यह निःसंदेह जानना।

सुनने की कला के छह नियम, आसान होगी सफलता की राह

-डॉ. उज्ज्वल पाटनी

हमें वही लोग अच्छे लगते हैं, जो हमारी बात को धैर्य से सुनते हैं। सुनते हुए हमसे सहानुभूति रखते हैं और हमें उम्मीद देते हैं। सेल्स, इंश्योरेंस, कंसलटेंसी, चिकित्सा, मनोविज्ञान, जनसंपर्क आदि क्षेत्रों में कार्यरत व्यक्ति की सफलता में सुनने की कला को महत्वपूर्ण भूमिका होती है। परिवार में सुख-शांति के लिए भी बोलने से ज्यादा सुनने की कला आनी जरूरी है। अच्छे श्रोता बनने के इन गणों को अपनाएँ तो निजी व सार्वजनिक जीवन में सफलता तय है।

1. सुनते हुए नेचुरल रहें

यदि हँसने की बात हो तो हँसें, उदासी की बात हो तो साथ में उदास हों क्योंकि बोलने वाले से दिली जुड़ाव के लिए यह जरूरी है। उन्हें भी अहसास होना चाहिए कि वो किसी मशीन या मुर्दे से बात नहीं कर रहे हैं, बल्कि जिंदा आदमी से बात कर रहे हैं। अपनी बॉडी लैंग्वेज और हाव-भाव से बोलने वाले को महसूस कराएं कि आप उन्हें गंभीरता से सुन रहे हैं।

2. बातचीत में इस बीमारी से बचें

महत्वपूर्ण बातचीत में बीच-बीच में वाट्सएप देखना, फोन उठाना, फेसबुक देखना आदि एक बीमारी है जो लगातार सबका ध्यान भंग करती है। अगर आप टीवी देख रहे हैं या अखबार पढ़ रहे हैं तो महत्वपूर्ण बातचीत ना करें। एक साथ अनेक लोगों से बात भी ना करें, क्योंकि तब आप किसी पर ठीक से ध्यान नहीं दे पाएंगे। मल्टीलिसनिंग को उत्पादकता और फोकस का दुश्मन माना गया है।

3. बीच-बीच में प्रश्न पूछें

हम सुन रहे हैं, यह सामने वाले को महसूस कराने के लिए जरूरी है कि बीच-बीच में कुछ प्रश्न पूछते रहें। वे प्रश्न सामने वाले की कही गई बातों का दोहराव हो सकते हैं या उसकी किसी बात पर जिज्ञासा भी हो सकती है। प्रश्न पूछने में आपका भी फायदा है क्योंकि आपको विषय गहराई से समझ में आ जाएगा। प्रश्न भी दिखावे के लिए ना पूछें, विषय की गहराई में उतरकर पूछें।

4. सुनते हुए नोट्स लें

सभी बड़े उद्योगपति या सलाहकार बातचीत के नोट्स जरूर लेते हैं। इससे वो बातचीत महत्वपूर्ण हो जाती है। आगे फॉलोअप आसान होता है।

5. बॉडी लैंग्वेज को भी सुनें

संवाद में 55 प्रतिशत हिस्सा बॉडी लैंग्वेज और टोन को दिया गया है। हर बातचीत का कोई उद्देश्य होता है और उस उद्देश्य को पाने के लिए अनकही बातों को सुनें। पिछले 15 वर्षों से पब्लिक स्पीकिंग और बॉडी लैंग्वेज की कोचिंग करते हुए अब मैं बॉडी लैंग्वेज से 90% झूठ या अधरी बातों को पकड़ सकता हूँ और ये बड़ी सफलता दिलाता है।

6. राय बनाने में हड़बड़ी ना करें

कई बार यह होता है कि हम पूर्वाग्रहों या अतीत के अनुभवों की वजह से अपने दिमाग में सामने वाले के सही या गलत होने की राय बना लेते हैं। ऐसा भी होता है कि जो लोग हमको शुरू में बहुत अच्छे लगते हैं, बाद में पता लगता है कि वे विश्वसनीय नहीं थे। कभी-कभी इसका उल्टा भी होता है। इसलिए किसी भी व्यक्ति के बारे में राय बनाने में जल्दबाजी ना करें।

असहमति का भी सम्मान करें

आज कंगना रनौत से लेकर अर्नब गोस्वामी तक, कोई भी असहमति को स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं। मानो एक ही सिद्धांत चल रहा है कि या तो आप हमारे साथ हैं या तो हमारे विरोधी हैं। याद रखिए, असहमति से ही संसार में हर आविष्कार हुआ है। असहमति से बदलाव आता है और व्यवस्थाएं सुधरती हैं। इसलिए यदि आप बोलने वाले से असहमत भी हैं, तो भी उनकी बात को ध्यान से सुनिए और महत्व दीजिए। असहमति के सम्मान से परिवार को बिखराव से बचाया जा सकता है और रिश्तों को सहेजा जा सकता है।

विभाव V/S स्वभाव

विभाव त्याग से स्वभाव प्राप्ति ही परमधर्म

(स्वभाव ही स्वधर्म तो विभाव ही अधर्म/परधर्म)

(चाल:-1. भातुकली... 2. क्या मिलिए...)

विभाव त्यागकर स्वभाव द्वारा, मोक्ष प्राप्त करना ही परमधर्म।

इससे विपरीत अन्य सभी कुधर्म, सुधर्म हेतु त्यजनीय कुधर्म।

आत्म स्वभाव है “सच्चिदानन्दमय” या सत्य शिव सुन्दर या ज्ञानानन्द।

स्वयंभू सनातन अक्षय अव्यय या अनन्त ज्ञान दर्शन सुख वीर्य मय॥ (1)

तथाहि अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, समता शान्ति।

मैत्री-प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ, उदार सहिष्णुता, धैर्य, मैत्री॥

इनसे विपरीत सभी ही विभाव है रागद्वेष मोह व काम क्रोध।
 ईर्ष्या तृष्णा घृणा वैर विरोध, परनिन्दा, अपमान असूया, द्वन्द्व॥ (2)
 आकर्षण विकर्षण पक्षपात पूर्ण, संकीर्ण कट्टरता पूर्ण भेदभाव।
 दीनहीन दंभ कूट कपट युक्त, समस्त संक्लेश पूर्ण विचार विभाव॥
 जिस जिस अंश में होता विभाव, उस उस अंश में प्रगटे स्वभाव।
 जिस जिस अंश में होता प्रकाश, उस उस अंश में अंधेरा नाश॥ (3)
 अनन्तानुबन्धी क्रोधादि चतुष्क तथा मोह का होता जब उपशम।
 तब होता प्रथामोपशम सम्यक्त्व अन्यथा जीव न होते प्राथमिक धार्मिक॥
 उक्त क्रोधादि के क्षयोपशम व क्षय से होते क्षयोपशमिक-क्षायिक।
 अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान उपशमादि से जीव बनते श्रावक श्रमण॥ (4)
 संज्वलन व नोकषायक्षय से, जीव बनते है निर्दोष सर्वज्ञ।
 आठों कर्मों के क्षय होने से, जीव बनते शुद्ध बुद्ध आनन्द॥
 शुद्ध बुद्ध आनन्द ही जीवों का स्वभाव, अतः स्वभाव ही परममोक्ष।
 परम मोक्ष ही है परम धर्म अतः 'कनक' स्वभाव प्राप्ति हेतु बनाया लक्ष्य॥ (5)
 समस्त धार्मिक क्रियाकाण्ड आदि उक्त उद्देश्य हेतु ही करणीय।
 अन्यथा वे होंगे अधर्म आड़म्बर, रुद्धि, परम्परा दिखावा होंग॥ (6)

ग.पु.कॉ. सागवाडा, 21-04-2022, पूर्वाह्न-9.43

संदर्भ-

रत्नत्रय गृहस्थ को भी पालना चाहिए

इति रत्नत्रयमेतत् प्रतिसमयं विकलमपि गृहस्थेन।

परिपालनीयमनिशं निरत्ययां मुक्तिमभिलषिता॥ (209) पु.सि.

Ratna-Traya, the three jewels, (Right belief, knowledge and conduct) should be followed, even partially, every movement of timewithout cessation by a house holder desirous of ever lasting liberation.

पूर्वोक्त प्रकार से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रात्मक रत्नत्रय मोक्ष मार्ग का

प्रतिसमय एक देशरूप से भी परिपालन करना चाहिये। यह रत्नत्रय की आराधना विघ्न रहित मोक्ष पद की प्राप्ति के लिये पुनः पुनः आशिक रूप से भी पालन करना चाहिये।

गृहस्थों को मुनिपद धारण करना चाहिए

बद्धोद्यमेन नित्यं लब्ध्वा समयं च बोधि लाभस्य।

पदमवलंब्य मुनीनां कर्तव्यं सपदि परिपूर्णम्॥ (210)

With a determined continuous effort, one should, when the opportunity for full attainment of Ratna Traya is available, about the orders of saints, and make it complete, without delay.

जिसने सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया है ऐसे मुमुक्षु भव्य अत्यन्त उद्यमशील होकर अवसर को प्राप्त करके तत्काल परिपूर्ण रत्नत्रय अर्थात् मुनिपद को स्वीकार कर लेते हैं। गृहस्थों के द्वारा सम्यक्त्व पूर्वक अपरिपूर्ण रत्नत्रय को प्राप्त करके मुनि व्रत रूपी पूर्ण रत्नत्रय को ग्रहण करना चाहिए।

समीक्षा:—कुन्दकुन्द आचार्य के आध्यात्मिक ग्रन्थों के सफल टीकाकार आध्यात्मिक योगी अमृतचन्द सूरी ने इस श्लोक में मुनि पद को “बद्धोद्यमेन नित्यं लब्ध्वा पदमलंब्य मुनीनां” अर्थात् उद्यमशील/प्रयत्नशील पुरुषार्थी बनकर नित्य मुनिपद को प्राप्त करो कहा है। इससे सिद्ध होता है कि मुनि पद भी भावना पूर्वक, पुरुषार्थ पूर्वक स्वीकार किया जाता है। जैसे-कुछ एकान्त भोगवादी लोग आध्यात्मिकता के नाम पर भोग तो आसक्ति पूर्वक इच्छापूर्वक भोगते हैं परन्तु कहते फिरते हैं कि मुनि दशा तो स्वयंमेव हो जाती है, उसके लिए पुरुषार्थ की कोई आवश्यकता नहीं है। इसके साथ-साथ वे यह भी कहते हैं कि मुनिव्रत भी शुभपयोग से युक्त है और शुभपयोग से पुण्यबंध होता है और पुण्यबंध संसार का कारण है इसलिए मुनिव्रत भी बंध के लिए कारण हैं संसार के लिये कारण है परन्तु कुन्दकुन्द आदि पूर्व आचार्यों ने स्वयं मुनिव्रत को धारण किया और दूसरों को मुनिव्रत से दीक्षित किया।

मोक्ष के लिये रत्नत्रय परिणत स्वात्मा उपादान कारण है एवं बाह्य द्रव्य,

क्षेत्र, कालादि, निर्ग्रन्थ, मुनि लिंग आदि निमित्त कारण हैं। अन्तरंग परिणाम एवं बहिरंग साधनों के माध्यम से मोक्ष रूप कार्य सिद्ध होता है।

णवि सिञ्ज्ददि वत्थधरो जिणसासणे जह वि होइ तित्थयरो।

णग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे।। (23)

जिनशासन में वस्त्रधारी तीर्थंकर को मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। एक केवल निर्ग्रन्थता ही मोक्ष मार्ग है अन्य सर्व उन्मार्ग है, कुमार्ग हैं। जैसे आचार्य कहते हैं-

कारण द्वयं साध्यं न कार्यमेकेन जायते।

द्वन्द्वोत्पाद्यमपत्यं किमेकेनोत्पद्यते क्वचित्।।

जो कार्य दो कारण से होता है वह एक कारण से नहीं हो सकता है। जैसे पुत्र उत्पत्ति रूप कार्य माता पिता रूप दो कारणों से होता है। इसी प्रकार अन्तरंग चारित्र एवं बाह्य चारित्र रूप कारण से ही मोक्ष प्राप्ति रूप कार्य हो सकता है। अन्यथा नहीं।

निश्चय व्यवहाराभ्यां मोक्षमार्गो द्विधा स्थितः।

तत्राद्यः साध्यरूपः स्याद् द्वितीयस्तस्य साधनम्।।

मोक्षमार्ग दो प्रकार का है। (1) निश्चय मोक्षमार्ग (2) व्यवहार मोक्षमार्ग। निश्चय मोक्षमार्ग साध्य रूप है जिसे प्राप्त करना है, जो कार्य स्वरूप है। द्वितीय व्यवहार मोक्षमार्ग साधन स्वरूप है, जिसके द्वारा साध्य रूप निश्चय मोक्ष मार्ग की प्राप्ति होती है। समर्थ कारण से कार्य होता है अर्थात् साधन से साध्य-सिद्धि होती है, इस न्यायानुसार व्यवहार मोक्षमार्ग के द्वारा निश्चय मोक्षमार्ग की उपलब्धि होती है। व्यवहार मोक्षमार्ग के बिना निश्चय मोक्ष मार्ग त्रिकाल में भी अनुपलब्ध ही रहेगा।

व्यवहार पराचीनः निश्चयं यः चिकीर्षति।

बीजादि बिना मूढः सः शस्यानि सिंसृसति।। प.आशाधर

व्यवहार से विमुख होकर जो निश्चय को चाहते हैं वे मूढ़ हैं जैसे कि एक मूढ़ बीज के बिना वृक्ष को चाहता है अर्थात् जिस प्रकार बीज के बिना वृक्ष नहीं हो सकता है उसी प्रकार व्यवहार के बिना निश्चय की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

अव्रती व्रतमादाय व्रती ज्ञानपरायणः।

पारत्मज्ञान सम्पन्नः स्वयमेव परो भवेत्॥ (86) समाधि शतक

अव्रति सराग चारित्र रूप मुनि धर्म को स्वीकार करके भेद ज्ञान सम्पन्न होकर आत्मा में लीन होता है उस समय स्वयमेव ही समस्त संकल्प विकल्प व्रत, अव्रत, निश्चय, व्यवहार से परे होकर निर्विकल्प रूप परमात्म स्वरूप बन जाता है। यह परमात्म पद प्राप्त करने का त्रिकाल अबाधित परम सत्य सिद्धान्त है। अभी तक जो अनंत सिद्ध हुए, सिद्ध हो रहे हैं, आगे होंगे, वे सभी इसी मार्ग के द्वारा ही हुए हैं, अन्य कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

उदाहरणः—आमरस का आस्वादन करना लक्ष्य है तो उसके लिये पहले बीज चाहिये। बीज से वृक्ष होता है और योग्यावस्था प्राप्त होने पर वृक्ष में फूल आते हैं। फूल से कैरी, कैरी से अपकृत आम, उससे पकृत आम और उससे रस। उसके पश्चात् आस्वादन होगा। जिस समय रस का आस्वादन होता है उस समय न वृक्ष, न फूल न कच्चा आम न गुठली आदि रहती है, केवल वहाँ रस ही रस है। रसावस्था में अन्य प्रारंभिक अवस्थाएँ नहीं रहने पर भी बिना प्रारंभिक अवस्था के बिना रस की प्राप्ति नहीं हो सकती।

यदि विचार करें कि हमें तो रस चाहिये, बीज, वृक्ष, फूलादि नहीं चाहिये। बीज के बिना वृक्ष कैसे होगा, वृक्ष के अभाव में फूल कैसे होगा, फूल के बिना फूल कैसे होगा? यदि हम सोचें कि फूल में आम रस नहीं है इसलिये फूल को तोड़कर फेंक दें तो फल की प्राप्ति हो सकती है क्या? फल के अभाव से रस की प्राप्ति कैसे होगी? परन्तु बीज अंकुर होकर वृक्ष रूप परिणत हो जाता है तो बीज स्वयमेव नष्ट हो जाता है उसी प्रकार फूल से फल बन जाता है तब स्वयमेव फूल योग्य समय में गिर जाता है। फूल को तोड़ना नहीं पड़ता है। यदि योग्य समय के पूर्व ही फूल को तोड़ देंगे तो फल की प्राप्ति नहीं हो सकती है। इसी प्रकार निर्विकल्प आत्मानुभव रूप रस प्राप्त करने के लिये आत्मा रूप भूमि में सम्यक्त्व रूप बीज रोपण करना होगा। इसके लिये मिथ्यात्व, हिंसा, झूठ, चोरी अन्याय, अत्याचार, कुशील, अतिकांक्षा, शोषण, कालाबाजारी, संग्रहवृत्ति, परस्त्री गमन, वेश्यागमन, मद्यपान, मांसभक्षण, रात्रिभोजन, अभक्ष्यभोजन, ईर्ष्या-द्वेष, मात्सर्यआदि

अशुभ भावों का त्याग करके अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, समता शांति, क्षांति, ऋजुता, मृदुता, विश्वमैत्री, उदारता, वात्सल्य, गुणानुराग, धर्मानुराग, अनुकम्पा आदि शुभ भावों को धारण करना होगा। इनमें सतत् तत्पर होने पर जब आत्मा में विशेष निर्मलता आती है तब वह महासंयमी आत्मानंद रूप रस को निर्विकल्प होकर आस्वादन करता है। उस समय व्रत अव्रतों का विकल्प स्वयमेव छूट जाता है, जिस प्रकार रस अवस्था में पूर्व की अवस्थाएँ नहीं रहती हैं। आवश्यकता है?

शंका:-आम के रस के लिये बीज, वृक्षादि की क्या बाजार से पका आम खरीदकर लाकर उससे रस निकालकर अथवा रस खरीदकर रस का आस्वादन कर सकते हैं?

समाधान:-हे भाई! धर्म कभी भी रूपये के माध्यम से नहीं खरीदा जा सकता है। धर्म को तो आद्योपान्त स्वयमेव ही आचरण करके प्राप्त कर सकते हैं।

यथा यथा समायाति संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम्।

तथा तथा न रोचंते विषमा सुलभा अपि।। (37)

यथा यथा न रोचंते विषयाः सुलभा अपि।

तथा तथा समायति संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम्।। (38) इष्टोपदेश

जैसे जैसे विशुद्ध आत्मस्वरूप की संवित्ति बढ़ती जाती है वैसे वैसे सुलभ भी इन्द्रिय विषय रुचता नहीं हैं। जैसे जैसे सुलभ भी इन्द्रिय विषय रूचकर नहीं लगता है वैसे-वैसे आत्मसंवित्ति बढ़ती जाती है।

णिय अप्पणाण झाणज्झयण उहामियर सामणं णाणं।

मोत्तुणाक्खाणसुहं जो भुजंदि सोहु बहिरप्पा।। (126)

जो ज्ञान, ध्यान, अध्ययन और सुखामृत रसायन पान से विमुख होकर इन्द्रिय सम्बन्धी सुख भोगता है वह निश्चित बहिरात्मा मूढ़ है।

आरम्भ, परिग्रह, संकल्प-विकल्प, संक्लेश से युक्त गृहस्थों को परम साम्य स्वरूप मोक्ष प्राप्त नहीं होता है। बिना मोक्ष प्राप्त किए समस्त दुःखों के अभाव स्वरूप और अक्षय-अनन्त सुख स्वरूप अवस्था प्राप्त नहीं होती है। अतः आचार्य कुन्दकुन्द ने भी कहा है-

पडिवज्जदु सामण्णं जदि इच्छादि दुक्खपरिमोक्खं।। (201)

विशुद्ध दर्शन ज्ञान प्रधान साम्यनामक जिस यति धर्म को, जिसका इस ग्रंथ में दो अधिकारों की रचना द्वारा किया गया है, स्वयं अंगीकार किया है उसी प्रकार दूसरों की आत्मा भी, यदि दुःखों से मुक्त होने को इच्छुक है तो उसे अंगीकार करो। उस यति धर्म को अंगीकार करने का जो यथानुभूत मार्ग है उसकी प्रेरणा करने के लिए हम खड़े हुए हैं। प्राकृतिक स्वाभाविक, शुद्ध स्वरूप से जीव सच्चिदानन्द, आनन्दघनस्वरूप होते हुए भी कर्माधीन होने के कारण अनादि, अनन्त, आवहमान काल से अपार अकथनीय शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिकादि दुःखों से संतप्त है। यह दुःख स्वयं के वैभाविक भाव से जायमान होने के कारण इसका निवारण भी जीव स्वयं के स्वाभाविक भाव से कर सकता है। स्वाभाविक भाव को प्रकट करने का उपाय है समता। समता को प्राप्त करने का उपाय है श्रामण्यत्व, श्रामण्यत्व को प्राप्त करने का उपाय है बाह्य-अभ्यन्तर ग्रन्थियों से/परिग्रहों से/सम्बन्धों से/अहंकार-ममकारों से/आकर्षण विकर्षणों से/विषमताओं से रहितता। इसलिये आचार्यश्री ने कहा है कि यदि दुःखों से समग्रता से दूर होने की इच्छा है तो श्रामण्य/ से चारित्र/समता को स्वीकार करो/प्राप्त करो/अंगीकार करो अन्य कोई मार्ग दुःखों से निवृत्त होने के लिये तीन काल में नहीं है।

वस्तुतः धर्म का स्वरूप तथा धर्म का फल भी सुख होने के कारण निवृत्त सुख प्राप्त करने का एक ही मार्ग हैं धर्म को अपनाना एवं धर्मस्वरूप हो जाना। वह धर्म चारित्र जो कि समता स्वरूप है और वह समता मोह, राग, द्वेष, ईर्ष्या, घृणा, क्षोभादि से रहितता। इस अवस्था को प्राप्त करके सुख प्राप्त करने के लिये मुमुक्षु श्रमण/मुनि/यति बनता है।

आपिच्छ बन्धुवरगं विमोचिदो गुरुकलत्तपुत्तेहिं।

आसिज्ज पाणं दंसण चरित्त तववीरियायारं।। (202)

(बन्धुवर्गं) बन्धुओं के समूह को (आपिच्छ) पूछकर (गुरुकलत्तपुत्तेहिं) माता-पिता स्त्री से (विमोचिदो) छूटा हुआ (पाणदंसणचरित्ततववीरियायारं ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य ऐसे पाँच आचारों का (आसिज्ज) आश्रय करके मुनि होता है।

योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को प्राप्त करके जीव जब सम्यग्दर्शन प्राप्त है तब यह भान हो जाता है कि मैं आनन्दज्ञानधन स्वरूप पिण्ड हूँ। यह जानता हुआ भी जब तीव्र चारित्र मोहनीय कर्म का उदय रहता है तब चेतन परिग्रह स्वरूप बन्धुवर्ग, अचेतन परिग्रह स्वरूप बाह्य धन संपत्ति का ममत्व त्याग नहीं कर पाता है। जब अन्तरंग में तीव्र मोहनीय कर्म शिथिल होता है तब बन्धु-वर्गादि सचेतन परिग्रह एवं अचेतन परिग्रह को त्याग करके शाश्वतिक यथार्थरूप रत्नत्रयात्मक बन्धु वर्ग को स्वीकार करता है, क्योंकि मुमुक्षु को वह पूर्ण ज्ञान-विश्वास हो जाता है कि मेरा शाश्वतिक आत्मा को छोड़कर अन्य सब कर्मजनित सम्बन्ध हैं, बन्धन हैं। यह सम्बन्ध मेरे लिये दुःख का कारण है और इन सम्बन्धों को त्याग करना ही मेरे लिये सुख का कारण है। इसलिये तो गुण भद्राचार्य ने कहा है-

**शरणमशरणं वो बन्धवो बन्धमूलं, चिरपरिचितदाराद्वारामापद् गृहाणाम्।
विपरिमृशतपुत्राः शत्रवः सर्वमेतत्, त्यजत भजत धर्म निर्मलं शर्म कामाः॥ (60)**

हे भव्यजीवों! जिसे तुम शरण (गृह) मानते हो वह तुम्हारा शरण (रक्षक) नहीं है, जो बन्धुजन है व राग द्वेष के निमित्त होने से बन्ध के कारण है, दीर्घ काल से परिचय में आयी हुई स्त्री आपत्तियों रूप ग्रहों के द्वार के समान हैं, तथा जो पुत्र है वे अतिशय राग द्वेष के कारण होने से शत्रु के समान हैं, ऐसा विचार कर यदि आप लोगों को सुख की अभिलाषा है तो इन सब को छोड़कर निर्मल धर्म की आराधना करें।

क्षमायाचना करने से भाव में निर्मलता आती है, वैरत्व दूर होता है, कर्म नष्ट होते हैं। पूछ कर दीक्षा लेने से लौकिकाचार का पालन होता है, नम्रता प्रगट होती है, पारिवारिक उत्तरदायित्व, अनुशासन, शालीनता नियम का पालन होता है। दूसरा एक मुख्य कारण यह है कि मनुष्य एक अनुकरण प्रिय एवं परिणमनशील तथा गुणग्राही जीव है। दूसरों के ज्ञान, वैराग्य से वह प्रभावित भी होता है इसलिए मुमुक्षु द्वारा पूछने पर उनको भी वैराग्य ज्ञान हो सकता है, वे भी आध्यात्मिक क्षेत्र में आगे बढ़ सकते हैं। सम्यक्दर्शन प्राप्त कर सकते हैं, श्रावक व्रत एवं मुनि व्रत को धारण कर सकते हैं। ऐसे कई उदाहरण पुराणों में भरे पड़े हैं। जैसे-जम्बू कुमार के वैराग्य से प्रभावित होकर केवल उनकी स्त्रियों ने, माता ने ही नहीं किन्तु

500 चोरों ने भी दीक्षा ली। इसी प्रकार पुराण में भी कई प्रकरण मिलते में हैं। जब एक राजा दीक्षा लेते थे तब साथ में कई राजकुमार, कई छोटे राजा, रानियाँ भी दीक्षा लेती थीं, इसलिए बंधु-वर्ग से क्षमा याचना पूर्वक दीक्षा लेने के लिए दीक्षार्थी पूछता है। दीक्षार्थी निश्चयनय से जानता है कि मेरी आत्मा तो अनादि अनिधन है। यह किसी से न उत्पन्न हुआ और न मेरे कोई भाई बंधु हैं, इसलिए जब क्षमायाचनापूर्वक दीक्षा लेने के लिए भाई-बंधु से पूछता है कि आप लौकिक से दृष्टि से मेरे भाई-बंधु वर्ग हो पर आध्यात्मिक दृष्टि से तुम्हारा मेरा कोई संबंध नहीं है। जब वे खुशी-खुशी से अनुमति देते हैं और अनुगामी बनते हैं तब वह अनुमति लेकर दीक्षा ग्रहण करता है। यदि उनके बन्धुवर्ग मिथ्यादृष्टि हो, क्रूर प्रकृति के हों और अनुमति नहीं देते हों तो अनुमति लेकर ही दीक्षा लेने की आवश्यकता नहीं है, ऐसा वर्णन पुराणों में, भगवती आराधना में पाया जाता है, क्योंकि धर्म प्रत्येक जीव का स्वभाव है, मौलिक अधिकार है, मौलिक कर्तव्य भी है। प्रत्येक जीव स्वतंत्रतापूर्वक धर्म का पालन कर सकता है, स्वतंत्रता उसका धर्म है और स्वतंत्रता उसका फल है। यदि धर्मपालन परतंत्रता पूर्वक होगा तब प्रायः विश्व में अधिकांश व्यक्ति धर्म का पालन नहीं सकते हैं। क्योंकि अधिकांश जीव मोही-रागीद्वेषी होते हैं। मोह के कारण वे दूसरों को स्वतंत्रतापूर्वक धर्म पालन करने की अनुमति नहीं दे पाते हैं। यहाँ तक कि तद्भव मोक्षगामी, शलाका पुरुष तीर्थकर आदि भी जब दीक्षा लेते हैं तब उनको भी सहर्ष दीक्षा की अनुमति नहीं देते हैं।

तब साधारण जनसाधारण दीक्षार्थी के लिए अनुमति दे ही देंगे यह कैसे संभव है। यदि सबकी अनुमति से ही दीक्षा होगी तब प्रायः अनेक तीर्थकर भी दीक्षा नहीं ले सकेंगे क्योंकि उनके भी भाई-बंधु कुटुम्बी अनुमति देने की बात दूर, रोते-धोते, रोकते भी हैं।

शास्त्र में अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं जहाँ अनुमति लेने की बात तो दूर, बिना सूचना दिये दीक्षा ले ली, और कुछ ने बन्धुओं के विरोध करने पर भी दीक्षा ले ली। उसके लिए सुकुमाल, सुकौशल, सती सीता आदि के उदाहरण प्रसिद्ध हैं। आगम में यह भी पाया जाता है कि जिस दीक्षार्थी के बंधु वर्ग दुष्ट हो उस दीक्षार्थी को जन्म स्थान से दूर ले जाकर उनको आचार्य शिक्षा-दीक्षा देते हैं। इससे यह

सिद्ध होता है कि धर्म पालन करने के लिये सब कोई स्वतंत्र है। स्वतंत्र भारत के संविधान में भी जीने का अधिकार, अभिव्यक्ति के अधिकार के साथ धर्म पालन करने का भी अधिकार दिया है। इसे मौलिक अधिकार कहते हैं। सम्यग्दृष्टि मुमुक्षु जीव गृहस्थ धर्म को त्याग करके मुनि धर्म इसलिए स्वीकार करना चाहता है कि गृहस्थ धर्म में रहते हुए थोड़ा तो धर्म होता है परन्तु अधर्म ज्यादा होता है। गृहस्थ में रहते हुए छठवाँ आदि गुणस्थान, उत्कृष्ट धर्म ध्यान, शुक्लध्यान, केवलबोधिलाभ हो ही नहीं सकता है। गृहस्थों का धर्म गजस्नानवत् क्रिया है। जिस प्रकार गज स्नान करके कुछ समय के लिए स्वच्छ हो जाता है पर जलाशय के बाहर आकर पुनः धूलि, मिट्टी डालकर गंदा हो जाता है उसी प्रकार गृहस्थ दान-पूजा-स्वाध्याय आदि में थोड़ा तो पुण्य कमाता है पर आरंभ अपरिग्रह से अधिक पाप कमा लेता है। इसलिए गृहस्थ में कभी भी किसी को मोक्ष नहीं होता में है चाहे वह तद्भव मोक्षगामी तीर्थंकर भी क्यों न हो? आत्मानुशासन में कहा भी है-

सर्व धर्ममयं क्वचित्क्वचिदपि प्रायेण पापात्मकं।

क्वाप्येतद् द्वयवत्करोति चरितं प्रज्ञाधनानामपि।

तस्मादेष तदन्धरज्जुवलनं स्नानं गजस्याथवा।

मत्तोन्मत्तविचेष्टितं न हि हितो हेगाश्रमः सर्वथा॥ (41) आत्मा.

गृहस्थाश्रम विद्वज्जनों के भी चरित्र को प्रायः किसी सामायिक आदि शुभ कार्य में पूर्णतया धर्मरूप, किसी विषयभोगादिरूप कार्य में पूर्णतया पापरूप तथा किसी जिनगृहादि के निर्मापणादिरूप कार्य में उभय रूप करता है। इसलिए यह गृहस्थाश्रम अन्धे के रस्सी भांजने के समान, अथवा हाथी के स्नान के समान अथवा शराबी या पागल की प्रवृत्ति के समान सर्वथा हितकारक नहीं है।

असमग्रं भावतयो, रत्नत्रयमस्ति कर्मबन्धोयः।

स विपक्षकृतोऽवश्यं, मोक्षोपायो न बंधनोपायः॥ (211) पुरु.

Even when Ratna Traya is partially followed, whatever bondage of karma there is, due to its Antithesis (the passion) because Ratna-Traya is assuredly the way to liberation, and can never be the cause of bondage.

अपरिपूर्ण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की भावना/परिपालन से जो कर्मबंध होता है वह कर्मबंध रत्नत्रय से न होकर उसके विपक्षभूत राग द्वेष से होता है। अपरिपूर्ण रत्नत्रय से कर्मबंध होता है। जितने अंश में रत्नत्रय है उतने अंश में कर्मबंध नहीं होता है और उतने अंश मोक्ष के उपाय हैं। जितने अंश में रत्नत्रय का अभाव है और राग-द्वेष का सद्भाव है उतने अंश में कर्मबंध होता है जो मोक्ष के लिये कारण नहीं है। निश्चय रत्नत्रय कर्मबंध के लिये कारण नहीं है, असर्वदेशी रत्नत्रय कर्मबंध के लिये कारण होता है। निश्चय रत्नत्रय कर्मबंध के लिये कारण नहीं होता है।

येनांशेन सुदृष्टिस्तेनांशेनास्य बंधनं नास्ति।

येनांशेन तु राग स्तेनांशेनास्य बंधनं भवति।। (212)

येनांशेन तु ज्ञानं, तेनांशेनास्य बंधनं नास्ति।

येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बंधनं भवति।। (213)

येनांशेन चारित्रं, तेनांशेनास्य बंधनं नास्ति।

येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बंधनं भवति।। (214) पु.सि.

(In every thought activity) there is no bondage so far as there is right belief; there is bondage so far as there is passion (In every thought activity) there is no bondage so far as there is knowledge; there is bondage so far as there is passion. (In every thought activity) there is no bondage so far as there is conduct; there is bondage so far as there is passion.

जिस अंश से सुदृष्टि होता है उस अंश से सम्यक् दर्शन होता है। उस सुदृष्टि रूप अंश से उस सम्यक्त्व का कर्मबंध नहीं होता है। किन्तु जिस अंश से उस सम्यक् दृष्टि में भी राग होता है उस अंश से उस सम्यक् दृष्टि को भी कर्मबन्ध होता है।

जिस अंश से ज्ञान होता है उस अंश से कर्मबन्ध नहीं होता है परन्तु जिस अंश से राग होता है उस अंश से उस ज्ञानी को कर्मबन्ध होता है। जिस अंश से चारित्र होता है उस चारित्र अंश से कर्म बन्ध नहीं होता है परन्तु जिस अंश से राग होता है उस अंश से उस चारित्र या चारित्रधारी को कर्मबन्ध होता है। इसका भावार्थ यह है कि सराग रत्नत्रय में बन्ध होता है। वीतराग रत्नत्रय में बन्ध नहीं होता है।

समीक्षा:—जैसे-जिस अंश में प्रकाश होता है उस अंश में अन्धकार नहीं होता है तथा जिस अंश में अंधकार होता है उस अंश में प्रकाश नहीं होता है। प्रकाश जितने-जितने अंश में बढ़ता जाता है उसने उतने अंश में अन्धकार भी घटता जाता है। जितने जितने अंश में अन्धकार बढ़ता जाता है उतने-उतने अंश में प्रकाश घटता जाता है। इसी प्रकार जितने-जितने अंश में रत्नत्रयात्मक स्वभाव आत्मा में प्रकट होता है उतने-उतने अंश में वैभाविक भावरूपी कर्मबन्ध घटता जाता है। आचार्य उमास्वामी ने पात्र की अपेक्षा निर्जरा में न्यूनाधिकता का वर्णन करते हुए प्रकारान्तर से इसी विषय को निम्न प्रकार से कहा है-

**सम्यग्दृष्टि श्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शनमोहक्षपकोशमकोपशान्त
मोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः।।**

सम्यग्दृष्टि, श्रावक, विरत अनन्तानुबन्धिविसंयोजक, दर्शनमोहक्षपक, उपशमक, उपशान्तमोह क्षपक, क्षीणमोह और जिन ये क्रम से असंख्यातगुणी निर्जरा वाले होते हैं। जब तक सम्यग्दर्शन की उपलब्धि नहीं होती तब तक आस्रव और बंध की परम्परा चलती रहती है। वह बंध की परम्परा मिथ्यादृष्टि की अनादि से हैं। उसकी जो निर्जरा होती है वह सविपाक निर्जरा या अकाम निर्जरा है। इसलिए मिथ्यादृष्टि केवल आस्रव और बंध तत्त्व का कर्ता है। सम्यग्दर्शन होते ही जीव के ज्ञान एवं दर्शन में परिवर्तन हो जाता है। जिस अंश में दर्शन ज्ञान चारित्र में सम्यक् भाव है उतने अंश में संवर, निर्जरा प्रारम्भ हो जाती है। क्योंकि सम्यग्दर्शन ज्ञान एवं चारित्र आत्मा का स्वभाव है।

पात्र की अपेक्षा गुणश्रेणी निर्जरा और उसके द्रव्य प्रमाण और काल प्रमाण का वर्णन गोम्मटसार में निम्न प्रकार किया है:-

सम्मत्तुष्यत्तीये-सावय विरदे अणंत कम्मसे।

दंसणमोहक्खवगे कषायउवसामगे य उवसंते।। (66)

खवगे य खीणमोहे-जिणोसु दव्वा असंखगुणिदकमा।

तव्विवरीया काला संखेज्जगुणक्कमा होंति।। (67)

सम्यक्त्वोत्पत्ति अर्थात् सातिशय मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि श्रावक, विरत, अनन्तानुबन्धी कर्म का विसंयोजन करने वाला, दर्शन मोहनीय कर्म का क्षय करने

वाला, कषायों का उपशम करने वाला 8-9-10 वें गुणस्थानवर्ती जीव, क्षीण-मोह, सयोगी केवली और अयोगी केवली दोनों प्रकार के जिन ग्यारह स्थानों में द्रव्य की अपेक्षा कर्मों की निर्जरा क्रम से असंख्यात गुणी अधिक होती जाती है। और उसका काल इसके विपरीत है अर्थात् क्रम से उत्तरोत्तर संख्यातगुणा हीन है।

सम्यग्दृष्टि (अविरत):—जैसे मद्यपायी के शराब का कुछ नशा उतरने पर अव्यक्त ज्ञान शक्ति प्रकट होती है या दीर्घ निद्रा के हटने पर जैसे-ऊँघते-ऊँघते भी अल्प स्मृति होती है या विष मूर्च्छित व्यक्ति को विष का एक देश वेग कम होने पर चेतना आती है अथवा पित्तादि विकार से मूर्च्छित व्यक्ति को मूर्च्छा हटने पर अव्यक्त चेतना आती है उसी प्रकार अनन्तकाय आदि एकेन्द्रियों में बार-बार जन्म-मरण परिभ्रमण करते-करते विशेष लब्धि से दो इन्द्रिय आदि से लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त त्रस पर्याय मिलती है। कभी मुनिराज कथित जिनधर्म को सुनता है तथा कदाचित् प्रतिबन्धी कर्मों के दब जाने से उस पर श्रद्धान भी करता है जैसे-कतक फल के सम्पर्क से जल का कीचड़ बैठ जाता है और जल निर्मल बन जाता है, उसी प्रकार मिथ्या उपदेश से अति मलिन मिथ्यात्व के उपशम से आत्मा निर्मलता को प्राप्त कर श्रद्धानाभिमुख होकर तत्त्वार्थ श्रद्धान की अभिलाषा के सन्मुख होकर कर्मों की असंख्यात गुणी निर्जरा करता है। प्रथम सम्यक्त्वादि का लाभ होने पर अध्यवसाय (परिणामों) की विशुद्धि की प्रकर्षता से ये दसों स्थान क्रमशः असंख्येयगुणी निर्जरा वाले हैं। सादि अथवा अनादि दोनों ही प्रकार का मिथ्यादृष्टि जीव जब करण लब्धि को प्राप्त करके उसके अधः प्रवृत्त करण परिणामों को भी बिताकर अपूर्वकरण परिणामों को ग्रहण करता है तब वह सातिशय मिथ्यादृष्टि कहा जाता है। पूर्व की निर्जरा से अर्थात् सदा ही संसारावस्था या मिथ्यात्व में होने वाली या पाई जाने वाली निर्जरा से असंख्यात गुणा अधिक हुआ करती है।

यह कथन गोम्मट्टसार जीवकाण्ड की अपेक्षा से है। इसी से सिद्ध होता है कि मिथ्यादृष्टि की जो निर्जरा होती है उस निर्जरा को यहाँ पर ईकाई रूप में स्वीकार किया गया है। तत्त्वार्थ सूत्र की अपेक्षा निर्जरा के स्थान दस हैं और गोम्मट्टसार की अपेक्षा निर्जरा के स्थान ग्यारह है परन्तु तत्त्वार्थसूत्र में जो अन्तिम स्थान 'जिन' है उसे सयोगी जिन रूप में विभक्त करने से तत्त्वार्थसूत्र में भी ग्यारह स्थान हो जाते हैं।

श्रावक (पञ्चम गुणस्थान) अवस्था को प्राप्त होने पर कर्मों की निर्जरा होती है वह असंयत सम्यग्दृष्टि की निर्जरा से असंख्यातगुणी अधिक होती है। इस प्रकार विरतादि स्थानों में भी उत्तरोत्तर क्रम से असंख्यातगुणी असंख्यातगुणी अधिक अधिक कर्मों की निर्जरा हुआ करती है। तथा इस निर्जरा का काल उत्तरोत्तर संख्यातगुणा संख्यातगुणा हीन-हीन होता गया है अर्थात् सातिशय मिथ्यादृष्टि की निर्जरा में जितना काल लगता है उससे संख्यात गुणा कम काल श्रावक की निर्जरा में लगा करता है। इसी प्रकार आगे से विरत आदि स्थानों के विषय में भी समझना चाहिए।

अर्थात् उत्तरोत्तर संख्यातगुणे हीन-हीन समय में ही उत्तरोत्तर परिणाम विशुद्धि की अधिकता होने के कारण कर्मों की निर्जरा असंख्यातगुणी अधिक-अधिक होती जाती है। तात्पर्य यह है कि जैसे जैसे मोहकर्म निःशेष होता जाता है वैसे-वैसे निर्जरा भी बढ़ती जाती है और उसका द्रव्य प्रमाण असंख्यातगुणा-असंख्यागुणा अधिकाधिक होता जाता है। फलतः वह जीव भी निर्वाण के अधिक अधिक निकट पहुँचता जाता है। जहाँ गुणाकार रूप से गुणित निर्जरा का द्रव्य अधिकाधिक पाया जाता है उन स्थानों में गुण श्रेणी निर्जरा कही जाती है।

योगात्प्रदेश-बंधः स्थिति-बंधो भवति तु कषायात्।

दर्शन बोध चारित्रं न योगरूपं न कषायरूपं च।। (215)

“प्रकृतिः परिणामः स्यात्, स्थितिः कालाऽवधारणम्।

अनुभागो रसो ज्ञेयो, प्रदेशो दल-संचयः।”

Pradesha Bandha, bondage of karmic molecules is due to soul's vibratory activity, and sthiti Bandha, duration bondage, is due to passions. But Right belief, knowledge and conduct have neither the nature of vibrations nor of passions.

मन-वचन-काय योग से प्रदेश बंध होता है। क्रोधादि कषाय से स्थिति बंध होता है। योग से प्रकृति, प्रदेश बंध जीव करता है। स्थिति अनुभाग बंध कषाय से जीव करता है। कहा भी है-

परिणाम अर्थात् स्वभाव को प्रकृति कहते हैं। स्थिति, काल की अवधारणा को अर्थात् मर्यादा को स्थिति कहते हैं। इस फलदान शक्ति को अनुभाग कहते हैं। कर्म परमाणु समूह के संचय को प्रदेश कहते हैं। योग तथा कषायों के उत्कृष्ट तथा निकृष्ट भेद से बंध में भी विचित्रता जाननी चाहिए। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र ना योग रूप है ना कषाय रूप है। योग तथा कषाय स्वरूप भिन्न हैं तथा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का स्वरूप भिन्न है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में योग तथा कषाय नहीं होता है इसलिए रत्नत्रय से कर्मबंध नहीं होता है।

दर्शनमात्मविनिश्चिति, रात्म-परिज्ञानमिष्यते बोधः।

स्थितिरात्मनि चारित्रं, कुत ऐतभ्यो भवति बन्धः॥ (216)

Right belief is conviction in one's own self, knowledge is a knowledge of one's self own self; conduct is absorption in one's own self. How can there be bondage by these.

दर्शन, बोध, चारित्र से कर्मबंध नहीं होता ऐसा कहा गया है। यह किस प्रकार है? ऐसा प्रश्न करने पर दर्शन आदि का स्वरूप बता रहे हैं। आत्मा की विनिश्चिति/प्रतीति/श्रद्धा सम्यग्दर्शन होता है। अर्थात् आत्मा के निश्चय स्वभाव का दर्शन सम्यक्त्व होता है। आत्मा का समग्रता से परिज्ञान/चिन्तन/बोध को ज्ञान कहते हैं। आत्मा में ही स्थिर हो जाना, उसमें रमण करना चारित्र है। ये तीनों आत्मा के स्वभाव होने के कारण इससे कर्मबंध किस प्रकार होगा? अर्थात् यह आत्मा का स्वभाव होने से स्वभाव में बंध नहीं होता है किन्तु विभाव में बंध होता है।

सम्यक्त्व-चारित्राभ्यां, तीर्थकराऽऽहार-कर्मणो बन्धः।

योऽप्युपदिष्टः समये, न नयविदां सोऽपि दोषाय॥ (217)

Whatever, bondage of Tirthankar karma, or Aharaka karma, has been described in the scripture as due to right belief and conduct, would not appear to be a mistake to those who are learned in the points of view.

शास्त्र में कहा गया है कि तीर्थकर प्रकृति, आहारक शरीर का बंधन सम्यक्त्व और चारित्र से होता है। अर्थात् जिनेन्द्र द्वारा कहा हुआ सिद्धान्त शास्त्र में वर्णन है

कि अरिहन्त के लिये कारणभूत तीर्थकर पुण्य-प्रकृति का बंध, आहारक नाम कर्म उदय के निमित्त आहारक शरीर प्रकृति का बंध, सम्यक्त्व और चारित्र से होता है। परन्तु यह बंध नय को जानने वालों के लिए दोष कारक नहीं हैं।

परमसत्य (धर्म) का स्वरूप व कुधर्म का स्वरूप

(चाल:- 1. इह विधि मंगल... 2. भातुकली... 3. जय हनुमान... 4. क्या मिलिए...)

करूँ प्रार्थना/(आरती) परम सत्य की...आत्मा को परमात्मा बनाने वाले की।

यह ही परमधर्म, नीति, नियम, ज्ञान-विज्ञान-परम-संविधान।।

वस्तु स्वरूप हैं परम धर्म, सभी द्रव्यों में प्रधान आत्मधर्म।

अनन्तज्ञानदर्शन सुखवीर्य, सच्चिदानन्दमय आत्मधर्म।। (1)

इसे प्राप्त करने हेतु हो पुरुषार्थ, आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र युक्त।

समता-शान्ति-पावनता युक्त, मैत्री प्रमोद कारुण्य समता युक्त।।

अहिंसा अपरिग्रह अनेकान्त युक्त, क्षमा मार्दव आर्जव तप त्याग।

स्वपर विश्वकल्याण भाव सहित, वैर-विरोध पक्षपात रहित।। (2)

इससे आत्मविशुद्धि शक्ति की वृद्धि, जिससे आत्मउन्नति से मिलती मुक्ति।

‘सचवं भगवं’ ‘सत्यमेव जयते’ इससे आत्मा-परमात्मा बनते।

इससे भिन्न धर्म हैं कुधर्म, भले उस में हो धार्मिक क्रियाकाण्ड।

कुधर्म त्यजकर भव्य सुधर्म भज, रागद्वेषमोहममत्व त्यज।। (3)

आगम-अनुभव विश्वसाहित्य से ज्ञात, अधिकतर मोही उक्त सत्य से अज्ञात।

निकट भव्य महानुभव से ज्ञात सत्य, सत्य उपासक “कनक” बनाया काव्य।। (4)

ग.पु.काँ. सागवाड़ा 17-04-2022 पूर्वाह्न-9.42

कार्यकारण सिद्धान्त व इससे परे भी परम सत्य

(चाल: छोटी-छोटी गैया... 2.क्या मिलिए...)

कारण बिना कार्य न होता, परमसत्य हेतु भजनीय व्यवस्था।

द्रव्यक्षेत्र व काल भाव से, कार्यकारण सम्बन्ध होता इसी में।।

निमित्त उपादान सम्बन्ध होता, निश्चय-व्यवहार में यथायोग्य होता।

शुद्ध में शुद्ध तो अशुद्ध में शुद्ध, मूर्तिक-अमूर्तिक यथायोग्य होता।। (1)

यथा बीज से वृक्ष तो, वृक्ष से बीज, पानी से बर्फ तो तथाहि वाष्प।
संसार नाश से मिलता मोक्ष, मोक्ष के बाद न संसार दशा।
दूध से घृत न घृत से दूध, स्थूल से यह कार्यकारण ज्ञेय।
घृत से दूध भी संभव होता, दीर्घ परिणमन से संभव होता॥ (2)
घृतपान से घृत दूध भी बनता, स्तन्यपाई मादा में अधिक होता।
दीर्घ परिणमन से घृताणु दूध भी बने, पंचपरिवर्तन से संभव बने॥
अनादिकालीन कर्म बन्ध से, जीव भ्रमते संसार मध्य में।
द्रव्यकर्म उदय से भाव धर्म होता, भाव कर्म उदय से द्रव्यकर्म बन्धता॥ (3)
आस्रव बन्ध से संसार में दुःख, संवर, निर्जरा, कर्मक्षय से मोक्ष (सुख)।
विभाव संसार (दुःख) तो स्वभाव से मोक्ष, विभाव सकारण स्वभाव निसर्गज॥
जीव द्रव्य यथा स्वयंभू स्वतंत्र, भले संसारी जीव कर्म परतंत्र।
तथा पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, निश्चय कालाणु स्वयंभू स्वतंत्र॥ (4)
वे न किसी कारण से उत्पन्न हुए, बाह्यकारण उन्हें न उत्पन्न किए।
अतः परमसत्य कार्यकारण रिक्त, भले परस्पर उपग्रहो होते सभी द्रव्य॥
यह वस्तु स्वरूप अनेकान्त रूप, अनेकान्त भी सापेक्ष रूप में सत्य।
अनेकान्त भी अनेकान्त प्रमाण नयतः भुवनैकगुरु अनेकान्त स्वरूप॥ (5)
सर्वज्ञ द्वारा यह सभी पूर्णतः ज्ञात, अल्पज्ञ द्वारा होता आंशिक ज्ञात।
कार्यकारण रूप से अभी मैं युक्त, 'अकार्यकारण कृतकृत्य 'कनक' का लक्ष्य॥ (6)

ग.पु.कों. सागवाड़ा, दि-16-4-22, मध्याह्न-2.13

आध्यात्मिक सोपान-गुणस्थान क्रम से-

नैतिकता < व्यवहार धर्म < आध्यात्मिकता

(नैतिकता बिना व्यवहार धर्म नहीं व व्यवहार धर्म बिना आध्यात्मिकता नहीं)

(नैतिकता व आध्यात्मिकता रिक्त धर्म कुधर्म)

(चालः 1. यमुना किनारे... 2. छोटी-छोटी गैया...)

नैतिकता से व्यवहार धर्मश्रेष्ठ है, व्यवहार धर्म से आध्यात्मिक।

पूर्व बिन उत्तर न संभव है, आध्यात्मिकता में दोनों सम्यक्॥

आत्मश्रद्धान से प्रारंभ होता व्यवहार धर्म उससे पूर्व नैतिकता।

आत्मध्यान से प्रारंभ आध्यात्मिक (ध्यान), उससे पूर्व दोनों अवस्था ॥
चतुर्थ गुणस्थान से प्रारंभ व्यवहार धर्म, उससे पूर्व नैतिकता ॥
अष्टमगुणस्थान से प्रारंभ आध्यात्मिक, केवली में पूर्ण आध्यात्मिकता ॥ (1)
सम्यक्त्व पूर्व होता भद्रमिथ्यात्व स्वभाव में होती मुदुता ॥
 “स्वभाव मार्दव च” सूत्र में देव मानव में जन्म भी होता ॥
 इससे अतिरिक्त कोई भी जीव नहीं बन सकते हैं सम्यक्त्वी ॥
सम्यक्त्व से व्यवहार धर्म जिसकी वृद्धि से आध्यात्मिक वृत्ती ॥ (2)
 इससे होता सिद्ध नैतिकता बिना न होता धर्म प्रारंभ ॥
 क्रूर कठोर अहंकारी ममकारी, अन्याय अत्याचारी में नहीं सम्यक्त्व ॥
 नैतिक भले न हो सम्यक्त्वी किन्तु सम्यक्त्वी होगा निश्चय से नैतिक ॥
 तथाहि सम्यक्त्व बिना न आध्यात्मिक किन्तु सम्यक्त्वी न पूर्ण आध्यात्मिक ॥ (3)
 अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ, मोह के उपशम से उपशम सम्यक्त्वी ॥
 प्रशम, संवेद, अनुकम्पा, आस्तिक्य सहित होता है सम्यक्त्वी ॥
शंकादि अष्टदोष रहित, निः शंकादि अष्ट अंग सह सम्यक्त्वी ॥
 अष्टमद, सप्तभय, तीन मूढता, सप्तव्यसन रहित प्राथमिक धार्मिक ॥ (4)
 इससे भी परे पंचअणुव्रत युक्त, दया दान सेवा में अनुरक्त ॥
 वे होते हैं आदर्श गृहस्थ, संसार शरीर में भोगों में न हो मोहासक्त ॥
 इससे भी परे पंचमहाव्रत युक्त, संसार शरीर भोगों से विरक्त ॥
 वे होते हैं निर्ग्रन्थश्रमण, जो आध्यात्मिक विकास हेतु करते श्रम ॥ (5)
 समस्त संकल्प-विकल्प परे, जो केवल आत्मध्यान में लवलीन ॥
 यहाँ से प्रारंभ होता आध्यात्मिक शुक्लध्यान, पूर्णता में होता केवलज्ञान ॥
 ये आध्यात्मिक गुणस्थान वर्णन, जो सत्य-तथ्य आगम प्रमाण ॥
 अन्यथा नहीं होता यथार्थ, भले हो रूढ़ि परम्परा या मिथ्यात्व ॥ (6)
 धार्मिक दिखावा का करते ढोंग नहीं होते नैतिक से ले आध्यात्मिक ॥
 अतः धार्मिक हेतु नैतिक बनों, आध्यात्मिक लक्ष्य सह काव्यरचा ‘कनक’ ॥
 इसके बिना धर्म होता कुधर्म, भेदभाव पूर्ण ढोंग पाखण्ड ॥
 क्रूर कठोर ख्याति पूजा लाभ वर्चस्व पूर्ण, इससे परे होता सुधर्म ॥ (7)

ग.पु.कॉ. सागवाड़ा, दि-11-04-2022, मध्याह्न-2.53

आत्मा की 47 शक्तियाँ

(प्रवचन-1)

दिनांक-09/02/2021

आत्मा की 47 शक्तियाँ अर्थात् निगोद से लेकर सिद्ध भगवान् की शक्तियाँ है (अनादिकाल से जीव काम, क्रोध भोग, राग-द्वेष कषाय बंध में ही लित है। इसलिए ये सभी श्रुत-परिचित और अनुभूत है इससे विपरीत जीव स्व आत्म तत्व को नहीं पहचानता है। और श्रद्धान नहीं कर पाता है। जीव स्वयं पर विश्वास नहीं कर पाता है। जिस प्रकार आँखे स्वयं को नहीं देख पाती है स्वयं को देखने के लिए दर्पण की आवश्यकता होती है उसी प्रकार सर्वज्ञ भगवान् की दिव्य वाणी (जिनवाणी) से ही स्वयं को जान सकते हैं क्योंकि आत्मा को जानने के लिए अनन्त ज्ञान होना चाहिए। अमूर्तिक ज्ञान अर्थात् केवलज्ञान होना चाहिए।

आइन्स्टीन ने कहा था कि-Cannot absolute truth but we can only know the realative truth the real truth is know only to the universal obersver.

हम केवल आंशिक सत्य को वैज्ञानिक दृष्टि से, धार्मिक दृष्टि से सापेक्ष सत्य को जान सकते हैं परम सत्य को नहीं जान सकते हैं।

आत्मा को इतनी शक्तियों की आवश्यकता क्यों है? सिद्ध भगवान् को नहीं अध्ययन करना, ना ही व्यापार-वाणिज्य करना है तथापि अनन्त शक्तियों की आवश्यकता क्यों? जबकि गृहस्थ लोगों को व्यापार व अध्ययन आदि करना पड़ता है, अतः उन्हें अनन्त शक्तियों की आवश्यकता होती है। सिद्ध भगवान् को क्या आवश्यक है? द्रव्य अनेकान्त स्वरूप, अनन्त धर्म युक्त, अनन्त गुण युक्त, अनन्त पर्याय युक्त है। द्रव्य अर्थात् Thing या Matter नहीं है या चीज नहीं।

सत् द्रव्य लक्षणम्। -तत्त्वार्थ सूत्र

जो सत् स्वरूप है वही द्रव्य है। जो मौलिक व अनेकान्त स्वरूप है। जहाँ अनेक अन्त होते हैं वही अनेकान्त है। षट् द्रव्य (जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश व काल) ये सभी अनन्त गुणों से युक्त है। जिस वस्तु में अनन्त गुण हो, भाष्य हो, Modification हो, ऊर्जा हो, वही द्रव्य कार्यकारी सिद्ध होगा।

कोई भी भौतिक कार्य हो, सांसारिक कार्य हो, या आध्यात्मिक रूप में या हर कार्य हर Event में अनन्त आयाम अनन्त गुण धर्म चाहिए अन्यथा कोई भी कार्य नहीं होगा। जो द्रव्य कार्य नहीं करता है उसमें परिणमन नहीं है वह द्रव्य कैसे कहाँ जाय? उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त ही द्रव्य है। आत्मा के अनन्त गुण है और अनन्तानन्त पर्याय है द्रव्य के सम्पूर्ण काल में उत्पाद-व्यय है। परिणमन होता है जैसे बादल आते बारिश होती है, बच्चा-बूढ़ा होता है। इन सब द्रव्यों में महानतम् द्रव्य-जीव द्रव्य है। “सर्व द्रव्याणां उत्तम द्रव्यं”। द्रव्य की शक्ति के कारण वैज्ञानिक खोजकर रहे हैं। जब रविन्द्रनाथ ठाकुर व वैज्ञानिक आइन्स्टीन की चर्चा हुई आत्मा के बारे में कहा-उन्होंने आत्मा के विषय में आत्मा की शक्ति के माध्यम से अणु से लेकर ब्रह्माण्ड तक को जानने का पुरुषार्थ किया लेकिन मैं स्वयं को नहीं जान पाया। मैं स्वयं को (आत्मा को) जानने के लिए भारत में पुनः जन्म लूँगा। आवश्यकता आविष्कार की जननी है। अतः वर्तमान में कोरोना से लेकर पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान नहीं होने के कारण वैज्ञानिक स्वयं को व आत्मा को जानना चाहते हैं। यह आत्मा समस्त शक्तियों ज्ञानज्ञेय का, ब्रह्माण्ड का व मोक्ष का जो केन्द्र है ऐसे आत्मा द्रव्य को जानना चाहते हैं। यह जीव धर्म, आध्यात्मिक धर्म का विश्वविजयी अभियान है।

सर्व तत्त्वानाम्-उत्तम तत्त्व, सर्व द्रव्याणां उत्तम द्रव्य, सर्व धर्माणाम् उत्तम धर्म कौनसा? अर्थात् आत्मा=जीव द्रव्य है। यही जीव द्रव्य व अन्य द्रव्यों के क्या-क्या गुण है?

“सत् द्रव्य लक्षणम्।”

सत् ही द्रव्य का लक्षण है अर्थात् Reality होना। परम सत्य का होना।

“उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तं सत्।”

सत् स्वरूप द्रव्य अपनी सत्ता को बिना परिवर्तित किये, प्रति समय पूर्ववर्ती प्राचनी पर्याय को त्याग कर उत्तरवर्ती नवीन पर्याय को धारण करता है। समस्त द्रव्यों में अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, अचेतनत्व, मुर्तित्व, अमुर्तित्व, प्रदेशत्व, चेतनत्व ये दस गुण पाये जाते हैं। विश्व में जितने द्रव्य हैं उनके ये सब सामान्य गुण हैं। द्रव्यों के अस्तित्व होना, वस्तुत्व होना, उसमें गुण होना, द्रव्यत्व होना, उसमें परिणमन करना, ज्ञानज्ञेय उस तत्त्व को किसी न किसी ज्ञान द्वारा ज्ञात

होना, प्रत्येक द्रव्य आकाश को अवश्य घेरेगा। जीव द्रव्य में ही चेतना है। अन्य द्रव्यों में चेतन का गुण नहीं है। जिसमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण पाया जाता है वह मूर्तिक है। मूर्तिक द्रव्य इन्द्रिय गम्य है लेकिन अमूर्तिक द्रव्यों को इन्द्रियों एवं यन्त्र के माध्यम से नहीं देख सकते हैं।

जीव में प्रमुख गुण है-ज्ञान, दर्शन, सुख व वीर्य, अमूर्तित्व व चेतनत्व। जबकि पुद्गल में स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, मूर्तित्व अचेतनत्व का गुण पाया जाता है। अगुरुलघुत्व गुण क्या है? ये गुण अत्यधिक व्यापक है इसे छद्मस्थ जीव नहीं जान सकता है। ये शुद्ध द्रव्य का विशेष गुण है। अशुद्ध द्रव्य का नहीं।

अगुरुलघु में प्रथम अक्षर 'अ' है वो नकारात्मक Negative अर्थ में लिया जाता है गुरु का अर्थ भारी है यह स्कन्ध का गुण है अणु का गुण नहीं है और विशेष स्कन्ध में ही होता है हर स्कन्ध में नहीं होता है। क्वाण्टम के वेट एवं न्युट्रोन के वेट में अधिक न्युट्रोन का वेट है हालांकि भार महसूस नहीं होता है लेकिन उसमें अनन्तानन्त स्कन्ध मिलेंगे। उस स्कन्ध में भारी गुण अगुरुलघु के कारण हैं।

अ+गुरु+लघु (हलका)=अगुरुलघु

उपरोक्त उसका शब्दिक अर्थ है लेकिन ऐसा नहीं है। ये विशेष गुण है-

छः वृद्धि रूप छः हानि रूप। ये गणधर भी नहीं समझ पाते हैं ये मात्र ज्ञानगम्य है ब्रह्माण्डीय अनन्त गुण जो परिणमन होता है उसका गणित है, इसलिए सर्वज्ञ भगवान् ही जान सकते हैं षट् गुण हानि वृद्धि- 1. अनन्त भाग वृद्धि 2. असंख्यात भाग वृद्धि 3. संख्यात भाग वृद्धि 4. संख्यात गुण हानि 5. असंख्यात गुणा हानि 6. अनन्त गुणा हानि।

आचार्य श्री ने उदाहरण दिया कि जिस प्रकार समुद्र की तरंगें उठती हैं और उसमें विलीन हो जाती हैं उसी समुद्र में ही बैठ जाती हैं ऐसी तरंगें 40 से 50 फीट ऊँची उठती हैं जिनके प्रहार से बड़े-बड़े जहाज भी डूब जाते हैं। बिल्डिंग भी ढह जाती है लाखों टन पानी उन तरंगों में होता है उसे ही ज्वार-भाटा कहते हैं।

तथापि समुद्र के पानी में हानि वृद्धि नहीं होती है, तरंगें महासमुद्र में उठती हैं और उसी में विलीन हो जाती हैं, एक अन्य उदाहरण के द्वारा भी समझ सकते हैं। रबड़ में हानि वृद्धि नहीं होती है, गुब्बारे में हवा भरने पर फूल जाता है और हवा

निकालने पर छोटा हो जाता है फिर भी गुब्बारे का Mass वही है। इसी प्रकार हर शुद्ध द्रव्य से अणु में लेकर आत्मा तक हानि-वृद्धि होती है। यही अगुरुलघु गुण है जो एक गुण को बिखेर करके अन्य गुणों में परिवर्तित नहीं होने देता है, एक द्रव्य अन्य द्रव्य रूप परिणमन नहीं होता है।

ये ही विशेष गुण है जिसमें चेतन-अचेतन रूप में नहीं, अचेतन-चेतन रूप में परिणमित नहीं होता है। अनन्त सिद्ध एक छत्र के नीचे होते हुए भी एक सिद्ध के सुख दूसरे सिद्ध के सुख में परिणमित नहीं होते हैं। सिद्धों को अनन्त ज्ञान-दर्शन, सुख व वीर्य की आवश्यकता इसलिए है कि स्व संवदेन करने के लिए, अपने स्वयं का अनुभव करने के लिए, समस्त चेतन-अचेतन द्रव्य को जानने के लिए एवं समस्त ब्रह्माण्ड को जानने के लिए।

आत्मा का ज्ञान गुण मात्र स्व को जानने के लिए ही है "I am because I know So I am." मैं हूँ क्योंकि मैं अनुभव करता हूँ। आत्मा के अलावा अन्य किसी द्रव्य या अणु में योग्यता व क्षमता नहीं है। आत्मा के अनन्त गुणों में एक चेतना गुण भी है अनन्तानन्त जीवों में ये गुण पाया जाता है।

चेतना ही सुख और दुःख का अनुभव कराती है। और केवलज्ञान होने पर अनन्त वैभव का अनुभव करवाती है।

अ+विना+अनुभूत=अविनाभूत। ज्ञान के साथ-साथ चेतना का अविनाभूत संबंध है। चेतना के साथ-साथ अनन्त गुण अवश्यक है परन्तु "अर्पितानार्पित सिद्धे" अर्थात् एक विषय का प्रतिपादन करते समय अन्य विषय को गौण माना जाता है। लेकिन लोप नहीं हो जाता है। इन महान् शक्तियों में अन्य शक्तियाँ भी गर्भित है। जिस प्रकार विद्युत शक्ति अन्य शक्तियों में परिवर्तित हो जाती है जैसे हीटर, पंखा आदि।

ज्ञान व चेतना से जीव अनुभव करता है व जानता है। सुख दुःख का अनुभव करता है केवल आत्मा में इतने ही गुण नहीं है बल्कि अनन्तानन्त गुण है। इसलिए ही जैन धर्म को अनेकान्त धर्म, वस्तु स्वरूप धर्म, धार्मिक धर्म, विश्व धर्म आदि कहते हैं।

आत्मा में अनन्त गुण है फिर ज्ञानमोत्रण क्यों कहा है?

ज्ञान को इतना महत्व क्यों दिया गया है? सम्यक् दर्शन के पहले भी ज्ञान होगा। बिना ज्ञान के दर्शन सम्यक् नहीं और चारित्र भी सम्यक् नहीं होता है।

ज्ञान को अधिक महत्व क्यों दिया गया है? क्योंकि सम्यक् दर्शन के पहले सम्यग्ज्ञान होता है बिना सम्यग्दर्शन के सम्यग्दर्शन नहीं होता है। और सम्यग्दर्शन के बिना सम्यग्ज्ञान नहीं होता है। सम्यग्दर्शन व ज्ञान के बिना सम्यग्चारित्र नहीं होगा। आत्मा में अनन्त गुण है उसमें एक ज्ञान गुण भी है। वही ज्ञान गुण आत्मा के अन्य गुणों को जानता है। इसलिए ज्ञान में सबको समाहित कर दिया है।

Knowledge is power, There is no with Knowledge.

तिक्काले चदुपाणा इन्द्रिय बल माउ आणपाणोय।

ववहारा सो जीवो णिच्छयणयदो दु चेदणा जस्स।।

छः द्रव्य में मुख्य द्रव्य है-जीव द्रव्य जीव द्रव्य क्या है? ये शक्ति कहाँ से आई? आचार्य श्री कह रहे हैं कि जीव में जो शक्ति है जिसके कारण जीव अनादिकाल से चौरासी लाख योनियों में परिभ्रमण करते हुए जी रहा है उसका कारण जीवन्त शक्ति ही है मूल चेतना शक्ति है उस चेतन शक्ति के साथ जीव विभिन्न गतियों व योनियों में जन्म लेता है। अपने-अपने कर्मों के अनुसार जीव कर्मों को भोगता है। इस जीवन शक्ति के कारण ही जीव अनन्त बार नरक-निगोदों में भटका, बहुत बार मारा-पिटा गया फिर भी कभी नष्ट नहीं हुआ उसका मात्र एक कारण जीवन शक्ति है। जीवन शक्ति के कारण ही जीव है।

चेतना को ही सम्पूर्ण जीव मान लेना भी एक भूल है, चेतना तो एक भाग है, चेतना एक शक्ति है।

शिव विश्व का महानतम शब्द

सागवाड़ा। वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी गुरुदेव ने शनिवार को अंतरराष्ट्रीय वेबिनार में कहा कि शिव विश्व का महानतम शब्द है।

अनेक शब्दों के गूढ़ रहस्य, आध्यात्मिक गहन अर्थ बताते हुए आचार्य ने कहा कि प्रत्येक आत्मा शिव बनने से पूर्व पशु, चांडाल, नारकी मनुष्य होता है। शिव का अर्थ मोक्ष, अमृत, आत्म तत्त्व, पवित्र, शाश्वत, शुद्ध आत्मा होता है। अरिहंत भी

पूर्ण शिव नहीं है, सिद्ध भगवान् पूर्ण शिव हैं। हरि व हर भगवान् को बोला जाता है, जो पापों का हरण करें, दुःख नष्ट करें वह हर और हरि हैं।

जन्म व मृत्यु को नष्ट करने वाले त्रिपुरारी

उन्होंने कहा कि जो स्वयं से लेकर पूरे विश्व में शांति करें, पवित्र करे वह शंकर है। संभव का अर्थ जो असंभव को संभव करके दिखाते हैं, जो स्वयं में व विश्व में सुख उत्पन्न करते हैं करवाते हैं, वह संभव है। कर्म शत्रु को मारने वाले अरिहंत कहलाते हैं। त्रिपुरारी का अर्थ जन्म, जरा, मृत्यु को नष्ट करने वाले त्रिपुरारी कहलाते हैं। नारी का अर्थ जिनके कोई शत्रु नहीं है वह नारी कहलाती है। अर्धनारीश्वर का अर्थ है अरिहंत क्योंकि उन्होंने चार अघातिया कर्मों को नष्ट करना बाकी है अतः अर्धनारीश्वर कहा गया है। केवल ज्ञान के स्वामी, आध्यात्मिक गुणों के स्वामी को ईश्वर कहते हैं। आचार्य ने कहा कि भगवान् को विश्व के समस्त प्राणियों का उद्धारकर्ता होने के कारण विश्व भूतेश भी कहा है। जो अरिहंत को द्रव्य, गुण, पर्याय से जानते है वह स्वयं को जानते हैं। तुम्हारे स्वामी तुम स्वयं हो, स्वयं की अनंत आत्म वैभव को जानने वाले गुरुदेव किसी की भी भौतिक धन-संपत्ति वैभव से प्रभावित नहीं होते। आत्म वैभव को जानने पर अहंकार, ममकार, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा सब मिट जाएंगे।

आचार्य मानव मात्र से नहीं करते भेदभाव

साधक विजयलक्ष्मी गोदावत ने बताया कि आचार्य विद्यानन्दी सूरि आचार्य कनकनदी के परम शिष्य हैं। उन्होंने आचार्य कनकनदी गुरुदेव के बारे में बताया कि गुरुदेव धनी-गरीब, छोटा-बड़ा, स्त्री-पुरुष किसी में भेदभाव नहीं करते, सब के विचार सुनते हैं उससे शिक्षा व प्रेरणा लेते हैं। गुरुदेव आगम के कठिन विषय को दृष्टान्त के माध्यम से सरल करके पढ़ाते हैं। गुरुदेव को समझना सामान्य लोगों के लिए सरल नहीं है। गुरुदेव के साहित्य, जिनवाणी के गूढ़ रहस्य शुद्ध हिंदी से भरपूर होने के कारण सामान्य हिंदी जानने वाले भी समझ नहीं पाते। उनके साहित्य में उत्कृष्ट आगम, वैज्ञानिक तथ्य तथा लंबे लंबे साहित्यिक शब्द होते हैं जो अधिकतर सामान्य लोग समझ नहीं पाते। आचार्य के साहित्य पीएचडी करने वाले शोधार्थियों के लिए भी कठिन होने के बावजूद वैज्ञानिकों के शोध-बोध में सहायक है।

आत्मा की 47 शक्तियाँ

(प्रवचन-2)

दिनांक-11/02/2021

ॐ नमः सिद्धेभ्यः। ॐ नमः सिद्धेभ्यः। ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

पहली जीवत्व शक्ति हैं, इसी शक्ति के कारण जीव अनादि से अनन्त काल तक जीवित रहता है। द्रव्य प्राण-भाव प्राण इस शक्ति के माध्यम से टीकते/कायम रहते हैं। जीव D.N.A, R.N.A, कोई एटम से नहीं बना है। वैज्ञानिक जो मानते हैं जीव एटम से बना है नहीं शरीर इनसे बना है परन्तु आत्मा की स्वयं की जीवत्व शक्ति है। दूसरी है अनाकार रूप में चितिशक्ति अजडत्वात्मिका चितिशक्ति। (2) अजडत्व अर्थात् चेतनत्व स्वरूप चितिशक्ति। साकार रूप में ज्ञान शक्ति, सुखशक्ति, वीर्य-शक्ति। जड़ में चैतन्य शक्ति नहीं होती। यही विज्ञान किंकर्तव्यविमूढ हो जाता है। Power of Consesness चिति शक्ति।

अनाकारोपयोगमयी दृशि शक्तिः॥ (3)

जिस में ज्ञेय रूप आकार अर्थात् विशेष नहीं है, ऐसे दर्शनोपयोगमयी, सत्तावलोकन मात्र दर्शन क्रिया रूप शक्ति। यहाँ साकार माने चक्षु दर्शन या सम्यग्दर्शन रूप श्रद्धान रूप में दृष्टि नहीं है।

साकारोपयोगमयी ज्ञान शक्ति॥ (4)

जो ज्ञेय पदार्थों के विशेष रूप आकारों को ग्रहण करती है वह ज्ञानोपयोगमयी ज्ञान शक्ति है।

अनाकुलत्वलक्षणा सुख शक्ति॥ (5)

अनाकुलता जिसका लक्षण है, स्वरूप है वो सुख शक्ति है। अनन्त सुख को पाना ही लक्ष्य है। अनाकुलता रहित अर्थात् जहाँ संकल्प-विकल्प नहीं।

स्वरूपनिर्वर्तन सामर्थ्यरूपा वीर्यशक्तिः॥ (6)

आत्मस्वरूप की रचना सामर्थ्यरूप वीर्यशक्ति। वीर्य शब्द महान् आध्यात्मिक पवित्र शब्द है। स्वरूप निर्वर्तना अर्थात् आत्मा में जो अनन्त गुण, पर्याय, सुख है उसका ध्यान, अनुभव करने की जो शक्ति है वह वीर्य शक्ति है।

इन शक्तियों को व्यापक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से तथा अलौकिक गणित से आत्म वैभव को समझने पर आत्मगौरव होगा। मैं दीन-हीन-कायर, राजा-महाराजा नहीं हूँ मैं ब्रह्माण्ड का, त्रैलोक्याधिपति हूँ। चित्ति शक्ति=चैतन्य शक्ति।

भगवान्=भग्+वान्। भग=ज्ञान जो ज्ञानवान है वो है भगवान्। जिसने राग-द्वेष, क्रोध-मोह ईर्ष्यादि विभाव भावों को भग्न कर दिया व अनन्त वैभव को प्राप्त किया वो “भगवान्। कौन है भगवान्? और कैसे बनते है भगवान्” यह मेरी (कनकनंदी) कृति अवश्य पढ़े। भगवान् का अर्थ है जिनमें सांसारिक सुखों की चाह नहीं, जो समस्त सांसारिक बन्धन से, दुःखों से मुक्त हो गये, वैभाविक शक्तियों को भग्न कर दिया है, 18 दोषों से जो दूर हो गये है वे भगवान्। भगवान् के 2-4 नाम प्रचलित है-सच्चिदानन्द, चिदानन्द, चिन्मयानन्द, परमानन्द। ये अति उत्कृष्ट शब्द है। इन शब्दों का विदेशी दर्शनों में नाम नहीं। उन दर्शनों में आत्मा-परमात्मा का वर्णन नहीं। अभी वैज्ञानिक लोक आत्मा को जानना चाहते है।

सच्चिदानन्द=सत्+चित्+आनन्द/सत्=वैज्ञानिक सत्य नहीं, कानून, राजनैतिक, व्यावहारिक, काल्पनिक सत्य नहीं। सत् जो द्रव्य है। आत्मा में जो अजड़त्व, चैतन्य शक्ति है। चैतन्य है, शुद्ध है परन्तु आनन्द नहीं तो क्या अनुभव होगा। आनन्द भी परम-पवित्र शब्द है। सुख शब्द से सांसारिक भोग-उपभोग, काम भोग-विषय वासना, फैशन-व्यसन को समझते है। वीर्य शब्द का अर्थ, संभोग करते समय जो धातु स्खलन होता है उसे ही मान लेते हैं। परन्तु अनन्त वीर्य महान् परम पवित्र शक्ति है उसके बिना अरहंत सिद्ध अनन्त सुख का उपभोग ही नहीं कर सकते न अनन्त ज्ञान-दर्शन को जान सकते है। अमृत को विष बना दिया है।

$E=mc^2$ आत्मा में ऊर्जा कैसे है? कहाँ से है? सत्य के अनेक भेद हैं। बल व वीर्य में अन्तर है, बल भौतिक होता है, तो वीर्य-आत्मिक शक्ति है। बल=फोर्स, प्रेशर, हीट आदि। चित्तिशक्ति से जीव जानता है, अनुभव करता है, feeling करता है। I am because. I am thinking and I am thinking So I am. केवल मनुष्य नहीं एकेन्द्रिय, निगोद से ले पंचेन्द्रिय सभी जीवों में चित्तिशक्ति है। वैज्ञानिकों ने अरबों-खरबों रूपये खर्च किये परन्तु Present Now तक नहीं जान पाये हैं।

आत्मा की शक्तियों का वर्णन सर्वज्ञ प्रतीपादित पूर्वाचार्यों द्वारा लिखित उसका

मेरे (आ. कनकनन्दी) द्वारा प्रतिपादन हो रहा है। आप जैसे भव्यात्मा सुन रहे हो। अजड़त्व शक्ति चेतना शक्ति जड़ से उत्पन्न नहीं हो सकती। वैज्ञानिकों का जो मानना है कि केमिकल चेंज से चेतना शक्ति उत्पन्न होती है यह गलत धारणा है। विग्रह गति से जीव आकर के उस योनि में जन्म लेता है भले की सम्मूर्छन, गर्भज, या पोतज हो। वैज्ञानिक अभी तक नहीं जान पाये कि जीव कब से है? उसके गुणधर्म, लक्षण, प्रभाव क्या है? जीव की उत्पत्ति कहाँ से, कब हुई? नहीं जान पाये हैं।

जीव विज्ञानी, डार्विन आदि ये मानते हैं कि एककोशिय से विकास होते हुए बहुकोशिय मनुष्य इन्टेलीजेन्ट प्राणी उत्पन्न हुए। आचार्य श्री आगे बता रहे है अनाकार उपयोगमयी दृशि शक्ति, सामान्य अवलोकन रूप चैतन्य की प्रवृत्ति दर्शन-दृशि शक्ति, सामान्य अवलोकन रूप चैतन्य की प्रवृत्ति दर्शन-उपयोग व अनाकार रूप ज्ञानोपयोग। आत्म तत्त्व से लेकर परमात्मा तक, अणु से लेकर समस्त ब्रह्माण्ड को जानने की जो शक्ति है वह है ज्ञान-शक्ति। अनाकुल सुख शक्ति कहा है-

आतम को सुख है सुख सो सुख आकुलता बिन कहिए।

आकुलता बिन माहिन तातै शिव मग लाग्यो चाहिए।।

जहाँ संकल्प-विकल्प, कषाय, आकर्षण-विकर्षण, अहंकार-ममकार, विभाव, विकारी भाव हैं वहाँ इन्द्र, चक्रवर्ती को भी सुख प्राप्त नहीं हो सकता। अनाकुलमय सुख सिद्ध-शुद्ध जीव को प्राप्त होता है। वीर्य शक्ति तीर्थंकर को भी तीन कल्याणक होने के बाद भी प्राप्त नहीं होती। 12वें गुणस्थान तक वीर्य शक्ति प्राप्त नहीं होती।

वस्तु याने सत्य। आत्मा परमात्मा को जानने के लिए आत्मा की जो प्रवृत्ति होती है वह है उपयोग। जब ज्ञान एक केन्द्र पर स्थिर होता है, सत्य को नोवेल थिंक को जानने के लिए जो चैतन्य शक्ति प्रवृत्त होती उसे उपयोग कहते हैं।

इसके दो भेद है (1) सकारोपयोग (2) निराकारोपयोग

वस्तु अर्थात् जिसमें अनन्त गुण-पर्याय निवास करते हैं, ज्ञेय पदार्थ याने जो ज्ञान का विषय हो। ज्ञान नहीं तो ज्ञेय नहीं व ज्ञेय नहीं तो ज्ञान नहीं। जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब पड़ता है तो कोई वस्तु उस दर्पण के सामने आती है तब उसका प्रतिबिम्ब दर्पण में पड़ता है। परमात्मा भी वस्तु है क्योंकि उनमें अनन्त गुण, पर्याय है, जीव भी वस्तु है। उपयोग लगाये बिना सामान्य रूप से भी आप वस्तु को देख भी नहीं सकते।

विज्ञान ने भी सिद्ध कर दिया है कि आपके सामने कोई इवेन्ट, दृश्य है, कोई संगीत बज रहा है परन्तु आपका उपयोग नहीं है तो ना आप देख सकते हैं न सुन सकते हैं। इसलिये समस्त ज्ञेय, समस्त ब्रह्माण्ड को जानने की जो आत्मा की प्रवृत्ति, भाव, परिणाम, दृष्टिकोण, क्रिया केवल जीव में है भले ही वो वायरस, बैक्टीरिया, सूक्ष्म निगोदिया या पंचस्थावर हो। क्रिया-प्रतिक्रिया सिद्धान्त के अनुसार इलेक्ट्रान, प्रोटोन, न्यूट्रान में क्रिया प्रतिक्रिया होती है परन्तु चेतना Conceys. रूप में नहीं होती। जैसे ज्वर आने पर ज्वर मापक यंत्र थर्मामीटर से ज्वर कितना है इसका ज्ञान होता है परन्तु क्या थर्मामीटर उस ताप, ज्वर का अनुभव करता है? नहीं अनुभव है, उपयोग है वह जीव चित्त व शरीर, ब्रेन है अजीव। वैज्ञानिक मानते हैं कि मनुष्य के ब्रेन के बराबर न कोई कम्प्यूटर है न कोई सुपर कम्प्यूटर। शरीर में ब्रेन, न्यूरोन्स है परन्तु death body में वे क्रिया करते हैं क्या? नहीं क्योंकि उस मृत शरीर में चेतना, उपयोग नहीं है। जिज्ञासा-भगवान् के पास अनन्त दर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य (शक्ति) है तो वे संसारी जीवों के दुःख दूर क्यों नहीं करते?

समाधान-प्रत्येक जीव में अनन्त शक्ति है। निगोद से लेकर गणधर तक को छद्मस्थ कहा है। तीन कल्याणक से युक्त, चार ज्ञानधारी, 64 ऋद्धि सम्पन्न, तद्भव मोक्षगामी तीर्थकर तक को छद्मस्थ कहा है। आत्मगुण घातक घाती कर्म अभी सत्ता में है। ज्ञानावरणीय कर्म से ढका हुआ Cover by ज्ञान जिनका है उन्हें कहते हैं छद्मस्थ। आत्म की अनन्त शक्तियों को घात करने वाले घाती कर्म। आप कहते हैं कोई गरीब है, अनपढ़ है तो वह पापी है। परन्तु सबसे पापी कौन? सबसे बड़ा पाप है घाती कर्म ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय, मोहनीय कर्म के कारण सम्यग्दर्शन होगा ही नहीं। आत्म दर्शन, श्रद्धान, सम्यग्ज्ञान भी नहीं होगा। सामान्य जनों की धारणा है कोई रोगी है, दुर्घटनाग्रस्त है वह पापी है। तद्भव मोक्षगामी तीर्थकर महापुरुषों पर भी उपसर्ग हुए तो क्या वे पापी थे? नहीं। प्रत्येक तीर्थकर के समय में 10-10 उपसर्ग, अन्तकृत केवली हुए हैं। उनके ऊपर घोर उपसर्ग हुआ व उपसर्ग होते होते उन्हें केवलज्ञान हुआ, कुछ मोक्ष गये कुछ स्वर्ग गये हैं। रावण, हीटलर, कंस वैभवशाली होते हुए भी दुष्ट, बलात्कारी, भ्रष्टाचारी थे तो क्या वे धार्मिक थे? नहीं।

आत्मा में अनन्त शक्ति आयी कहाँ से? अनन्तशक्ति आत्मा में अनन्तकाल से है परन्तु घाती कर्म उन्हें घात रहे हैं। घाती कर्म के नाश से केवलज्ञान होता है। जिस प्रकार बादल के विलय होने के बाद सूर्य प्रकट होता है। उस ज्ञानसूर्य के माध्यम से पूर्ण ब्रह्माण्ड स्पष्ट दिखता है। ऐसी टेलीस्कोप अभी तक नहीं बना जो समस्त त्रिकालवर्ती ज्ञेयों को उनके समस्त गुण-पर्याय, के साथ जान सके, देख सके। केवलज्ञानी धर्म अधर्मादि षट् द्रव्य, सप्त तत्व, सभी ज्ञेयों को त्रिकालवर्ती गुण-पर्याय के साथ युगपत् जानते हैं। यदि एक समय में युगपत् नहीं जानते तो अनन्त ज्ञेयों को उनकी अनन्त पर्यायों के साथ जानने के लिए अनन्त काल लगेगा। तो सर्वज्ञपना ही नहीं बनेगा। यह प्रवचनसार में कुन्दकुन्द देव ने कहा है। देखते व जानते हैं यही है भगवान्=ज्ञानवान। अध्यात्म ज्ञान से युक्त, परमईश्वर, भट्टारक। ईश्वर=विभु, भट्टारक=जो कर्मों को नष्ट करने में भट्ट अर्थात् महायोद्धा है। ज्ञानादि गुणों से जो समृद्ध है वे परम भट्टारक कहलाते हैं।

आत्मा में इतनी शक्ति है। असंख्यात प्रदेशी-आत्मा में कितनी होगी? आत्मा-परमात्मा, सर्वज्ञ भगवान् सबमें असंख्यात प्रदेश ही है। भले केवली समुद्रघात में लोकपूरण के समय आत्मप्रदेश लोकाकाश में सम्पूर्ण रूप से फैलते हो तथापि ज्ञानात्मक शरीर है वो मानलो 1 इंच वर्ग प्रमाण है। बीज गणित के अनुसार ये लोक कितना होगा? ब्रह्माण्ड, लोकालोक कितना होगा? अनन्त गुणित तथापि 1 घन इंच प्रमाण आत्मा में इतनी शक्ति है कि सम्पूर्ण ज्ञेयों को जान सकता है। अधिकतम अवगाहना 525 धनुष्य व न्यूनतम अवगाहना 7 हाथ प्रमाण उसके अनुपात से ब्रह्माण्ड अनन्त गुणा है तथापि इस ब्रह्माण्ड से अनन्त गुणा ब्रह्माण्ड हो तो भी केवलज्ञानी एक साथ जान सकते हैं। इतनी है ज्ञान शक्ति चैतन्य शक्ति परन्तु वह चैतन्य शक्ति आत्मप्रदेशों को छोड़कर बाहर नहीं जाती। जैसे की सूर्य का प्रकाश लाखों करोड़ों कि.मी. से फोटोन रूप में पृथ्वी पर आता है वैसे नहीं। परन्तु आत्मप्रदेश में रहते हुए ज्ञान रूप में समस्त लोक-अलोक को युगपत् जानता है।

जैसे मान लो किसी ने 8 बजे सूर्य को देखा, वस्तुतः उसने 8 बजे के सूर्य को नहीं देखा उसने 8 बजे से 8 मिनट कुछ सेकेंड पहले का सूर्य देखा क्योंकि सूर्य किरणों को पृथ्वी पर आने में इतना समय लगता है। उसी प्रकार गेलेक्सी से किरणे

निकलती है, वो हमारे चक्षु तक आती है उन किरणों को आने में लाखों वर्ष लगते हैं? क्यों? प्रकाश की गति प्रति सकेन्ड तीन लाख कि.मी. है। परन्तु ज्ञान शक्ति सीमातीत है। अनन्त है, भौतिक सभी शक्तियाँ सीमित है आध्यात्मिक शक्ति अनन्त है। केवलज्ञान, केवलदर्शन एक दूसरे में निवास करते है। विज्ञान केवल भौतिक ऊर्जा में ही देखता है। फोटोन, क्वॉन्टम, इलेक्ट्रॉन, प्लाज्मा या ग्रेवीटेशन फोर्स, चुम्बकीय शक्ति भी फोटोन रूप में है। निगेटिव-पॉजेटिव जो आकर्षण-विकर्षण रूप में होता है वो फोटोन के कारण होता है। विज्ञान के अनुसार हम जो वस्तु देखते है, सूर्य-चन्द्र-ग्रह-नक्षत्र-पर्यावरण-कीट-पतंग-पशु-पक्षी मनुष्य सभी से प्रकाश तरंगे निकलकर आँखों के रेटिना में पड़ती है, वहाँ से मस्तिष्क में जाती है वहाँ जो दृष्टि केन्द्र है वो सक्रिय होता है फिर हम देखते है।

इन्द्रियाँ व मन के माध्यम से मतिज्ञान होता है परन्तु केवलज्ञान इन्द्रियाँ व मनातीत है। केवलज्ञान आलम्बन रहित है ना वहाँ मन, इन्द्रिय, कोई भौतिक यंत्र आवलम्बन है। वह ज्ञान निरालम्ब, स्वतंत्र, मौलिक, उपमा रहित है आत्मा की चैतन्य ज्ञान शक्ति है। धर्मानुसार जब तक गृहीत-मिथ्यात्व, पूर्व मिथ्या धारणा रहेगी या मनोविज्ञान के अनुसार अवचेतन मन में विपरीत धारण, नकारात्मक विचार रहेंगे तब तक आप सत्य को नहीं जान सकते। मन में घर करके बैठी हुई शिक्षा संकीर्णता, धर्म, भाव, शब्द संकीर्णता को तोड़ना पड़ेगा तब परम सत्य को पा सकते है। विज्ञान में प्रगतिशीलता, उदारता अधिक है फिर भी वे कही न कही बंधे हुए है। वैज्ञानिक भौतिकता में ही अटके है उनमें अन्य गुण अच्छे है। पुरुषार्थ भी है, रुची है उसके अनुसार विकास नहीं कर पा रहे है। सामान्य लोक समझते है विज्ञान ने बहुत प्रगति कर ली परन्तु वैज्ञानिक ऐसा नहीं मानते। वे कहते है हमें अभी बहुत अधिक जानना शेष है। उनमें संकीर्णता, रूढ़िवादिता, कट्टरता नहीं सनम्रसत्यग्राहिता है। उन्होंने जितना भौतिक जगत् में कार्य किया अति प्रशंसनीय है। चैतन्य शक्ति, साकार व निराकार उपयोग का वर्णन हुआ।

1. श्यामलाल गोदावत-प्रश्न-आत्मा में अजडत्व शक्ति है। जैन धर्म के अनुसार पृथ्वीकाय-अपकाय-वायुकाय है उनमें जीव है तो इसके अतिरिक्त जीव कहाँ-कहाँ है?

समाधान-पंच स्थावर के सूक्ष्म-बादर व सचित्त-अचित्त चार भेद हुए। जैसे आम का एक पेड़ उसकी एक शाखा टुट कर सुख गई तो वह अचित्त हो गई। जब तक पेड़ से जुड़ी थी तब तक सचित्त थी। जैसे पानी को उबालने से 24 घंटे की मर्यादा हो जाती है तब वह पानी अचित्त हो गया। परन्तु 24 घंटे बाद उसमें एकेन्द्रिय से ले 2-3-4-5 इन्द्रिय जीव उत्पन्न होने लगते हैं। वैसे दूध को गर्म करने से 24 घंटे की मर्यादा होती है। उसके बाद उसमें कॅमिकल चेंज होगा वहाँ पहले एकेन्द्रिय फिर दो-तीन-चार इन्द्रिय सम्मूर्च्छन जन्म लेंगे। पश्चात् दूध यदि गाय का है तो गाय जाति के पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छन जीव उत्पन्न होंगे तब वह दूध सचित्त हो जाएगा। परन्तु प्रासुक अवस्था में अचित्त, जीव रहित है।

जगदीशचन्द्र बसु ने पेड़ के साथ-साथ धातु को भी जीव सिद्ध किया है। आधुनिक वैज्ञानिक सम्पूर्ण समुद्र को जीव मान रहे हैं। चेतना रहित शरीर, अजीव, जड़ है। बादर निगोदिया जीव मनुष्य के शरीर में होते हैं।

2 प्रश्न-उपयोग को द्रव्य, गुण या पर्याय कहेंगे? डॉ. संजय जैन

समाधान-जहाँ द्रव्य है वहाँ गुण व पर्याय होंगी ही। गुण में परिणमन होता है वह पर्याय है। उपयोग जीव का विशेष गुण है। सद् द्रव्य लक्षणम्।

द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः। परस्परपग्रहो जीवाणाम्, द्रव्याणाम्, गुणानाम्। द्रव्य के आश्रय से गुण रहते हैं। गुण, शक्ति कहाँ है? द्रव्य में। अतः द्रव्य में गुण अव्यय रूप से हैं। अशुद्ध द्रव्य में व्यंजन पर्याय है व शुद्ध द्रव्य में अर्थ पर्याय होती है। उपयोग कथंचित् द्रव्य है, गुण भी है व पर्याय है। सापेक्ष दृष्टि से उपयोग तीनों है। जैन दर्शन का प्राण अनेकान्त है। सापेक्ष सिद्धान्त से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य भी द्रव्य की पर्याय है।

3 प्रश्न-पानी उबालने पर मर्यादा 24 घंटे है। क्या उस जल को छानकर गरम कर प्रयोग कर सकते हैं।

2. ब्रह्माण्ड में गुरुदेव लोक-अलोक, लोकाकाश या तीन लोक लेंगे? ग.अ. आस्थ श्री

1. मर्यादा के बाद पानी पॉयज़न हो जायेगा। पुनः उबालने से उसमें कॅमिकल चेंज होता है। स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक होगा व आगम में भी निषेध है।

2. ब्रह्माण्ड में लोक-अलोक सभी आयेगा। जैन धर्म के अनुसार तीनों लोक (343 घन राजू) आयेगे।

आत्मा की 47 शक्तियाँ

(प्रवचन-3)

दिनांक-13/02/2021

ॐ नमः सिद्धेभ्यः। ॐ नमः सिद्धेभ्यः। ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

सर्वज्ञ भगवान् आत्मा की शक्तियों का अनुभव करते हैं परन्तु भगवान् भी अनन्त शक्तियों का शब्दों में वर्णन नहीं कर सकते क्योंकि शब्द वर्गणाओं में अनन्त शक्ति नहीं है। सर्वज्ञ भगवान् दिव्यध्वनि के माध्यम से जो अभिव्यक्ति करते हैं उसका अनन्तवाँ एक भाग गणधर समझते हैं क्योंकि उनमें असंख्यात ज्ञान हैं। परन्तु श्रद्धा-प्रज्ञा से एक सम्यक् दृष्टि भले वो नारकी हो, पशु हो या मनुष्य हो उन अनन्त शक्तियों का श्रद्धामय ज्ञान कर सकता है, अनुभव कर सकता है। परन्तु शक्तियों की जो व्यापकता है वो छद्मस्थ 12वाँ गुणस्थान तक स्वयं तीर्थंकर जो कुछ क्षणों में सर्वज्ञ बनेंगे वो भी नहीं जान सकते हैं। ऐसे में वैज्ञानिक, दर्शनिक कैसे जान सकते हैं? केवल कल्पना कर सकते हैं या श्रद्धा कर सकते हैं। विशेष करके अलौकिक गणित से जान सकते हैं या माप सकते हैं।

अनाकुलत्वलक्षणा सुखशक्तिः॥ (5)

अनाकुलता जिसका लक्षण या स्वरूप है वह है सुखशक्ति।

मौलिक रूप से सुख शब्द का प्रयोग धार्मिक लोक कम करते हैं। यही परम विज्ञान, तत्त्व, गणित व राजनीति में जो आध्यात्मिक सुख है वह पद दलित है इसलिये आपलोक जो आत्मा की शक्तियों के बारे में सुन रहे हैं मुझे आनन्द आ रहा है। क्योंकि आत्मा के बारे में रुचि से सुनना सामान्य उपलब्धि नहीं है। अनादि काल से अनन्तानन्त भव ले लिये, पढ़ लिया, सीखा परन्तु स्व के लिये नहीं इसलिए बोधी दुर्लभ है। आत्मसम्बोधी दुर्लभ बोधि। दुर्लभ से दुर्लभ आत्मसम्बोधि। शक्ति शब्द का भी धर्म में कम प्रयोग होता है व सुख शब्द भी उपेक्षित है। धर्म मनोविज्ञान से भी श्रेष्ठ है यह मैंने (कनकनन्दी) अनुसंधानात्मक गणितीय पद्धति से जाना, माना है।

सुनो सबकी करो मन की यदि मनमानी ही करनी है तो फिर दिव्यध्वनि गणधर से लेकर सब क्यों सुनते है?

मन इतना शक्तिशाली है तो आत्मा कितना शक्तिशाली होगा? मन आत्मा का दासानुदास है। जैसे सुख की लोलुपता से मन इतना भ्रष्ट हो जाता है तो सुख कितना महान् होगा? जिसे प्राप्त करने के लिये प्रत्येक जीव लालायित है। एकेन्द्रिय से ले पंचेन्द्रिय तक किसी भी तरह से सुख प्राप्त करना चाहते है। भले अभव्य हो, म्लेच्छ हो, पापी हो, नीच हो, स्थावर हो या त्रस। आत्महत्या भी जीव सुख के लिये करता है। सुख क्या है? सुख कहाँ है? उसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है?

वैज्ञानिक लोग गॅलेक्सी जानने के लिये क्या क्या कर रहे है। परन्तु इससे स्व सुख को नहीं जान सकते न मान सकते है? अनाकुलता अर्थात् जहाँ आकुलता-व्याकुलता, संकल्प-विकल्प, संक्लेश, बंध-कषाय नहीं वह सुख शक्ति। मोही जीव भले एकेन्द्रिय हो या मनुष्य, देव यह नहीं जानते न मानते की मेरा सुख कहाँ है? सामान्य साधु-संत व पंडित लोग बोलते है कि कस्तुरी मृग के नाभि में कस्तुरी होती है परन्तु वह बाहर ढूँढ़ता हुआ दौड़ता है यह उदाहरण बच्चों के लिये है। भ्रमित है, धार्मिक लोग भी भ्रमित है आत्मा का खातमा हो गया है।

तन-मन-धन-सम्पत्ति को स्व परिचय मानते है।

स्वरूपनिवर्तनासामर्थ्यरूपा वीर्यशक्ति।। (6)

आत्मस्वरूप रचना की सामर्थ्यरूप वीर्यशक्ति।

उच्च विज्ञान में जो ऊर्जा का ही अभी वर्णन है इसलिये वैज्ञानिक इसे जल्दी समझते है। न्यूटन व गेलिलियो को ऊर्जा का यह सिद्धान्त ज्ञात नहीं था इसलिये वे इसे समझ नहीं सकते थे। कथनचित् अधिकांश प्रत्येक धर्म के साधु संत, आचार्य से भी आधुनिक वैज्ञानिक ऊर्जा सिद्धान्त को बहुत जानते है। पहले न्यूटन केवल ग्रेवीटेशन फोर्स को मानते थे जो कि बहुत हल्की शक्ति है। अभी उससे आगे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड, अणु से ले स्कन्ध, गेलेक्सी, शरीर की संरचना, व सबको क्रियान्वयन करने वाली शक्ति है। विज्ञान में केवल मुख्य 4 शक्तियों का वर्णन है। उनमें जो एटम को एटम से बाँधता है, गेलेक्सी, शरीर व भौतिक तत्वों को बाँध के रखता है वो इलेक्ट्रानिक मैग्नेटिक शक्ति Power है।

इससे भी Power Full आत्मा में जो अनन्त शक्तियों को, अनन्त गुण व पर्यायों को कौन बाँध के रखता है वह स्वरूप निर्वर्तना वीर्य शक्ति।

जो स्वरूप की निर्वर्तना, संरचना केवल भौतिक संरचना नहीं है उससे आगे जो स्वरूप धर्म-अधर्म, आकाश-काल से लेकर के शुद्ध-आत्मा की जो निर्वर्तना है उसकी सामर्थ्य रूपा वीर्य शक्ति। अभी वर्तमान विज्ञान में ऊर्जा सिद्धान्त ही है। पूरा ब्रह्माण्ड ऊर्जामय है। इसको Strem thoery कहते हैं। जो अति कठिन है, जिसे अभी तक वैज्ञानिक भी सिद्ध नहीं कर पाये हैं। Strem thoery जो समस्त ब्रह्माण्ड ऊर्जा, प्रकाश ऊर्जा, समस्त गेलेक्सी ऊर्जा, सूर्य-चन्द्र ऊर्जा, तुम भी ऊर्जा का पिंड हो। परन्तु ये सब भौतिक ऊर्जा है। परन्तु आध्यात्मिक ऊर्जा, अमूर्तिक ऊर्जा को वैज्ञानिक नहीं जान पाये हैं। जानने का प्रयास कर रहे हैं। ये वीर्य का स्वरूप निर्वर्तन है।

उच्चतम वैज्ञानिक बौद्धिक रूप में, ज्ञान रूप व गणित रूप में ऊर्जा सिद्धान्त को देखते हैं। जैसे एक सम्यक् दृष्टि आत्मा को अमूर्तिक शक्ति रूप में श्रद्धान करता है परन्तु पूर्णतः नहीं जान पाता है। ऐसे ही आधुनिक विज्ञान पूरे ब्रह्माण्ड को ऊर्जा मानते हैं। भले ही Big Bang Theory सही नहीं है, मैं भी नहीं मानता हूँ। उसमें भी यही ऊर्जा सिद्धान्त काम करता है परन्तु वैज्ञानिक अभी सिद्ध नहीं कर पाये हैं। ये एटम से भी अधिक संग्रही था वो अभी कल्पनातीत घनी भूत ऊर्जा का एक युनिट है जिससे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड बना है। तो ऐसे पुद्गल में इतनी शक्ति है, पुद्गल का एक छोटा सा एटम से विश्व उत्पन्न हुआ तो आत्मा में कितनी शक्ति होगी, मेरे अन्दर कितनी शक्ति होगी, यह उपमा गणित है। तुलनात्मक Study करो।

ऐसे जो अनन्त गुण-पर्यायात्मक आत्मा है वह अनादि काल से 84 लाख योनियों में और अनन्त काल तक संसार में रहे या मुक्त अवस्था में, तो वह कैसे उपस्थित, उसका अस्तित्व रहता है? कैसे नाश नहीं होता है? कैसे उसके गुण बिखर कर ब्रह्माण्ड में विलिन नहीं है? वैज्ञानिक मानते हैं कि ये सब में फोर्स काम करता है। Strong force से weak force कैसे काम करते हैं। Electronic Magnet force जैसे काम करते हैं फिर वैज्ञानिकों से पूछता हूँ कि आत्मा में, अमूर्तिक द्रव्य में क्यों नहीं हो सकता? आप लोग केवल जड में या एटम में ही

खोज रहे हो जबकि उससे अनन्त गुणा शक्तिशाली जीव है, आत्मा है। तुम स्वयं हो। धर्म-अधर्म, आकाश-काल द्रव्य नहीं हो। तुमने मात्र विस्फोट से जन्म ले लिया। आकाश-काल या जीव श्रेष्ठ हो गया ऐसा नहीं। वैज्ञानिक यहाँ तक बोलते हैं कि हम ऐसे एटम का Compound है जो सोचते हैं अर्थात् जीव एटम का संघ है जो सोचता है यही वैज्ञानिकों की कमी है।

विज्ञान में 4 फोर्स काम कर रहे हैं उनसे भी अधिक फोर्स, energy आध्यात्मिक energy वीर्य शक्ति आत्मा में है। जो शक्ति छह द्रव्यों में आत्म द्रव्यों का जो स्व-स्वरूप निर्वर्तना, जो संरचना है उस सामर्थ्य रूप वीर्य शक्ति है। पूरा विज्ञान केवल ऊर्जा सिद्धान्त पर आधारित है। वैज्ञानिक आइन्स्टीन के बाद अभी तक ऊर्जा सिद्धान्त पर ही काम चल रहा है। जिस प्रकार एटम या Quantam में Big bang के कारण इतनी ऊर्जा उत्पन्न हुई कि जिससे 2 बिलियन गैलेक्सियाँ व इससे हजार गुणा Stars उत्पन्न हुये। उससे भी अधिक भौतिक तत्व बने हैं। उससे भी अधिक शक्ति आत्मा में है। इसलिये आत्मा अजर, अमर, शाश्वतिक है उसे कोई भी शक्ति नष्ट नहीं कर सकती।

भले ही धार्मिक लोग कह देते हैं, उपनिषद् व गीता में भी बोलते हैं आत्मा नष्ट नहीं होता परन्तु उसका वैज्ञानिक कारण क्या है? वो मैं बता रहा हूँ। छहों द्रव्य शाश्वत है अनादि अनन्त है। अनन्तानन्त जीव नरक निगोद में इतना कष्ट सहन करते हैं, छेदन-भेदन-भक्षक होने के बाद भी आत्मा का एक प्रदेश भी नष्ट नहीं होता ये है वीर्य शक्ति।

अखंडितप्रतापस्वातंत्र्यशालित्वलक्षणा प्रभुत्व-शक्तिः॥ (7)

जिसका प्रताप अखण्डित है अर्थात् किसी से खण्डित की नहीं जा सकती ऐसे स्वातंत्र्य से (स्वाधीनता से) शोभायमानपना जिसका लक्षण है ऐसी प्रभुत्वशक्ति।

सर्वभावव्यापकैकभावरूपा विभुत्व शक्तिः॥ (8)

सर्व भावों में व्यापक ऐसे एक भाव रूप विभुत्वशक्ति।

सर्व सामान्य लोक समझते हैं कि प्रभुत्व केवल राजा-महाराजा, कम्पनी के मालिक, जज के पास है। चक्रवर्ती के पास जो शक्ति है वह एक जज चोर, पापी, दुष्ट अपराधी के पास भी है। एक निगोदिया में भी वह शक्ति है। सव्वे सुद्धाह

शुद्धगुण से भले पर्याय दृष्टि से, विभाव रूप में कोई राजा, रंक, मंत्री, दास, मालिक हो परन्तु शक्ति रूप में, द्रव्यदृष्टि से प्रत्येक जीव में प्रभुत्वशक्ति है। अखण्डित प्रताप-प्रभुत्व-शक्ति को कोई खण्डित नहीं कर सकता है। स्वातन्त्र-शालिनी-जो हर द्रव्य को मौलिक Independent बनाती है इसलिए आध्यात्मिक दृष्टि से चक्रवर्ती और एक सामान्य नागरिक, एक जज, एक अपराधी, सिद्ध भगवान् एक निगोदिया में प्रभुत्व शक्ति रूप में कोई अन्तर नहीं है। सब जीव द्रव्य हैं, ये है परम स्वातन्त्रता, मौलिकता, साम्यवाद, वस्तु स्वरूप और सर्वभाव व्यापक एक भाव रूपी विभुत्व शक्ति।

सर्व भाव में जो अनन्त गुण व पर्याय है उनको व्यापक रूप में ये सब शक्तियाँ प्रत्येक आत्मा के अनन्तानन्त गुण पर्यायों को बाँधकर के संजोकर, सम्यक् रूप में इसका प्रतिपादन, सम्पादन ये शक्तियाँ करती है। ये उच्चतम विज्ञान पढ़ने वालों को अति सरलता से समझ में आयेगा या श्रद्धा से। गणित, कानून-रीति-रिवाज रूढी से नहीं समझ में आयेगा। कथनचित् विपरीत मानेंगे। धर्म में शक्ति की क्या आवश्यकता है? सुख की क्या आवश्यकता है? सुख त्याग करना ही तो धर्म है। चक्रवर्ती ने भी तो राज्य त्याग किया। रस त्याग करना, उपवास करना, कठोर साधना करते है। सुख की आवश्यकता क्या है? रूढीवादी धार्मिक अत्यन्त विपरीत सोचते है। वीर्य की क्या आवश्यकता है। अरे! बिना शारीरिक व बौद्धिक शक्ति भी मन की शक्ति संवेदना में नहीं व बौद्धिक शक्ति भी मन की शक्ति संवेदना भी नहीं। श्रेणी (क्षपक, उपशम) आरोहण कौन करेगा? एकाग्र चिन्ता निरोध ध्यान कौन करेगा? वज्रवृषभनाराच संहनन वाला। अरे! ये प्रभुत्व, चक्रवर्ती ने भी षट्खण्ड का राज्य-शासन छोड़ा तब साधु बने। फिर धर्म में प्रभुत्व की क्या आवश्यकता है?

जहाँ प्रभुत्व है वहाँ दासत्व भी है। मालिक मजदूर भी है। पहले दासप्रथा थी परन्तु अब्राहमलिनकन के प्रयत्न से दास प्रथा का लोप हुआ। कानूनन दास प्रथा का लोप हुआ। हमारे भारत में राजा-राममोहन राय के कारण दास प्रथा बंद हुई। हमारे तीर्थकरों ने भी यह कहा व विरोध किया। ये विकार, विभाव, कर्मज है शुद्ध भाव नहीं है। शुद्धभाव की दृष्टि से चक्रवर्ती व झाड़ू लगाने वाले कर्मचारी में कोई अन्तर नहीं है। ये ही आध्यात्मिक है। इसलिये जो आध्यात्मिक भाव सम्पन्न जीव होते हैं वे

परम उदार परम साम्यभावी होते है। वे पक्षपात नहीं करते, वे आकर्षण, विकर्षण से रहित, प्रलोभनों से दूर रहते है। इनका वर्णन प्रवचनसार, पंचास्तिकाय में मैंने साधुओं को बहुत पढ़ाया है। साधु-संत की प्रवृत्ति व उनकी भावनाओं को सामान्य जन विपरीत समझते है। महापुरुषों को मारा, पीटा गया, जलाया गया। भले तीर्थंकर हो, सुकरात, मीराबाई हो या ईसा-मसीह, जैन साधु भी हो उनकी दृष्टि में ये सब नहीं होता है। जैसे उच्चतम विज्ञान में सोना-चाँदी, हीरा-पत्थर में कोई अंतर नहीं होता। क्योंकि विज्ञान में केवल ऊर्जा Quantam, Atom देखते है।

आध्यात्मिक समवशरण में पशु-पक्षी सभी रहते है। परन्तु समाज में साधु संतों के उपर उपसर्ग करते उन्हें असामाजिक तत्व माना जाता है परन्तु संत जानते है कि मैं विश्व का प्रभु हूँ; विभु हूँ व संसार का प्रत्येक जीव प्रभू-विभू है।

आध्यात्मिक पुरुषों का असामाजिक भाव व्यवहार होता है। मनोविज्ञान के अनुसार एक पगले होते है मानसिक रूप से व एक असामाजिक संतों को पागल समझते है। सही तो अन्य मनुष्य होते है। Social Animal, सामाजिक पशु होते है। डार्विन के अनुसार राजा-महाराजा, सेठ-साहुकार, जज-अपराधी सब सामाजिक पशु है। Man is a social Animal. परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि Man is a not only man But all living is well ये आध्यात्मिक सर्वोच्च है। इसलिये भारत चार-चार प्रकार की बेडियों से बंधा था। विदेशियों के कारण, शक, हूण, पठान, मुसलमान आक्रांताओं के कारण देश गुलाम रहा। परन्तु आध्यात्मिक के कारण भारत तब भी विश्व गुरु रहा व सब विश्व नतमस्तक होता था।

प्रभुत्व शक्ति प्रत्येक जीव, पेड़-पौधे, पशु व निगोदिया में भी है। हिन्दु-धर्म में रत्नाकर डाकू था, बौद्ध धर्म में अंगुलीमाल डाकू था जो दूसरे की हत्याकर उनकी अंगुलियों को गले में पहनता था। इसी प्रकार जैन धर्म में अंजन चोर, विद्युत चोर व स्वयं श्रेणिक चांडाल से भी अधिक क्रूर था। बौद्ध धर्म के अनुसार स्वयं अशोक-चांडाल था परन्तु बाद में देवानाम प्रिय “प्रियदर्शिनी अशोक” बन गया। यही आध्यात्मिक प्रभुत्व शक्ति आत्मा को परमात्मा बनाती है। यह आध्यात्मिक शक्ति, गुण पूरे विश्व में शासन करता है। सार्वभौमिक, निराबाध साम्य शासन है। अलेक्जेंडर के समाने साधु संत झूके नहीं। क्या संत घमंडी होते है? क्या अन्य से ईर्ष्या, घृणा

करते है? संत जानते है की ये विकारी है। ये राग-द्वेष-काम-क्रोध-सत्ता-सम्पत्ति के दास है। मोह महापद पीयो अनादि भूल आपको भरमत वादी। भूल आपको भरमत वादी नहीं जाना न आपको भरमत वादी ऐसा मैं मानता हूँ। संसार को उन्मत्तवत् पागल जैसा माना है, साधु संतों को पागल मानते है क्योंकि पर को अपना मानते है विभाव को स्वभाव मानते है। स्वयं पर अनुशासन नहीं रखते है। स्वयं के प्रभुत्व-विभुत्व को न जानते है न मानते है न विकास करते है। स्व की प्रभुत्व शक्ति को नष्ट-भ्रष्ट करके दूसरों को कष्ट देते है। आध्यात्मिक संत न अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करते न किसी से घृणा करते है। न किसी से डरते है न अन्य को डराते है। न किसी के दास बनते है। ये है आध्यात्मिक प्रभुत्व शक्ति।

What is the my nature! and what is my am! and what is my king? वैज्ञानिक अभी तक नहीं जानते कि हमारी उत्पत्ति कहाँ हुई? क्यों हुई? Present now नहीं जानते जीव कब से है? कहाँ से आया है? जीव की उपस्थिति का कारण क्या है? वैज्ञानिक Amino Acid या D.N.A., R.N.A तक जाते है आगे ऑक्सीजन, कार्बन तक। परन्तु अभी नवीन शोध से ज्ञात हुआ है की जैसे पहले वैज्ञानिक मानते थे कि जीवन के लिये सूर्य किरण व ऑक्सीजन अनिवार्य है परन्तु अभी अनिवार्य नहीं। बिना ऑक्सीजन, सूर्य किरण, जल के जीव रहता है। वैज्ञानिक मानते है कि ज्वालामुखी में, समुद्र के नीचे जीव उत्पन्न हुये है। जहाँ विशाल जीव तत्व है। पत्थरों को खाकर भी जीव रहते है। कई ऐसे बैक्टेरिया है जो 25 करोड़ वर्षों से चरम उष्ण तापमाप व चरम शीत वातावरण में जीवित रहते है। विज्ञान धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा है। वैज्ञानिक आश्चर्य कर रहे कि ये कैसे संभव है?

पूर्व में हमने अरबों खरबों डॉलर खर्च कर जो शोध किये वो शोध, सिद्धान्त नये शोध से फेल हो गये। कैसे छोटे क्षुद्र जीव ने बड़े-बड़े वैज्ञानिकों को फेल कर दिया। जीव कैसे Poison खाकर, पत्थर खाकर जीवित रहते है। पहले वैज्ञानिक मानते थे कि जहाँ सूर्य किरण नहीं है वहाँ जीव नहीं हो सकते है। घोर अंधकार में, समुद्र के नीचे 7-8 मील पानी के नीचे भी जीव उत्पन्न होते है। डार्विन का सिद्धान्त अधिक गलत थोड़ा सही है। सभी Thoery फेल हो गयी है।

सुख शान्ति में सुख शब्द से सामान्य जन चिढ़ते है। धार्मिक रूढ़िवादी बाह्य

में कुछ क्रियाकाण्ड कर समझते हैं हम धार्मिक हो गये। साधु को भी पलायनवादी, भीखारी, कायर, नालायक समझते हैं। उन्हें ये तो सोचना चाहिये कि शांति-कुंथु-अरहनाथ तीन-तीन पद के धारी थे, बौद्ध धर्म में महात्मा बुद्ध ने, हिन्दु धर्म में बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं ने राज्यपद क्यों त्याग दिया। सुख होने पर भी उसे क्यों त्यागा? इतना तो सोचना चाहिये कि इससे भी बड़ा कोई सुख है जिसे प्राप्त करने के लिये उन्होंने राजपाट त्यागा था। ये है प्रभुत्व, विभुत्व व वीर्य शक्ति की विकृति। बाह्य तप-त्याग क्रियाकाण्ड किस लिये। इन शक्तियों को प्राप्त करने के लिये सर्व शक्तिमान, तीन लोक का प्रभु-विभु, तीन लोक का अधिकारी बनने लिए है करता हूँ।

जैसे भीख मांगने भीखारी आता है तो दीन शब्द बोलता है। दीनता के ग्राहकता के शब्द नहीं बोलेगा तो कोई उसे भीख नहीं देगा। भले कुछ भीखारियों के पास लाखों रुपये होते हैं परन्तु वे दीनता के वचन ही बोलते हैं तभी पैसा मिलता है। इसी प्रकार धर्म में भी यदि हम दीनता की भाषा नहीं बोलेंगे तो कोई हमें घमण्डी मान लेंगे, आहार नहीं देंगे हमारी सेवा वैयावृत्ति नहीं करेंगे, हमारा बहिष्कार कर देंगे।

जो घाति कर्म के नाश से अनन्तवीर्य प्रकट होता है। तत् भव मोक्षगामी तीर्थंकर चार ज्ञान धारी को 12 वाँ गुणस्थान तक अनन्तवीर्य प्रकट नहीं होता। वहाँ असंख्यात ऋद्धियाँ व असंख्यात शक्ति है। चक्रवर्ती व इन्द्र की भी शक्ति गणित में असंख्यात ही है। जैसे विज्ञान के अनुसार सोना-चाँदी-हीरा-मोती, पत्थर इनमें कोई ज्यादा शक्ति नहीं है। हीरा भी ज्यादा घनीभूत, शक्तिशाली व मूल्यवान नहीं है उसी प्रकार आध्यात्मिक धर्म में आत्म शक्ति, आत्मोपलब्धि, आत्मगुणों का ज्ञान-भान व उनको पाने के लिए धर्म करना है। भले वो सन्यास धर्म हो या गृहस्थ धर्म हो या चारों आश्रम के धर्म हो। चारों आश्रम का मुख्य लक्षण आत्मोपलब्धि है। भले गृहस्थ की गति अभी मंद है, क्योंकि कर्म सत्ता के कारण अभी आत्मशक्ति प्रकट नहीं कर पाते हैं। एक सामान्य व्यक्ति संयम धारण करता है तब चक्रवर्ती से भी अधिक आध्यात्मिक बल साधु में होता है। जब मासु जितना खण्डित होता जाता है अणु की ओर बढ़ता है उतनी उसकी शक्ति बढ़ती है। उसी प्रकार ही जब आत्मा से विभाव भाव के बंधन दूर होंगे तब अनन्तवीर्य रूप आत्म शक्ति प्रकट होगी। इसलिये वो सुख वो वीर्य अतिन्द्रिय है और सुख-वीर्य गुणों को इन्द्रियाँ व कोई यंत्र नहीं पकड़

पाता है। मन भी उसको पूरा ग्रहण नहीं कर पाता है यह मनातीत है। मन की शक्ति अति कम है भले विज्ञान मन शक्ति को ज्यादा मानते है Brain power. क्योंकि अनन्तशक्तियों का ज्ञान-भान नहीं। केवल Brain power को ज्यादा महत्व देते है। परन्तु अभी परिवर्तन हो रहा है।

अतिन्द्रिय सो गाण सो सुख तब जाकर जो प्रकट होता है वह आध्यात्मिक सुख, स्व सुख, परमात्मा, ईश्वर का परमसुख हैं। च परिणमति स्वयं जीवात्मा, संसारी आत्मा ही परमात्मा रूप में परिणमन करता है।

सो खम्मा गुण दुःखम्-जो आध्यात्मिक सुख है वीर्य, गुण है परमात्मा का अनन्त सुख है। केवली भगवान् के भी असाता कर्म का उदय होता है तथापि केवली भगवान् को इन्द्रिय जनित दुःख नहीं होता है। विदेह इसलिये हिन्दु धर्म में विदेही अवस्था, शरीर सहित भी आत्मा का श्रद्धान व जैन धर्म के अनुसार सयोग केवली 13 गुणस्थानवर्ती अर्थात् अरहंत भगवान्। तम्म अतिन्द्रिय...ये जो वर्णन है अतिन्द्रिय है ना किसी इन्द्रिय ना मन से या किसी यंत्र से इसका परिक्षण नहीं कर सकते है। जो सुख बाह्य निमित्त पर अवलम्बित है या गुड हॉर्मोन्स का स्राव होने से सुख मानते है। एक ड्रॉप में अनन्तानन्त एटमस् है। आप पानी पीते हो, भोजन करते हो उससे जो सुख मिलता है वह इन्द्रिय सुख है अतिन्द्रिय सुख नहीं। वैज्ञानिक मानने लगे कि हमारी क्षमता, आइक्यू, हमारे यंत्रों की क्षमता उतनी नहीं की हम परम सत्य को जान सके।

ये आध्यात्मिक सुख की परिभाषा है। अनुपमम् भगवान् या आत्मा का सुख, तुम्हारा-मेरा जो स्वाभाविक सुख है वो अनुपमेय, उपमातीत है। तुलनातीत=राजा-महाराजा चक्रवर्ती से भी तुलना संभव नहीं। तत् सुखस्य अधिक अभावात्। आध्यात्मिक सुख से अधिक कोई सुख नहीं इसलिये अनुपम है। छद्मस्थ ज्ञान अमेयं= Measurement इस का शुद्ध व्यापक अर्थ है मान/माप। जो गुण-ज्ञान-ब्रह्माण्ड सबका माप करे उसे मान कहते है। विश्व में छद्मस्थ के पास ऐसा कोई माप नहीं जो इस सुख, शक्ति गुण का माप कर सके। इसलिये अमेय हैं।

तुम्हारी शक्ति को दीन-हीन-क्षीण, दुर्बल करके अपव्यय करके माप किया जा सकता है। तुम मनुष्य, सेठ, राजा, student हो अर्थात् तुमको नीचा बना रहे है या

तुमको कोई अरबपति मान रहा है तो वह आपका अपमान कर रहा है। अरे! तुम तीन लोक के स्वामी हो। राजा-महाराजा क्या है? ये क्या अनाज उत्पन्न करते है? कोई श्रम करते है? परोपजीवी है आध्यात्मिक दृष्टि से, बन्धन है, पाप है, परिग्रह है। अलोक गणित के बिना कुछ नहीं समझ सकते हो। तुम्हारा माप कोई नहीं कर सकता। हा! तुम त्रिलोकीनाथ, तीन लोक के प्रभु-विभु हो यह सही है। स्वयं अवमूल्यन किया ऐसा ज्ञान-भान होना ही सम्यग्दर्शन है। यही सम्यग्ज्ञान, ध्यान व आत्म गौरव है।

भारत के लोग आत्म गौरव को घमंड मानते है। व अहंकार, घमंड के लिये पूजा-पाठ, पंचकल्याणक, उपवास केशलौच करते है। इस तरह स्वयं का अपमान करते हो। मैं धनी हूँ, मैं पढ़ा लिखा हूँ यह स्व मूल्यांकन नहीं घमंड है। तुम्हारा प्रभुत्व-विभुत्व, प्रशंसा नहीं ये तुम्हारा अपमान है। अप=कम करना। मान=मापना। कम करके मापना अर्थात् अपमान। जब तुम्हारा पैमाना अनन्त में होगा तो वह तुम्हारा मान। कोई तुम्हें चक्रवर्ती कहेगा तो भी तुम्हारा अपमान है।

जिनधर्म विनिर्मुक्तो मा भूवं चक्रवर्त्यपि।

स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि जिन धर्मानुवासितः॥ (11) सं.दं.पाठ

यही आध्यात्मिकता है। ऐसा गौरव तुम्हारे अन्दर जागृत होगा तब जानना की मैं सम्यग्दृष्टि हूँ अन्यथा मिथ्यादृष्टि हो। विज्ञान के अनुसार मुख्य दो ग्रंथियाँ है। एक हीन ग्रंथी दूसरी अहं ग्रंथी। इनसे अन्य ग्रंथियाँ बनती है। स्वयं को जब अन्य से हीन मानोगे कि मैं अन्य से छोटा हूँ, दूसरे मेरे से आगे है, सुखी-समृद्ध प्रसिद्ध है तो आप में हीन भावना है। और इस हीनभावना के कारण ही मन में अहं भाव आता है। जहाँ संघर्ष, संक्लेश है। वहाँ आत्मानन्द कहाँ? खारा पानी पीने से प्यास लगेगी व जल्दी मर जाओगे। बिना पानी के जीव 8-10 दिन दिन जीवित रह सकता है परन्तु खारा पानी पीने 1-2 घंटे में मर जाओगे। डीहाइड्रेशन होगा।

ये है आत्मा की शक्तियाँ/आत्म वैभव जिसका माप छद्मस्थ ज्ञान में, गणधर के असंख्यात ज्ञान में नहीं हो सकता। ऐसे अनुपम, अमेय गुण, धर्म, शक्ति, वैभव प्रभुत्व-विभुत्व आप में, मुझमें, सब में है। मैं जब तक, गणित में नहीं बोलूँगा तब तक वो सिद्धान्त नहीं। वो परिकल्पना है। जब आप स्वयं में अनुभव करोगे तब

दीन-हीन-कायरता, भीखारीपना, अहंकार, ईर्ष्या-द्वेष-घृणा शुद्रता से परे हो जाओगे तब तुम्हारा ज्ञान सम्यक् ज्ञान होगा। सम्यक्ज्ञान किसे कहते हैं? प्रतिपक्ष भुतस्य दुःखस्य अभावात् अक्षय ये जो तुम्हारे अन्दर गुण, शक्ति है वो पूरे पृथ्वी में, पूरे विश्व में नहीं है तुम्हारा कोई प्रतिपक्षी नहीं है। तुम स्वतंत्र, मौलिक हो। इसलिये सिद्ध की तुलना सिद्ध के साथ, अणु की तुलना अणु के साथ, तुम्हारी तुलना तुम्हारे स्वयं के साथ या सिद्धों के साथ होंगी। तुम अगर तुम्हारी तुलना अन्य के साथ करते हो तो मनोविज्ञान के अनुसार विश्व में जितनी प्रतिस्पर्द्धा है, दूसरों को नीचा दिखाना, उनसे ईर्ष्या-द्वेष-घृणा करना, धर्म में हो या राजनीति में अन्यक्षेत्रों में सब मनोविकार है। लेनिन, कालमाक्स का साम्यवाद सभी कामचलाऊ है।

रागादिमल भाव (अवलम्बन) सुख में, आनन्द में किसी प्रकार का मल नहीं है। निर्मल व पवित्र है।

रोग अभावात् अरूज किसी प्रकार शारीरिक, मानसिक आधि-व्याधि-उपाधि में ऐसे कोई भव से जीव को परिभाषित नहीं कर सकता है भले वायरस, बैक्टीरिया या परग्रही हो ये शुद्ध आत्मा नहीं है। सामान्य लोक जड़ वस्तु अर्थात् सोना-चाँदी-ईंट पत्थर, हवा पानी को जड़ नहीं मानते। ईंट पत्थर जो रास्ते में पड़े है उसको ही जड़ मानते है। विज्ञान के अनुसार एटम से ले स्ट्रींग व D.N.A., R.N.A व Brain भी जड़ है। एकान्तस्य दुःख जैसे कोई दुःखी है अर्थात् प्यासा है पानी पीता है तो कुछ सुख अनुभव करता है, भूखा है जब भोजन करता है तो सुख अनुभव करता है। ये सुख नहीं ये परावलम्बिता है। इससे परे जो अनन्तसुख है वह अतिन्द्रिय सुख है।

धर्म सर्व सुखाकरो हित करो, धर्म बुधाश्चिन्वते।

धर्मणैव समाप्यते शिव-सुखं धर्माय तस्मै नमः॥

धर्मान् नास्त्य परः सुहृद्-भव भृतां धर्मस्य मूलं दया,

धर्मे चित्तं महं दधे प्रतिदिनं हे धर्म! मां पालय॥ (7) वीर भक्ति

एक प्रकार से धर्म में भी विकार है ये मौलिकता नहीं है। क्योंकि शुद्ध स्वभाव का, आत्मस्वभाव का श्रद्धान ज्ञान नहीं। केवल रूढ़िवादिता, पंथ-मतवाद, कट्टरता-संकीर्णता, ख्याति-पूजा-लाभ-प्रसिद्धि, मनमानी, शोषण ये कौनसा धर्म

है? इस प्रकार के आत्म धर्म, शक्ति को जागृत करने के लिये यदि तप-त्याग, स्वाध्याय, प्रवचन, वेबिनार इत्यादि कुछ भी करो वो सब भी धर्म नहीं व्यापार है, शोषण, दगाबाजी है, वो भी पर मनोरंजन है। इन विकारों से परे आत्मशक्तियाँ हैं। सुरेन्द्रिसिंह पोखरणा की जिज्ञासा के समाधान में आत्म शक्तियों का प्रतिपादन किया हूँ।

जिज्ञासा-प्रो. श्यामलाल जी गोदावत

वीर्य शक्ति में स्व-स्वरूप रचने की शक्ति हैं और इसी प्रकार विभुत्व शक्ति में सर्व भावों में व्यापक शक्ति है तो ये दोनों शक्तियाँ बतायी व अगुरुलघु गुण में भी यही बात बतायी कि अगुरुलघु शक्ति आत्मा के गुणों को बिखरने नहीं देती, आत्मा में गुणों को बनाये रखती है तो इन 2 शक्तियों में क्या अन्तर है?

समाधान-गुरुदेव से कुछ पर्यायवाची शब्द होते हैं, उनमें भी कुछ अन्तर भेद होते हैं। अगुरुलघु गुण है वो भी आत्मा की शक्ति ही है क्योंकि गुण-पर्याय द्रव्य के साथ ही रहते हैं। अगुरुलघु गुण एक द्रव्य को अन्य द्रव्य से मौलिक रखने के लिये कार्य करता है। द्रव्य में जो अनन्तानंत गुण हैं उन्हें बिखरने नहीं देता। वह गुण सार्वभौम छहों द्रव्यों में है। और यहाँ जो शक्ति है ये मुख्य करके इनमें गर्भित है क्योंकि द्रव्याऽश्रया निर्गुणाःगुणाः।

अनेकान्त की दृष्टि से जब एक गुण का वर्णन होता है तो अन्य गुण गौण होते हैं परन्तु उस द्रव्य में वे गुण हैं ही। जैसे-अग्नि में तापकत्व हिट गुण, ऊर्जा है, दाहकत्व (जलाने की शक्ति) गुण है, बॉयलिंग उबालने की शक्ति है परन्तु ये सभी गुण अभेद हैं।

यहाँ आचार्य श्री ने स्वयं बताया है कि एक शक्ति को केन्द्र करके अन्य शक्तियों का वर्णन होगा तो इन शक्तियों में अगुरुलघु भी आयेगा। जैसे सूर्य किरण के साथ उसके अन्य गुण भी आते हैं। सूर्य किरण आती है तो क्या केवल प्रकाश ही आता है क्या? नहीं। सूर्य किरण में अन्य सभी जो गुण हैं वो जैनधर्म व विज्ञान के अनुसार वो सभी आते हैं। इसी प्रकार एक गुण में अन्य गुण व एक प्रदेश में सभी गुण समाहित होते हैं।

ॐ नमः/शान्ति

आत्मा की 47 शक्तियाँ

(प्रवचन-4)

दिनांक-15/02/2021

अखंडितप्रतापस्वातंत्र्यशालित्वलक्षणा प्रभुत्वशक्तिः॥ (7)

जीवत्व शक्ति, चित् शक्ति, दृशि-शक्ति, ज्ञान शक्ति, सुखशक्ति, वीर्य शक्ति, प्रभुत्व शक्तियों की क्या आवश्यकता है। यह शक्तियाँ पापी से पापी एकेन्द्रिय से लेकर सभी जीवों में सुप्त रूप में है, संसारी जीवों में विकृत रूप में है। इन शक्तियों का स्वरूप धार्मिक लोक भी नहीं जानते हैं। जीव आपस में भावात्मक प्रतिस्पर्धा क्यों करता है? दूसरों को नीच व स्वयं को श्रेष्ठ क्यों मानते हैं? अष्टमद क्यों करते हैं? सहायक कारणों को मुख्य कारण व मुख्य कारणों को सहायक कारण मानते हैं। हित को अहित मानते है। इन भावों को अध्यात्मज्ञान, करणानुयोग, द्रव्यानुयोग, उच्चतम प्राणी विज्ञान, मनोविज्ञान, ऊर्जा सिद्धान्त से मैं (आ. कनकनन्दी) जानता हूँ।

वीर्य शक्ति व प्रभुत्व शक्ति की विकृति एकेन्द्रिय से लेकर सर्वत्र सर्व जीवों में पायी जाती है। यह अति-सूक्ष्म व व्यापक विषय है। पेड में भी प्रतिस्पर्धा है। पेड छाया ग्रहण करने के लिए, स्वयं की जडे विस्तारीत करने व भोजन ग्रहण करने के लिए प्रतिस्पर्धा करता है। अन्य का घात करने के लिए विस्तार करते है। यह परम विज्ञान है। जीव में जो ये शक्तियों की विकृतियाँ है ऐसी भौतिक तत्त्वों में नहीं होती फिर भी एटम से लेकर अंतरिक्ष में ग्रह-नक्षत्र से ले गेलेक्सी में भावानात्मक, चेतनात्मक क्रिया, प्रतिक्रिया नहीं होती है। वहाँ ऊर्जा के कारण होती है। चुम्बकीय आकर्षण भी कह सकते है। फोटोन में भी जो आदान-प्रदान होता है उससे भी आकर्षण-विकर्षण होता है। परन्तु जीव में जो चेतनामय, विभावमय, संवेदनाशील, जो राग-द्वेष, काम-क्रोध-मोह-अष्टमद, ईर्ष्या, घृणा, आहार-निद्रा-भय-मैथून-परिग्रह संज्ञा इत्यादि प्रवृत्तियाँ है वह एटम में नहीं है।

एटम से लेकर स्कन्ध में होती है क्रिया-प्रतिक्रिया, चेन रिएक्शन भौतिक शक्ति के कारण। परन्तु प्रत्येक जीव में चाहे विकार रूप में हो आत्मिक शक्ति कार्य करती है। संसारी जीवों में तीव्र-मंद रूप में क्रिया होती है। पेड से ले कीट पतंग,

पंचेन्द्रिय पशु-पक्षी तक में। एकेन्द्रिय में भी विकार उत्पन्न होता है। विज्ञान के अनुसार कीट-पतंग, पशु-पक्षी में जो रंग परिवर्तन, नाचना, गाना है यही विकृतीय शक्ति की अभिव्यक्ति है। पशु-पक्षी संभोग के लिए स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए, बलशाली, निरोगी दर्शाने के लिए संघर्ष करते हैं। एक दूसरे को मारते हैं, अन्य परास्त होंगे, अन्य पशु उसे शक्तिशाली मान लेंगे तब जा के वह मादा पशु के साथ संभोग कर सकता है। यह सूक्ष्म विज्ञान टी.वी. के माध्यम से ज्ञात हुआ है।

धार्मिक लोक तो प्रभु नाम जपना, पराया माल अपना अधिकतर धार्मिक जो रूढ़िवादी, संकीर्ण, स्वार्थी हैं उनमें विकार ज्यादा है। मयूर, मक्खी आदि जो विभिन्न राग-रागिनी से गाते हैं, नाचते हैं, रंग बदलते हैं यह कला नहीं ये प्रतिस्पर्धा प्रभुत्व शक्ति का विकारी रूप है। काम विभाव की अभिव्यक्ति है। सामान्य जन जो सूक्ष्म पशु मनोविज्ञान नहीं जानते वे सोचते हैं ये पशु-पक्षी कितना मधूर गाते हैं, नाचते हैं, रंग बदलते हैं। कई साधु, आचार्य भी ये मनोविज्ञान नहीं जानते हैं। मैं (आचार्य कनकनन्दी) जो वैज्ञानिक अनुसंधान करता हूँ, करणानुयोग, कर्म सिद्धान्त से जोड़कर चिन्तन करता हूँ इसलिए मुझको ये समझ में आता है।

गर्भस्थ शिशु में भी आत्मशक्ति की विकृति दिखायी देती है। डिस्कवरी सायंस चैनल से जाना है। मादा शार्क के गर्भ में अनेक शिशु रहते हैं, उनमें जो बलशाली होगा अन्य भाई-बहन को मार कर खा जाता है। अनेक पशु में भी ऐसा ही होता है। यहाँ तक मनुष्य में भी यह होता है। जिस मादा के गर्भ में दो-तीन भ्रूण होते हैं उनमें भी कुछ न कुछ प्रवृत्ति चलती है। पुराण कथाओं में भी आता है (जैन-हिन्दु सभी) कि माता को दोहला होता है। एक रानी के गर्भ रहा, उसके गर्भ में जो क्रूर जीव था तो उसके प्रभाव से उसे दोहला हुआ की पति की छाती फाड़कर खून पीऊँ। ये शक्ति की विकृति जन्म के बाद वातावरण, परिस्थिति, संगती से ही होती है नहीं जीव की स्वयं की शक्ति की विकृति की अभिव्यक्ति गर्भ में भी होती है। पहले शिशु जन्म के सात-आठ महिने के बाद परन्तु वर्तमान में कुछ सप्ताह में चेतना शक्ति आती है ऐसा मानते हैं परन्तु सत्य ये है कि जब माता के गर्भ के रज-वीर्य मिलता है व विग्रह गति से जीव आकर जन्म लेता है तभी से आत्मा की स्वाभाविक-वैभाविक शक्तियाँ प्रकट हो जाती हैं।

विज्ञान के अनुसार छोटा चुंबक को बड़ा चुंबक आकर्षित करता है। गेलेक्सी भी एक दूसरे को खींचती है। पावरफूल ब्लॉक होल अन्य ब्लॉक होल को अपनी ओर आकर्षित कर, ग्लेलेक्सी व स्टार को निगल लेती है परन्तु यह भौतिक/अजीब की शक्ति है।

जीव में ऐसा क्यों होता है? छोटे-छोटे बच्चे भी एक दूसरे को आदेश देते हैं, स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करते हैं। यही शक्ति की विकृति है। यदि चेतना शक्ति नहीं होती तो जीव की ऐसी परिणती होती? क्या ऐ शक्ति एटम, गेलेक्सी या भौतिक यंत्र में है? नहीं। अमूर्तिक आत्मा की शक्ति की अभिव्यक्ति सभी संसारी जीव में विभाव रूप में है। गुणस्थान क्रम से जब आध्यात्मिक विशुद्धि, आध्यात्मिक सोपान आरोहण होता है तब वैभाविक शक्तियाँ धीरे-धीरे कम होती हैं। स्वाभाविक शक्ति प्रगट होने लगती है। धर्म में जो जीव का वर्णन है व मनोविज्ञान से ले प्राणी विज्ञान, डार्विन के सिद्धान्त में महान् अन्तर है।

आभामण्डल का रहस्य क्या है? परतत्व को अनात्मतत्त्व को मैं व मेरा मानना ममकार व अहंकार है वह बहिरात्मा और जो मैं आत्मा हूँ, मेरे अनन्त गुण है इसका चिंतन, ध्यान, व्याख्या करता है वह स्वाभिमान व आत्मगौरव है।

प्रायः करके लोक आत्मगौरव को घमण्ड व घमंड को श्रेष्ठ मानते हैं। आचार्यश्री बताते हैं जो महान् होते हैं वे सत्यवादी, आत्मगौरवशील, अंतरात्मा होते हैं उनमें तीनों शक्तियों की अभिव्यक्ति शुभ, शुद्ध रूप व विभाव रूप में कैसे होती है? सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा शुभ रूप में वचन में सत्य, मति में श्रुतज्ञान, हृदय में दया, भूजाओं में विक्रम, लक्ष्मी दान में, अलौकिक मार्ग, स्वतंत्र मार्ग में उछाल, परम सुख-शांति, मोक्ष में पहुँच जाते हैं। ऐसे तीर्थकरादि महापुरुष निरहंकारी होते हैं। रावण तीनों शक्ति की विकृत से युक्त था। राम व पांडवों ने युद्ध में अनेक लोगों को मारा परन्तु वे अहंकारी नहीं थे। परन्तु वे विचिन्त हैं। कर्मों की वैभाविक शक्ति है।

जिनमें ऐसे आध्यात्मिक गुण नहीं, शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक शक्ति नहीं, वीर्य नहीं, दानी नहीं, तपस्वी नहीं तथापि ऐसे अहंकार अधिक होते हैं। वैज्ञानिक पृथ्वी के हर जीव को अपना मानते हैं। पृथ्वी की रक्षा के लिए, पर्यावरण सुरक्षा के लिए सम्यक् पुरुषार्थ करते हैं। परन्तु इधर धार्मिक से ले राजनीति, व्यापार,

समाज, परिवार, सगे भाईयों में, मातापिता में स्वयं को श्रेष्ठ-ज्येष्ठ बताने के लिये आपस में संघर्ष होता है। भले स्वयं घमण्डी, महापापी, मिथ्यादृष्टि हो। ये सब विकृतियाँ क्यों? धर्म क्षेत्र में ही ज्यादा विकृतियाँ हैं।

विद्या विवादाय धनं मदाय, शक्ति परेषाम् पर पीडनाय।

विद्या प्राप्त करते हैं तो वाद-विवाद के लिए, दूसरों को नीचा दिखाने के लिये। घमण्ड, ढोंग-पाखण्ड करते हैं, धन प्राप्त करने के लिये शोषण, दगाबाजी करते हैं। अहंकार से आक्रमण, प्रतिआक्रमण, आतंकवाद, दिग्विजय करना क्या है? तानाशाही, रावण, कंस, हीटलर, मुसोलिन, सद्दाम हुसैन में तीन शक्तियों की विकृति थी।

पूरी पृथ्वी या पूरा जम्बू द्वीप भी मध्यलोक के समक्ष राई के बराबर है। चक्रवर्ती का वैभव भी क्या है? वह भी विभाव ही है। इलेक्ट्रानिक ऊर्जा से कितने रजनात्मक कार्य हो रहे परन्तु परमाणु की विध्वंसात्मक शक्ति से हिरोशीमा, नागासाकी क्षणार्ध में ध्वस्त हो गये थे। आत्मा में अनन्त शक्ति है। लोक-अलोक, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड, हिन्दु धर्म के अनुसार ब्रह्मवैवर्त पुराण में लिखा असंख्यात विश्व के मालिक भगवान् है। इस आध्यात्मिक शक्ति को सामान्य जन नहीं जानते।

पूरी पृथ्वी सुई की नोक के बराबर है तो ये राजा-महाराजा, सेठ, साहुकार के पास क्या जमीन, धन-सम्पत्ति, प्रभुत्व-विभुत्व है। धार्मिक कहलाने वाले लोक नाम कमाने के लिए साधर्मि बंधुओं से दूर्व्यवहार करते हैं। चक्रवर्ती तक अपना नाम लिखने के लिए अन्य चक्रवर्ती का नाम मिटाता है तब आकाशवाणी होती है, अरे मूर्ख चक्रवर्ती! तुने अन्य का नाम मिटाकर अपना नाम लिखा फिर दूसरा चक्रवर्ती आकर तुम्हारा नाम मिटायेगा।

प्रत्येक जीव को आत्मा साक्षात्, चित्र रूप में, कल्पना रूप में नहीं, गुणार्णव, गुणों का अखण्ड पिंड है, सभी जीव द्रव्य दृष्टि से, शक्ति रूप में सर्वज्ञ है, अभिव्यक्ति रूप में नहीं है। समस्त शक्तियों का पिंड है। परमपद में स्थित परमेष्ठी रूप तुम हो। बाल गंगाधर तिलक कहते थे स्वतंत्रता माझा जन्म सिद्ध अधिकार आहे तो भी मिकवणारच। उसी प्रकार स्वतंत्रता केवल राजनैतिक, सामाजिक नहीं होती। भगवान् ने कहा तुम जब से हो तब से प्रभु-विभु बनने का, कर्मों से स्वतंत्र होने का तुम्हारा मौलिक अधिकार है।

आचार्य खेद व्यक्त कर रहे हैं कि इस संसारी जीव का दुभाग्य है कि इसे कर्मों ने ठग लिया है। और यह जीव राग-द्वेष, ख्याति-पूजा-प्रसिद्धि-मोह पाश में स्वयं को ढूँढ़ रहा है। स्व का उसी दृष्टि से मूल्यांकन कर रहा है। यदि आप स्वयं को राजा-महाराजा, दार्शनिक, वैज्ञानिक, चक्रवर्ती भी मानते हैं तो स्वयं का अपमान कर रहे हो, कोई आत्मगौरव नहीं है। आध्यात्मिक ही परमामृत, परम शक्ति है। परम सत्य है। आध्यात्मिक दृष्टि से सभी संसारी जीव पगले लगते हैं।

आध्यात्मिक दृष्टि सम्पन्न जीव किसी को छोटा या बड़ा नहीं समझता। किसी से घृणा, अपना-पराया, किसी को नीच या श्रेष्ठ नहीं मानता। केवल सत्ता-सम्पत्ति-विभूति के आधार पर किसी का मूल्यांकन नहीं करता न भेदभाव करता है। यदि कोई करता है तो वह आध्यात्म को जानता ही नहीं न अनुभव करता है, वह स्वयं दीन-हीन शक्ति से ग्रसित है। मोह, माया, अष्ट मद से ग्रसित है। आध्यात्म जैसा परम साम्य संविधान विश्व में किसी भी देश राष्ट्र का नहीं है।

मनुष्य संसार का निकृष्टतम, क्रूर, बर्बर, जंगली व आतंकवादी है। मनोविज्ञान के अनुसार मानव मस्तिष्क डायनासोर, क्राकोडायल का है अर्थात् क्रूर, निष्ठुर, विषमता से युक्त है। देखने में कोई मनुष्य सभ्य, सौम्य, उदार, धार्मिक लगता है परन्तु अन्तरंग में विष भरा होता है। आचार्य कहते हैं ऐसा करके तुम स्वयं को ठग रहे हो। तुम्हारे आत्मा में अनन्त गुण, अनन्तशक्तियाँ निहित हैं, संसार के सभी प्राणियों के भौतिक सुख-वैभव से अनन्त गुणित।

अहो! अनन्तवीर्यम्-मम आत्मा इस दृष्टि से तुम स्वयं तीन लोक के प्रभु, विभु, त्रिलोकाधिपति, तीन लोक के स्वामी हो। तुम्हारे आत्म वैभव के समक्ष चक्रवर्ती, देवों का भी वैभव तुच्छ, नगण्य है। तीन लोक को सर्वज्ञ भगवान् युगपत् जानते हैं इसलिए विश्वप्रकाशी अनन्त ज्ञानात्मा है। शुद्ध आत्मा को कोई पराजित नहीं कर सकता। क्या सर्वज्ञ भगवान् राज्य करते हैं? भोग करते हैं या आक्रमण, युद्ध करते हैं?

आत्मा में इतनी शक्ति है कि तीन लोक को चलायमान कर सकता है।

अस्य वीर्यं महामण्डलमय योगिनः जब तक जीव सर्वज्ञ नहीं बनता, गॉड, भगवान्, केवली नहीं बनता तब तक स्वयं के अनन्त वैभव, गुण, शक्ति को

नहीं जान सकता, गणधर भी नहीं जानते। तीन कल्याणक से युक्त तीर्थंकर मुनि भी नहीं जान पाते क्योंकि अभी छद्मस्थ है, अनन्त चतुष्टय प्रकट नहीं हुए है। एक क्षण पश्चात् जो सर्वज्ञ बनेंगे, अरिहंत बनेंगे वे भी पूर्णतः नहीं जानते मुझमें अनन्त गुण, शक्तियाँ है।

वैज्ञानिक लोक विनम्रता से कहते हैं कि हम ब्रह्माण्ड के रहस्यों से पर्दा हटाने का प्रयास कर रहे हैं। पहले वे एक सौर परिवार मानते थे एक ब्रह्माण्ड को मानते थे परन्तु अभी अरबों गैलेक्सियाँ मानने लगे हैं। इसलिये मैं सब कुछ जानता हूँ मुझे सब कुछ आता है, मैं निर्दोष, एक पवित्र हूँ ऐसी मिथ्याधारण नहीं करना, घमण्ड रूप में नहीं सोचना हा! शक्ति रूप में जानना। क्रियाकाण्ड करके, एकाध अक्षर पढ़कर (अल्पज्ञान होने पर भी) स्वयं को ज्ञानी, धार्मिक मानना क्षुद्रता है, अहंकार है प्रभुत्व, विभुत्व, वीर्यत्व शक्ति की विकृति है। सर्वज्ञ भगवान् जितना बोलते हैं उसका अनन्तवाँ एक भाग समझते हैं। आत्म शक्ति के आगे राजा-महाराजा, चक्रवर्ती व उसकी समस्त सेना की शक्ति, ऋद्धिधारी मुनियों की जो शक्ति है सभी तुच्छ है। चार ज्ञानधारी, 64 ऋद्धि सम्पन्न तीर्थंकर, गणधर की शक्ति शुद्ध आत्मशक्ति के सामने तुच्छ है। इसलिये आध्यात्मिक संत इन ऋद्धियों से धन सम्पत्ति से प्रभावित नहीं होते। क्या वे मूर्ख हैं, जड़ हैं, संवेदन हीन हैं? नहीं वे जानते हैं कि मुझमें इनसे अनन्त वैभव, अनन्त सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व शक्ति है फिर इन भौतिकता से क्यों प्रभावित हूँ। इसलिये आध्यात्मिक संत न किससे प्रभावित होते हैं न किसे प्रभावित करते हैं, ना किसी को नीच या तुच्छ मानते हैं, समता में रहते हैं।

सामान्य व्यवहार, व्यापार में सोना-चाँदी, हीरा, कपड़ा को अलग-अलग मानते हैं परन्तु आधुनिक विज्ञान के क्वान्टम सिद्धान्त के अनुसार सब एटम है। उच्चतम विज्ञानानुसार केवल एटम, एनर्जी है।

अयमात्मा मेरा आत्मा स्वयं हिमसेल्फ, साक्षात् है। मेरा आत्मा निश्चय से परमात्मा है। जीव निश्चय से परमात्मा है परन्तु अभव्य कभी मोक्ष नहीं जा सकता, प्रॉक्टिकल रूप में गुण प्रकट नहीं होंगे परन्तु शक्ति, सत्ता रूप में अनन्त गुण अभव्य में है। जैसे बीज में वृक्ष है शक्ति रूप में परन्तु बीज को फ्रीज में रख लो क्या वृक्ष बन जायेगा? नहीं वृक्ष बनने के लिये मृदा, जल, सूर्य किरण आदि सभी चाहिये।

उसी प्रकार व्यवहार, श्रावक धर्म, मुनि धर्म, तप-त्याग को एकान्त रूप से मानना मिथ्या होगा।

निश्चय से आत्मा परमात्मा कब बनेगा? जब ध्यान के माध्यम से विभाव भाव, कर्मों को नष्ट करेगा तब। 12 गुणस्थान तक जीव अन्तरात्मा है, शुद्धात्मा नहीं। 13 गुणस्थान में परमात्मा बनता है। इन शक्तियों के कारण कर्म की शक्ति नष्टकर, जलाकर परमात्मा बनता है। यदि ये शक्ति नहीं होती तो जीव कभी भी परमात्मा नहीं बन पाता। धर्म क्यों करना? आत्मशक्ति को जागृत करने के लिए, शुद्ध-बुद्ध बनने के लिये। यदि धर्म करने से आत्मविशुद्धि नहीं बढ़ती, आत्मशांति नहीं मिल रही तो आप स्वयं को ढग रहे हो। तीनों प्रभुत्व-विभुत्व, वीर्यत्व शक्तियों के विकृतियों से युक्त हो धार्मिक नहीं हो।

आध्यात्मिक दृष्टि से प्रत्येक जीव शाश्वत, पवित्र, शिव रूप है। शिव=कभी नष्ट नहीं होने वाला, विशुद्ध रूप से पवित्र, जो आनन्दमय, मंगलमय है। शंकर=जो स्वयं को पवित्र करे व दूसरों को पवित्र करे। विष्णु=जो लोक-अलोक में व्यापक, विस्तार वाला है। ब्रह्मा=हर जीवात्मा स्व-स्व गुण में विस्तार करता है, गुणों को विकसित करता है इसलिये स्वयं ब्रह्मा है। रूद्र=जो स्वयं के अनादिकालीन कर्म, राग-द्वेष काम क्रोधादि विभाव भावों को नष्ट करता है। हिन्दु धर्म में जो त्रिशुल है अर्थात् आत्म दर्शन, आत्मज्ञान, आत्मरमण आत्मा में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप तीन शक्तियाँ है। जो विभाव शक्तियों को नष्ट करती है। हर जीव में संहार शक्ति है।

णमो अरिहंताणं—जो अरि को मारता है। क्रोध-मान-माया, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय शत्रु को नाश करे, उन पर विजय प्राप्त करे वे अरिहंत। स्व गुणों से युक्त ईश्वर। जिसका कोई अन्त नहीं वह अनन्त गुण सम्पन्न वे सिद्ध। प्रत्येक संसारी जीव विभाव रूप में ही रहता है। आध्यात्मिक गुणों से युक्त होना ही आत्म विकास है।

आत्मा की 47 शक्तियाँ

(प्रवचन-5)

दिनांक-16/02/2021

ॐ नमः सिद्धेभ्यः। ॐ नमः सिद्धेभ्यः। ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

(8) विभुत्व शक्ति-सर्वज्ञत्व शक्ति व स्वच्छत्व शक्ति, विभुत्व शक्ति ये तीनों कथंचित् परस्पर मिली हुई हैं। एक आत्म-प्रदेश में अनन्त गुण होते हैं। इसलिए प्रदेश की अपेक्षा एक, गुण अपेक्षा अनन्त पर्याय अपेक्षा अनन्त यह अति सूक्ष्म विषय है। जैसे वृत्त (गोल) में केन्द्र बिन्दु एक और अर्धव्यास लाखों, करोड़ों अरबों व धुरी भी उतनी ही हो सकती है। केन्द्र बिन्दु एक है रेखागणित के अनुसार बिन्दु में लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई नहीं परन्तु उसका एकजीटेन्स, अस्तित्व है उसी प्रकार केन्द्र बिन्दु आत्मा है। जैसे दीपक या सूर्य एक है परन्तु उसकी रश्मियाँ, किरणे दशों-दिशा में फैलाती है।

छद्मस्थ के पहले दर्शनोपयोग होता है। पश्चात् ज्ञान होता है परन्तु सर्वज्ञ को दर्शन-ज्ञान युगपत् होता है। गणधर तक एक साथ देखना-जानना नहीं कर सकते क्योंकि वहाँ ज्ञानावरण-दर्शनावरण कर्म का अभी आवरण है। ये बाधक कारण है। केवली भगवंत को छोड़कर गणधर तक छद्मस्थ है। इसलिए हमें एक साथ ज्ञान नहीं होता धीरे-धीरे होता है। ब्रह्माण्ड के समस्त ज्ञेयों को युगपत् जानना, देखना (दर्शन) यह है सर्वज्ञत्व शक्ति।

(9) स्वच्छत्व शक्ति-जो कांच बनता है वह रेत से बनता है। रेत को उच्च ताप पर गरम करने पर सिलिकन ग्लास बनता है। इसी तरह कार्बन (कोयला) ही हीरा बनता है। सर्वज्ञ भगवान् एक साथ (युगपत्) गुण पर्याय को जानते हैं उसका कारण स्वच्छत्व शक्ति। यदि ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय कर्मरूपी मल व अन्तराय कर्म है तब तक आत्मा में स्वच्छता नहीं आयेगी। स्वच्छता के बिना ज्ञान-ज्ञेय नोवेल थींग को नहीं जान सकता है। यदि आपका भाव राग-द्वेष, संकल्प, विकल्प, तनाव युक्त है तो आपकी स्मरणशक्ति, ज्ञान बढ़ेगा नहीं, कम होगा। ज्ञान बढ़ाने लिए शान्त मन, समता में रहना होगा। केवल किताब पढ़कर रटकर ज्ञान वृद्धि नहीं होगी। न

लौकिक ज्ञान व विशेषकर आध्यात्मिक तो बढ़ ही नहीं सकता। सभी प्राणियों में मानव-मस्तिष्क अति पावरफूल है जिसकी समानता दुनिया का कोई भी कम्प्यूटर नहीं कर सकता है।

भारत की शिक्षा पद्धति रूढ़ीवादी है। शिक्षा पद्धति आनन्ददायी होना चाहिए न की संकीर्ण, भौतिकवादी, जड़वादी। आधुनिक व आध्यात्मिक पद्धति से ज्ञानार्जन में ज्ञानानन्द आता है। इतनी तनावपूर्ण शिक्षा है कि 5 क्लास से 10 क्लास के 10 हजार बच्चे एक वर्ष में आत्महत्या कर रहे हैं।

जो अंतरंग शक्तियाँ आत्मा में निहित हैं उसे बढ़ाना है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर अनपठ थे फिर भी गीतांजली व अन्य रचनाएँ की तथा गुरुकुल पद्धति प्रारंभ की। आइन्स्टीन विद्यार्थी जीवन में भोंदू (सामान्य बुद्धि) थे, अच्छे से बोल भी नहीं पाते थे। कभी लेबोरेटरी नहीं गये। केवल कागज व पेन्सिल उनके उपकरण थे। इतना महान् सापेक्ष-सिद्धान्त दुनिया को दिया। बड़े-बड़े चिन्तक, ऋषि-मुनि व तीर्थंकर कभी स्कूल गये ही नहीं। फिर भी जगतगुरु बन गये। महात्मा बुद्ध भी पाठशाला गये व शिक्षक को पढ़ाकर आये।

जब आपका भाव एकाग्र व शान्त, स्वच्छ होगा तो आपका मन पवित्र होता जाता है और वो तरंगे सूक्ष्म व पावरफूल होती है व ज्ञान का क्षयोपशम बढ़ता है। स्मरणशक्ति बढ़ती है व अवचेतन मन सक्रिय होता है। इसलिये ही प्राचीन काल में ऋषि-मुनि, तीर्थंकर जंगल में एकान्त सभी बन्धनों को तोड़कर एकान्त, शान्त स्थान पर जाकर तपस्या कर बोधि लाभ प्राप्त किये।

हमारे प्राचीन ज्ञान-विज्ञानी महापुरुष, परम न्यायधीश, परम जिनियस थे। भाव मन में स्वच्छता लाने पर स्मरणशक्ति बढ़ेगी व यथार्थ ज्ञान होगा, नहीं तो ज्ञान विकृत होगा। रटन्त पुस्तकी ज्ञान काम नहीं आता। अनुभव ज्ञान, साम्यज्ञान, निष्पक्ष, पवित्र ज्ञान से करोड़ों, अरबों सूर्य-चन्द्र से अनन्तगुणित आध्यात्मिक शक्ति बढ़ती है। परन्तु ये कब होगा? ज्ञेय को जानना चेतना (आत्मा) की प्रवृत्ति है इसलिए एकेन्द्रिय से ले पंचेन्द्रिय तक सभी जीवों की ऐसी प्रवृत्ति, लेश्यानुरूप प्रवृत्ति है। मनुष्य में सबसे ज्यादा प्रवृत्ति होती है क्योंकि मनुष्य सर्वश्रेष्ठ बुद्धिजीवी प्राणी है। चीपाजी को हमारे पूर्वज मानते हैं।

मनुष्य जितना शांत, सरल, पवित्र होगा उतना ज्ञान बढ़ेगा वो यथार्थ ज्ञान होगा नहीं तो विध्वंसकारी, स्व-पर घातक ज्ञान होगा इसलिए यहाँ स्वच्छता शक्ति को कहा क्योंकि ज्ञान में भी स्वच्छता चाहिए।

नीरूपात्मप्रदेशप्रकाशमानलोकालोकाकार मेचकोपयोगलक्षणा स्वच्छताशक्ति।

भारत में सर्वश्रेष्ठ न्यायधीश रहे हैं विक्रमादित्य, अभयकुमार, चन्द्रगुप्तमौर्य, महात्मा गाँधी, अब्राहम लिंकन, वाशिंगटन आदि।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार जब तुम डिप्रेशन में आते हो, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, तनाव में रहते हो तब मानसिक विकास नहीं होता है। पवित्र, निर्मल, निष्पक्ष, निस्वार्थ भाव रखने से स्मरण शक्ति व ज्ञान बढ़ता है।

मस्तिष्क के दो भाग हैं राइट, लेफ्ट व उसके भी अनेक भाग-विभाग हैं। न्यूरोन्स से जो पाथ वे है, जब आप राग-द्वेष व पक्षपात करते हैं तो न्यूरोन पाथ वे कट जाता है उदा. कोटा में रावत भाटा तीन प्रकार की बिजली बनती है। वहाँ से आप के घर में आती है परन्तु बीच में यदि वायर डिसकनेक्ट हो जाए तो क्या प्रकाश होगा? नहीं। इसी प्रकार जब मन अशांत, तनाव युक्त होता है तो मस्तिष्क का न्यूरोन पाथ वे कट जाता है।

स्व-पर प्रकाशी ज्ञान है। जैसे दीपक स्वयं प्रकाशीत होता है व दूसरों को भी प्रकाशित करता है। सूर्य स्व प्रकाशित होता है व वहाँ से प्रति समय रिफ्लेक्शन होता रहता है।

तज्जयति परं ज्योतिः समं समस्तैरनन्तपर्यायैः।

दर्पण तल इव सकला प्रतिफलति पदार्थमालिका यत्र।। (1) पु.उ.

परम परं ज्योति, कोटिचंद्रादित्य, किरणसुज्ञान प्रकाश।

सूर मुकुट मणि रंजित चरणाब्ज शरण श्री प्रथम जिनेशः।।

(12) स्वयंप्रकाशमानविशदस्वसंवित्तिमयी प्रकाशशक्तिः।।

आत्मा की स्वयं प्रकाशमान विशद ऐसी स्वसंवेदनमयी (स्वानुभवमयी) प्रकाशशक्ति है। इस स्वसंवेदन प्रकाशशक्ति को आचार्यश्री ने दर्पण की उपमा दी है। दर्पण स्वच्छ है तो प्रतिबिम्ब भी स्वच्छ होगा। दर्पण कई प्रकार के होते समतल,

उत्तल-अवतल इतयादि। दर्पण के अनुसार बिम्ब दिखता है। दर्पण स्वयं वस्तु को आकर्षित नहीं करता जो वस्तु दर्पण के समक्ष आती है प्रतिबिम्ब स्वतः झलकता है। उसी प्रकार प्रकाशशक्ति है।

जो स्वयं को प्रकाशित नहीं करेगा वह अन्य को कैसे प्रकाशित कर सकता। जो ज्ञान स्वयं को अनुभव नहीं कर सकता वह अन्य ज्ञेयों को कैसे अनुभव कर सकता है?

विज्ञान अभी तक स्व-संवित्ति, चेतना को नहीं जान पा रहा है। चेतना का मूल स्रोत क्या है? भौतिक तत्त्व में चेतना-स्वसंवित्ति नहीं है। स्व-संवित्ति, अनुभूति ज्ञान एक पेड़ भी करता है। अभी भी वैज्ञानिक वायरस को नहीं समझ पा रहे हैं। थोड़ा बैक्टेरिया को जानते हैं। न्यूरो सायंस में वायरस में भी चेतन है। निगोदिया में भी चेतना, कॉन्सीयसनेस है।

आदा णाण पमाणं-भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक संस्कृति होने से आत्म केन्द्रित है। यदि आप शान्ति, समता, सुख, आनन्द का अनुभव नहीं कर रहे तो आप धार्मिक ही नहीं हो क्योंकि धर्म आनन्द के लिए ही है। ज्ञानानन्द, परमानन्द, सहजानन्द, सच्चिदानन्द मय आत्मा है। इसलिए जितने अंश में आप, समता, शान्ति, आनन्द का अनुभव कर रहे हो उतने अंश में धार्मिक, नहीं तो भौतिक वादी, जड़ चालित यंत्र हो।

आत्मा की 47 शक्तियाँ

(प्रवचन-6)

दिनांक-18/02/2021

ॐ नमः सिद्धेभ्यः। ॐ नमः सिद्धेभ्यः। ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

आत्मा के अनन्त गुणों से युक्त हर भव्य, जिज्ञासु में ही नहीं सभी आत्माओं में स्व-आत्मस्वभाव, गुणधर्म हैं, जो शक्तियाँ है वे अभूतपूर्व, अलौकिक, अश्रुत व कल्पना शक्ति से परे है। अनादि काल से जीव मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र से युक्त है। तीर्थंकर, गणधर से ले सभी सर्व सामान्य जीव ने अनन्त पंच परिवर्तन किये हैं। यह विषय सुनकर सबको आनन्द आ रहा है। संकीर्णता दूर हो रही है। अहंकार

चूर-चूर हो रहा है। विनम्रता आने से धर्म व स्व आत्मा की महानता का आत्मगौरव बढ़ रहा है।

क्षेत्रकालानवच्छिन्नचिद्विलासात्मिका असंकुचित विकासत्वशक्ति। (13)

क्षेत्र व काल से अमर्यादित ऐसी चिद्विलास स्वरूप (चैतन्य के विलास स्वरूप) असंकुचितविकासत्वशक्ति।

परम सत्य को क्षेत्र (स्पेस), अविच्छिन्न माने काल में बांध नहीं सकते। उसका मेजरमेंट (माप) नहीं कर सकते। चैतन्य विलास, क्रीडा, भोग, उपभोग, वैभव को किसी क्षेत्र में या किसी काल में माप नहीं सकते। फिजिक्स, कॅमेस्ट्री के सूत्र यहाँ काम नहीं करते। अनन्तगुण सम्पन्न आत्मा अमूर्तिक है उसे क्षेत्र-काल में कैसे बाँध सकते हैं? आत्मा क्षेत्रातीत, कालातीत है। विलासात्मिक, असंकुचित, विकासत्वशक्ति यह अगुरुलघु गुण के कारण होता है। यह शुद्ध आत्मा का गुण है। जब जीव निगोदिया, वायरस रूप में जन्मता है तब आत्मप्रदेश संकुचित हो जाते हैं। जब डायनासोर, हाथी, महामत्स्य का शरीर धारण करता है तब आत्मप्रदेश विस्तार को प्राप्त होते हैं। यह शुद्ध आत्मा का संकोच-विस्तार गुण है। ये शक्ति संकुचित भी नहीं और विकसित भी नहीं क्यों? ये सब परस्पर को रिलेटेड हैं। परस्पर अन्तर सम्बन्ध करना पड़ेगा। यह अनेकान्त सिद्धान्त है। व्यवहार से, अशुद्धनय से आत्मा संकोच-विस्तार वाला है। परन्तु आत्मा की जो अर्थ पर्याय है, अगुरुलघु गुण, विज्ञान के अनुसार स्ट्रीम थ्योरी में जिसे वैज्ञानिक खोज रहे हैं। वो है आत्मा का चैतन्य विलास जो शुद्ध आत्मा की शक्ति है। ऐसे अन्य द्रव्यों में भी शक्ति है परन्तु वह चैतन्य शक्ति नहीं है। अमूर्तिक में अमूर्तिक, पुद्गल में पुद्गल, धर्म में धर्म, आकाश में आकाश, काल में काल रूप शक्ति है।

आत्मा अनन्त से है, अनादि तक रहेगा। इसी प्रकार हर द्रव्य रहेगा। क्यों रहेगा? द्रव्य की इन सब शक्तियों के कारण।

अन्य क्रियामाणान्याकारकैकद्रव्यात्मिका अकार्यकारणत्वशक्तिः॥ (14)

जो अन्य से नहीं किया जाता और अन्य को नहीं करता ऐसे एक द्रव्यस्वरूप अकार्यकारणत्वशक्ति। (जो अन्य का कार्य नहीं है और अन्य का कारण नहीं है ऐसा जो एक द्रव्य उस-स्वरूप अकार्यकारणत्व शक्ति।)

धर्म से ले विज्ञान, कानून में कार्य-कारण सम्बन्ध है। कर्म सिद्धान्त में, निमित्त-उपादान, भाग्य-पुरुषार्थ, पुण्य-पाप मिमांसा में यही कार्य-कारण सम्बन्ध है। आचार्य बता रहे हैं अकार्य-कारणत्वशक्तिः।

यही है अनेकान्त व अध्यात्म जो सामान्य लोगों को पागल कर देता है इसलिए आचार्यश्री बता रहे हैं।

अनेकान्तोऽप्यनेकान्त प्रमाण नय-साधनः।

अनेकान्तः प्रमाणात् ते तदेकान्तोऽर्पितान्नयात्।। (103) स्व.स्तो.

जो हठग्राही, दुराग्राही, संकीर्ण पंथ-मतवादी है, जो पूर्वाग्रह से बंध है वे इस अनेकान्तरूपी चक्र से स्वयं के शिर काट डालते हैं। जिनेन्द्र भगवान् के नयचक्र सुदर्शन चक्र-जो संकीर्ण, बुद्धिहीन, हठग्राही, मतग्राही उनके दुर्ग को विध्वंस करने में विश्व का सर्वश्रेष्ठ, उदारवादी, पवित्र साम्यवादी चक्र है। नय चक्र इतना सरल नहीं। केवल अस्ति-नास्ति कहने से नय चक्र का ज्ञान नहीं हो सकता।

जितना-जितना ज्ञान बढ़ता है उतना-उतना हठज्ञान, कुज्ञान-अज्ञान, संकीर्णता का परिज्ञान होता है। अकारण-कारण क्या है? विज्ञान में डार्क एनर्जी, डार्क मेटर, ब्लैक होल का कार्य-कारण सम्बन्ध पूरी पृथ्वी के वैज्ञानिकों को अभी तक ज्ञात नहीं है। परन्तु उसका अस्तित्व है कि नहीं? है। अतः स्वभावअतर्कगोचर है। जो स्वभाव है, जो द्रव्य है, परम सत्य है वह अतर्कगोचर है। जीव चेतन क्यों है? जीव में चैतन्य गुण क्यों है? वैज्ञानिक ज्यादा से ज्यादा D.N.A., R.N.A तक पहुँचे हैं परन्तु ये तो कॅमिकल है, रसायन है, जड़ है। जड़त्व से चैतन्यशक्ति कहाँ उत्पन्न होगी। इसलिये जो परमसत्य जीव (आत्मा) द्रव्य, धर्म, अधर्म, आकाश, काल द्रव्य है इनका कोई कारण नहीं है। वे सभी द्रव्य स्वयम्भू, सनातन, शाश्वत अकार्य-कारण शक्ति युक्त हैं।

इसका अर्थ ये नहीं कि बिना कार्य-कारण सब कार्य हो जाते हैं नहीं। जो स्वभाव है वो अन्य से उत्पन्न नहीं होता है। जो विभाव है, भौतिक या रासायनिक प्रक्रिया से जो कुछ होता है व कार्य कारण है। कथञ्चित् 13 गुणस्थान तक कार्य-कारण सम्बन्ध है। 14 गुणस्थान भी। परन्तु जो शुद्ध आत्मा है, शुद्ध द्रव्य है उसके लिए कारण कौन? किसने इन्हें बनाया? वैज्ञानिकों को अनेक प्रश्न पूछे पर उत्तर नहीं

मिला। मैंने (कनकनन्दी) ब्रह्माण्ड-आकाश-काल-जीव अनन्त पुस्तक में इन सबका उत्तर दिया है। परम सत्य में कार्य-कारण सम्बन्ध नहीं होता। इसलिये आत्मा कब से है? किससे उत्पन्न हुआ? किसने उत्पन्न किया? जैन धर्म व गीता में, उपनिषद में लिखा है आत्मा स्वयंभू, सनातन, शाश्वतिक है। ये है अकार्य-कारण सम्बन्ध शक्ति।

परात्मनिमित्तकज्ञेयज्ञानाकारग्रहणग्राहणस्वभावरूपा परिणम्यपरिणाम कत्वशक्तिः॥ (15)

पर व स्व जिनके निमित्त है ऐसे ज्ञेयाकारों तथा ज्ञानाकारों को ग्रहण करने व ग्रहण कराने के स्वभावरूप परिणम्यपरिणामकत्व शक्ति।

वस्तु, द्रव्य में परिणमन होता है ये मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि, चोर, डाकू, सभी जानते है। परन्तु वैश्विक, शाश्वतिक परिणमन होता है नहीं जानते। नया कपड़ा पुराना होता है, शिशु-वृद्ध होता है, जन्म हुआ है तो मरण होता है। इस सूत्र में बता रहे है कि पर निमित्त व स्व निमित्त के कारण परिणमन होता है। इसके पहले के सूत्र में बता रहे थे अकार्य-कारण। यही अनेकान्त है। जहाँ विरोधात्मक धर्म होगा वही सत्य होगा।

विरोध अर्थात् जो पंथ-मत के नाम पर लड़ते, भिड़ते है मार-पीट करते है नीचा दिखाते है वह विरोध नहीं। विरोधात्मक धर्म माने एक गुण के विरोधी गुण। सह अस्तित्व जैसे शरीर में विरोधी, अंग-उपांग भी है। ब्रेन, आँख, कान, नाक, हाथ-पैर आदि तथापि एक दूसरों को कष्ट नहीं देते। इसी प्रकार स्व आत्मा परात्मा निमित्तक रिद्धन ज्ञेय=नो वेल थींग जिसको ज्ञान जानता है। ज्ञान=जानने वाला, नॉलेज। ज्ञान-ज्ञेय सम्बन्ध, निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध, परिणामी-परिणामकत्व कुछ जटील पद्धति है। विज्ञान के अनुसार जो दृश्य वस्तु से प्रकाश निकल के आँख के रेटिना में प्रकाश पड़ता है वो जाकर मस्तिष्क के दृश्य विभाग में विद्युत चुम्बकीय रूप से कम्पन होता है वह ज्ञेय के प्रतिबिम्ब को प्रतिबिम्बित करता है।

जैसे सिलिकॉन, रेत से दर्पण बनता है परन्तु क्या सिलिकॉन, रेत में अपना प्रतिबिम्ब देखते है? गंदे पानी में प्रतिबिम्ब स्वच्छ दिखायी देता है? नहीं। परिणाम-परिणम्य से दर्पण में प्रतिबिम्ब दिखता है। ज्ञान-ज्ञेय सम्बन्ध क्या है? जैसे दर्पण की

स्वच्छता, वस्तु को प्रतिबिम्बित करने की शक्ति व प्रतिबिम्ब तब दर्पण में प्रतिबिम्ब दिखता है।

जीव की जो चेतना, ज्ञान शक्ति है वह केवलज्ञान होने पर सभी ज्ञेयों को जानता है। ज्ञेयों को ज्ञानाकार रूप अनन्तज्ञान (इनिफिनिट नॉलेज) में प्रतिबिम्बित होता है। अति स्थूल उदाहरण जो टी.वी., मोबाईल में चित्र दिखते हैं वे सब इलेक्ट्रिक मैग्नेट वेव (किरणें) हैं जो कन्वर्ट होकर चित्र रूप में दिखायी देती हैं। दिव्यध्वनि से जो तरंगें निकलती हैं वे भाषा रूप में परिवर्तित होकर सभी जीवों को अपनी-अपनी भाषा में सुनायी देती हैं। केवलज्ञान में ब्रह्माण्ड के समस्त ज्ञेय-अणु से ले महास्कन्ध, लोका-लोक ज्ञान-ज्ञेय परिणम्य परिणामकत्व शक्ति से दिखते हैं।

यदि आप की आँख बन्द है, प्रकाश आ रहा है फिर भी क्या रेटिना में प्रकाश पड़ेगा? मस्तिष्क में जायेगा? क्या मस्तिष्क वस्तु के प्रतिबिम्ब को देख पायेगा? नहीं। एक विद्यार्थी की दृश्य शक्ति अच्छी है, पढ़ने में रूचि है, पुस्तक भी पास में है, परन्तु अन्धेरा है तो पुस्तक खोलकर, आँखें खोलकर कर बैठा है, भाषा ज्ञान भी है, क्या पुस्तक पढ़ पायेगा? नहीं। क्यों नहीं? प्रकाश में अक्षर का जो रिफ्लेक्शन होता है वह उसके रेटिना में नहीं गया ब्रेन में जाकर दृश्य केन्द्र सक्रिय नहीं हुआ इस कारण वो पढ़ नहीं पाया। यह व्यवहार से है। केवलज्ञान में ऐसे कोई प्रतिबन्ध या विरोधी कारण नहीं हैं।

सर्वज्ञ भगवान् के ज्ञानात्मक शरीर में अणु में लेकर ब्रह्माण्ड तक, निगोद से सिद्ध भगवान् तक, धर्मादि 6 द्रव्य युगपत् प्रतिबिम्बित होते हैं। किस कारण? परिणम्य-परिणामकत्व शक्ति के कारण। जैसे मठरा मूंग सिजता नहीं। कुछ बीज अंकूरित नहीं होते उसी प्रकार दूरन्दूर भव्य, अभव्य कभी भव्य नहीं होते। धर्म, अधर्म, आकाश, काल द्रव्य एक दूसरे में परिणमन नहीं होते हैं। धर्म-अधर्म द्रव्य रूप नहीं होता। स्व-स्व आत्म स्वरूप है।

विज्ञान व मनोविज्ञान मानता है कि एक स्थान पर आंशिक परिवर्तन होने पर पूरे ब्रह्माण्ड में परिवर्तन होता है। इसे कहते हैं बटर प्लाय इफेक्ट। तीतली के पंख फडफड़ाने पर उसकी क्रिया-प्रतिक्रिया पूरे ब्रह्माण्ड में होती है। उसके पंखों के कम्पन की तरंगें पूरे ब्रह्माण्ड में फैलती हैं।

चतुर्थ काल में भी तद्भव मोक्षगामी अधिकांश शिष्य पर्यायार्थिक बुद्धि के थे। भले भावना, रूचि, श्रद्धा, समता शान्ति के धारक थे।

अन्यूनान्तरिक्त स्वरूपनियतत्वरूपा त्यागोपादानशून्यत्वशक्तिः॥ (16)

ज्ञान किसे कहते है? हिताहितप्राप्ति परिहार समर्थम् ज्ञानम्। बिन जाने ते दोष गुणन को कैसे तजिये गहिये॥

जो कम या अधिक नहीं होता ऐसे स्वरूप में नियतत्वरूप (निश्चिततया यथावत् रहने रूप) त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति। हेय-उपादेय और वितराग-विज्ञान परन्तु यहाँ बता रहे कुछ भी ग्रहण नहीं, कुछ भी त्याग नहीं, फिर ये पाप क्यों त्यागना? परिग्रह कषाय, संसार को क्यों त्यागना? परमेष्ठी क्यों बनना? इसलिए तथाकथित् आध्यात्मिक कहलाने वाले जिनका भाव पवित्र नहीं है, ज्ञान, वैराग्य नहीं वे ऐसे विषय को विकृत कर लेते है। आध्यात्म को नहीं समझते, एकान्त, हठग्राहिता में आ जाते है। अन्यूनान्तरिक्त...ऐसे संसारी जीवों को कर्म आस्रव, बंध, संवर निर्जरा, कर्म मोक्ष कैसे होगा? पाप क्यों त्याग करोगे? कोई पापी भी नहीं होगा। कोई धर्मात्मा भी नहीं होगा, कोई पुण्यात्मा भी नहीं होगा। पंच परमेष्ठी भी नहीं बनेगा व कभी मोक्ष भी नहीं होगा। अनेकान्त को समझना इतना सरल नहीं। क्यों नहीं? त्याग और ग्रहण से संभव नहीं। ॐ पूर्ण भिंद पूर्णात्। यही अनेकान्त है, यही अनन्त वस्तु स्वरूप है। जैसे सिद्ध भगवान् क्या छोड़ सकते है? क्या उनके पास पर द्रव्य, विभाव, पुण्य-पाप, बंधन, अज्ञानता, क्रोध-मान-माया-लोभ है? क्या छोड़ने योग्य है उनके पास? क्या ग्रहण करेंगे? किस के पास पढ़ेंगे सुख प्राप्त करने हेतु फैशन व्यसन करेंगे, शादी, ख्याति-पूजा-लाभ, माईक, मंच, निंदा-चुगली करेंगे? नहीं। इसी प्रकार प्रत्येक शुद्ध द्रव्य धर्म-अधर्म-आकाश-काल में जो अनन्त गुण है उनका न त्याग होता है न कुछ नवीन ग्रहण होता है। परन्तु संसारी जीव ये ना सोचे की हमें कुछ त्याग नहीं करना है। भगवान् ने कहा है, परम्परा से आचार्य कह रहे है-कुछ भी त्याग नहीं होता न कुछ भी ग्रहण नहीं होता इसलिये खाओ, पीयो, मजा करो यही भोगवादी धर्म में सर्वत्र होता है। ऐसी सर्वोच्च शुद्धता व स्थान (मोक्ष) को प्राप्त कर लो जहाँ पर तुम्हें न कुछ त्याग करना पड़ेगा न कुछ ग्रहण करना पड़ेगा। स्वरूप में ही परिणामन होगा। उस सर्वोच्च स्थान को प्राप्त करने के लिये गृहस्थ धर्म, मुनिधर्म, तप-त्याग, पूजा-पाठ आदि है।

जिस सुख के बाद कुछ सुख नहीं, जिस ज्ञान के बाद कोई ज्ञान शेष नहीं, जिस त्याग के बाद कोई त्याग नहीं, जिस उपलब्धि के बाद कोई उपलब्धि शेष न हो वह है परमात्म पद, मोक्ष पद। स्वयं को ऐसा पूर्ण बनाओ जिसके बाद कोई अपूर्णता नहीं रहेगी।

संसार के सभी बंधन, कर्म, राग-द्वेष का पूर्ण त्याग कर लो तुम पूर्ण हो जाओगे, परमात्मा बन जाओगे। परमात्मा बनने के बाद पूर्ण हो जाओगे। पूर्ण विभावों का त्याग, पूर्ण अनन्त स्वभाव में जा जाओगे। यह अलौकिक, आध्यात्मिक, अनन्त का गणित है।

षट्स्थानपतितवृद्धिहानिपरिणतस्वरूपप्रतिष्ठत्व कारण विशिष्ट गुणात्मिका अगुरुलघुत्वशक्तिः॥ (17)

षट्स्थानपतित वृद्धि हानि रूप से परिणमित, स्वरूप प्रतिष्ठत्व का कारणरूप (वस्तु के स्वरूप में रहने के कारणरूप) ऐसा जो विशिष्ट गुण है उस-स्वरूप अगुरुलघुत्व शक्ति। अविभाग प्रतिच्छेदों की संख्या रूप षट् स्थानों में पतित समाविष्ट-वस्तुस्वभाव की वृद्धि हानि जिस गुण से होती है और जो गुण वस्तु को स्वरूप में स्थिर होने का कारण है ऐसा गुण आत्मा में है उसे अगुरुलघुत्व गुण कहते हैं। ऐसी अगुरुलघुत्व शक्ति आत्मा में है।

ये षट्गुण वृद्धि हानि वस्तु स्वरूप में ही होता है। शुद्ध द्रव्य में होता है। प्रति समय परिणमन, परिवर्तन होता है। इतना परिवर्तन न ब्लॉक होल, स्ट्रींग थ्योरी या मन व ब्रेन में होता है। शुद्ध द्रव्य में अनन्त गुणा परिणमन प्रतिसमय होता है। स्वरूप प्रतिष्ठत्व कारण... ज्वारभाटा या क्रांटम आदि में जो परिवर्तन होता है वह उसमें ही होता है तथापि स्वरूप भी रहता है उछलकर बाहर नहीं निकल जाता। जैसे आधुनिक विज्ञान में किलर स्टार=मारने वाला तारा। वो पावरफूल स्टार से या ब्लॉक होल आदि से धक्का खाकर भागते हैं व दूसरे ग्रह या तारा को नष्ट कर देते हैं। मेरा (कनकनन्दी) का प्रश्न है कि कुछ पूछल तारे लाखों वर्षों से आते हैं तो अन्य गेलेक्सी, अन्य ब्लॉक होल, अन्य स्टार उन्हें क्यों खींच लेते हैं? अभी तक वैज्ञानिक उत्तर नहीं दे पाये। जितना-जितना विज्ञान आगे बढ़ रहा है उतने अधिक प्रश्न उठ रहे हैं व विज्ञान अनुत्तरीत है।

जितना-जितना ज्ञान बढ़ता है उतना-उतना ज्ञान होता है कि मुझे अभी कुछ भी ज्ञान नहीं। अभी तो अधिक जानना शेष है। जिन्हें कम ज्ञान होता है उन्हें ही यह अहंकार होता है कि मुझे सब कुछ आता है। सुकरात ने कहा था-अज्ञानी को सब कुछ आता है। कमज्ञानी अनुभव से सीखता है व विशेषज्ञानी सतत सबसे सीखता है।

विशिष्ट गुणात्मका कृष्ण-नील, कोपात, पीत, पदम्, शुक्ल लेश्या क्या है? क्रोध-मान-माया-लोभ-ईर्ष्या-घृणा-राग-द्वेष, अपमान आदि जो विभाव भाव है। आप ससत अनन्तानुबन्धी के उच्चतम डिग्री में रहकर क्रोध नहीं कर सकते। आपका ब्रेन भ्रष्ट हो जायेगा। ब्लड प्रेशर बढ़ेगा, पगले हो जावोगे। रावण, कंस, हीटलर सतत क्रोध करते थे क्या? शेर, चीता, किंग कोबरा सर्प भी सतत क्रोध नहीं करते। शेर हमेशा शिकार नहीं करता, सर्प हर समय विष नहीं उगलता नहीं काटता है। साँप सतत विष उलेगा तो भोजन नहीं पचा पायेगा। उसी जहर (पाँइज़न) के कारण भोजन पचाता है व विष उसकी शक्ति है। क्रोधी से क्रोधी व्यक्ति यदि उच्चतम डिग्री से एक-दो घंटा क्रोध में रहे तो मर जायेगा। क्रोध में भी उतार-चढ़ाव आता है। इसके विपरीत शान्त, सौम्य, पवित्र भाव में जीव अनन्त काल तक रह सकता है जैसे सिद्ध-भगवान्। क्रोधादि कषाय विभाव हैं उसमें अनन्त शक्ति नहीं स्वभाव में अनन्त शक्ति है यह आत्मशक्ति है।

परम सत्य को सत्यमेव जयते कहा है। यह सत्यमेव जयते वाक्य उपनिषद में लिखा है। फिर हमारा भारत हजारों वर्ष गुलाम क्यों रहा? नेपाल छोटा सा देश होकर कभी गुलाम नहीं रहा। ग्रेट-ब्रिटेन लंदन से ईस्ट इंडिया कम्पनी के हजार व्यक्ति भारत व्यापार के बहाने से आये व 33 करोड़ लोगों को गुलाम बना लिया। कानून संविधान परम सत्य नहीं है, यह व्यवहार सत्य है।

पांडव दुःखी क्यों हुए? नल गणितज्ञ था। दूर से ईमली के पेड़ की पत्तियाँ गिन लेता था। फिर वह भिखारी क्यों बना? हरिश्चन्द्र राज्य भ्रष्ट क्यों हुआ? भरत चक्रवर्ती परास्त क्यों हुये? भारत गुलाम क्यों बना? सब बोल देते हैं सत्यमेव जयते परन्तु किसी को भावात्मक, आध्यात्मिक, वैज्ञानिक दृष्टि से ज्ञान नहीं है। जैन, हिन्दु, बौद्ध धर्म वाले आत्मा की शक्ति को मानते हैं परन्तु रूढ़ी, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, पक्षपात से।

फिर सत्य कहाँ रहा। राम वनवास क्यों गये? तीर्थकरों पर उपसर्ग क्यों हुआ? अन्तकृत केवली, उपसर्ग केवलियों पर उपसर्ग क्यों हुआ? वे विजयी कैसे हुए? विरोधियों को मार कर विजयी बने या आध्यात्मिक विजयी? इसलिए कहा है-

णमो अरिहंताणं-अरि का हनन, नाश करने वाले।

णमो सिद्धाणं-समस्त मिथ्या अरि को नष्ट कर सिद्ध बने।

आध्यात्मिक रहस्य समझना अति कठिन है। संज्ञी, पंचेन्द्रिय, पर्याप्तिक निकट भव्य जीव ही आत्मा का श्रद्धान करते हैं, तत्त्व श्रद्धान करते हैं। भले पशु, नारकी, देव या मनुष्य हो। क्योंकि निकट भव्य में आत्मविशुद्धि आति है जिससे आत्मशक्ति जागृत होती है।

आत्मा की 47 शक्तियाँ

(प्रवचन-7)

दिनांक-22/02/2021

ॐ नमः सिद्धेभ्यः। ॐ नमः सिद्धेभ्यः। ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

कर्म बंधव्यपगमव्यंजितसहजस्पर्शादिशून्यात्मप्रदेशात्मिका अमूर्तत्व शक्तिः॥ (20)

कर्म बन्ध के अभाव से व्यक्त किये गये सहज, स्पर्शादिशून्य (स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण से रहित) ऐसे आत्म प्रदेश स्वरूप अमूर्तत्वशक्ति।

भाव मन भी मूर्तिक है व उसमें उत्पन्न होने वाले क्षायोपशमिक भाव भी मूर्तिक है। आत्मा-जीव अमूर्तिक होते हुए भी व्यवहार से निगोद से ले 13 वे क्या कथंचित् 14 गुणस्थान शैलेशी अवस्था तक मूर्तिक है।

मगगणगुणठाणेहि य चउदसहिं हवंति तह असुद्धणया।

विण्णेया संसारी, सब्बे सुद्धा हु सुद्धणया॥ (13) द्र.सं.

वण्ण रस पंच गंधा दो फासा अट्टु णिच्छया जीवे।

णो संति अमुत्ति तदो, व्यवहारा मुत्ति बन्धादो॥ (7)

स्थूल सूक्ष्म जीव एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीन्द्रिय से ले वायरस बैक्टेरिया जो आँखों से नहीं दिखते वो भी अनन्तानन्त पुद्गल परमाणु से बने है इसलिये मूर्तिक

है। क्योंकि कर्म बन्ध से सहित है। परन्तु Real view point आत्मा में तथा धर्म, अधर्म, आकाश, काल में वर्ण, रस, गंध स्पर्श आठ निश्चय से नहीं है। इसलिये संसारी जीव नारकी हो या निगोदिया यहाँ तक 13 गुणस्थान व 14 गुणस्थानवर्ती शैलेशी अवस्था में भी जीव व्यवहार से मूर्तिक है। निश्चय से अमूर्तिक है अतः यहाँ अमूर्तिक शक्तियों का वर्णन चल रहा है।

द्रव्यस्वभावभूतध्रौव्यव्ययोत्पादालिङ्गित सदृश विसृद्दशरूपैक स्तित्वमात्रमयी परिणमनः शक्तिः॥ (19)

द्रव्य में जो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य रूप परिवर्तन/परिणमन हो रहा है वह भविष्य में भी होगा व भूतकाल में हो रहा था। किसमें परिवर्तन हुआ स्व-स्वभाव में। क्रोध-मान-माया-लोभ को सामान्य जन स्वभाव मानते है परन्तु ये स्वभाव नहीं विभाव है, कुधर्म, परधर्म, अधर्म, अन्याय अत्याचार हिंसा, झूठ, चोरी है, पाप है। स्थूल-सूक्ष्म का ज्ञान, परम सत्य का ज्ञान सामान्य संस्कृत-प्राकृत व्याकरण ज्ञान से नहीं होगा। इससे परे-

उदयति अस्तमेति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणं।

क्वचिदपि च न विद्मो याति निक्षेप चक्रं॥

किमपरमभिदध्मो धाम्नि सर्वकषेस्मिन्।

अनुभवमुपयाते भाति न द्वैतमेव॥ (9)

उस परम सत्य को जानने के लिये तर्क-वितर्क, मन-इन्द्रियाँ असमर्थ है। स्वभाव में उत्पाद-व्यय ध्रौव्य युक्त सत् नहीं होता न 47 शक्तियाँ होती है न किसी उपाय से ये शक्तियाँ उत्पन्न की जाती है। कर्म बंधन के कारण जीव मूर्तिक बना है। जीव द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म, शरीर व मन से मूर्तिक है। भावमन तक मूर्तिक है। सोना-चांदी तो छोड़े तुम्हारे मन में उत्पन्न राग-द्वेष-संकल्प-विकल्प भी मूर्ति है जो अभी विज्ञान ने भी सिद्ध कर लिया है। राग-द्वेष, संकल्प-विकल्प मन में होने पर तरंगे उत्पन्न होती है। मन भी पौद्गलिक है Brain mental thing, न्यूरान, सेल्स D.N.A., R.N.A भी स्वभाव नहीं। लोग सोचते है मेरी जो मान्यता है, मिथ्या या संकीर्ण धारणा वही धर्म है।

वत्थु सहावो धम्मो जो शुद्धा आत्मा का स्वभाव है वो धर्म प्राप्त करने के लिये व्यवहार धर्म है। द्रव्य की अनन्त पर्यायों में स्वभाव है। Big bang thoery के पहले भी ब्रह्माण्ड था और black hole डार्क मेटर, डार्क एनर्जी ये सब कोई हिडन यूनिवर्स से आया, वो भी अभी पूर्ण निश्चित नहीं है। जब विज्ञान को ज्ञात नहीं तो कानून, राजनीति, संविधान में क्या ज्ञात होगा। तुम भी द्रव्य हो अन्य धर्मादि भी द्रव्य है। तुम्हारे अन्दर जितनी शक्ति है उतनी एटम में भी है। सभी द्रव्यों में भी है।

तीन काल में, काल द्रव्य है, आकाश द्रव्य है। आकाश को space कहते हैं। एक अन्तरिक्ष से दूसरे के बीच में जो पहले था, अभी है, आगे रहेगा वो आकाश द्रव्य सत् है। जहाँ द्रव्य है वहाँ निश्चय से गुण होगा। जहाँ गुण होगा वहाँ निश्चित परिणमन होगा, श्वेताम्बर ग्रंथ में इसे त्रिपदी कहते हैं। यदि अभी कोई द्रव्य है अर्थात् पहले भूतकाल में था व भविष्यकाल में रहेगा ही। वर्तमान के अनुसार तत्त्व का निर्णय होता ही है यह दर्शनशास्त्र, विज्ञान व आध्यात्म में भी बताया गया है। खु=निश्चय से वह ही द्रव्य है। ये सब शक्तियाँ आत्मद्रव्य में ही है व उसमें ही परिणमन होता है। यह अमूर्तत्वशक्ति है।

सकलकर्मकृतज्ञातृत्वमात्रातिरिक्तपरिणामकरणोपरमात्मिका अकर्तृत्व शक्तिः॥ (21)

समस्त कर्मों के द्वारा किये गये, ज्ञातृत्वमात्र भिन्न जो परिणाम उन परिणामों के कारण के उपरम=निवृत्ति स्वरूप अकर्तृत्वशक्ति है।

पुद्गल-कम्मादीणं, कर्ता व्यवहारदो दु णिच्छयदो।

चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं॥ (8) द्र.स.

कर्ता व भोक्ता व्यवहार व निश्चय से। व्यवहार से जीव पुद्गल कर्म का भी कर्ता है। जब आपके मन में, वचन-काया में कम्पन होता है, तब उसके माध्यम से आत्म प्रदेशों में कम्पन होता है। उस कम्पन से ब्रह्माण्ड से कर्म वर्गणाएँ आकर आत्मा के साथ बंधती है। इस दृष्टि से आप (कर्म) पुद्गल के कर्ता बने। कर्ता अर्थात् कर्म को तुमने बनाया नहीं। कर्म तो क्या एक एटम को भी तुम क्या भगवान् भी नहीं बना सकते। द्रव्य को कोई भी नहीं बना सकता। जो तुमने शुभ (अच्छे)

अशुभ (बुरे) भाव किये उससे आकर्षित होकर कर्म आये। पाप-पुण्य रूप बंधे। इसलिये व्यवहार से तुम कर्म के कर्ता हो निश्चय से नहीं। जो क्रोधादि कषाय, राग-द्वेष, ईर्ष्या-घृणा रूप भाव उसके कर्ता तुम हो और उन भावों के कारण तुम स्वयं को बांधते हो। सहज में कर्म वर्गणाएँ ब्रह्माण्ड से आ जाती है।

जैसे कोई चोरी करता है, हत्या, बलात्कार करता है तो पुलिस उसे हथकड़ी से बाँधती है। वह रस्सी या हथकड़ी बांधने में सहयोगी है, ऐसे ही जब कोई जीव मन में संकल्प-विकल्प करता है तो उन परिणामों से कर्म आकर बंधते हैं। संकल्प-विकल्प, क्रोधादि भाव जीव नहीं, शुद्ध आत्मा का यह स्वभाव नहीं। तुम स्वयं सतत् अज्ञानता, मोह से कर्मों को निमंत्रण देते हो व पूरे ब्रह्माण्ड से 343 घन राजू क्षेत्र से तुम्हारे भावों के अनुरूप कर्म परमाणु आकर आमंत्रण, निमंत्रण, आग्रह, हठाग्रह आदि स्वीकार कर तुम्हें बांध लेते हैं। निश्चय से तुम ही अपने कर्म, सुख-दुःख स्वर्ग-नरक निगोद या मोक्ष के कर्ता हो। शुद्ध निश्चय नय से नहीं। शुद्ध निश्चय से तो सत् द्रव्य लक्षणम् है। यह आत्मा का धर्म है।

उच्चतम विज्ञान में यदि एटम व एन्टी एटम मिल जायेंगे तो वहाँ विस्फोट हो जायेगा। एक ग्राम एटम व एन्टी एटम मिल जायेंगे तो पूरी पृथ्वी का विध्वंस हो जायेगा। केवल हिमालय ही नहीं। पुद्गल में इतनी ऊर्जा है तो आत्मा में कितनी ऊर्जा होगी? आत्मा में अनन्तऊर्जा है उसी प्रकार कर्म में व परमाणु में भी अनन्त ऊर्जा है। जीव जब राग-द्वेषादि विभाव भाव करता है तो उनभावों के माध्यम से दोनों ऊर्जा जो ब्रह्माण्ड में सबसे शक्तिशाली है कर्म परमाणु व जीव जहाँ मिल जाते हैं वहाँ विस्फोट हो जाता है, विध्वंस हो जाता है। यही संसार है। इस संसार में दूराचार, पापाचार, अन्याय नरक, निगोद किसके कारण? दोनों विरोधी ऊर्जा मिलने से, आत्मा का स्वभाव तो अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य, समता शान्ति है परन्तु वह विभाव में आ गया इसलिये कर्मों ने आकर जीव को बांध लिया। अज्ञानी, मोही जीव सोचता है यह मेरा शत्रु है। कट्टर धार्मिक भी कोई शुद्ध-बुद्ध-आनन्दमय नहीं वे लोग भी अधिक ईर्ष्या-द्वेष-घृणा, संकल्प-विकल्प, कषायों से ग्रसित हैं। बाह्य में धार्मिक दिखते हैं परन्तु अन्तरंग कलुषित होते हैं। समयसार में बताया गया है कि हर जीव में तीनों प्रकार की, बहिरात्मा, अन्तरात्मा व परमात्मा है। व्यवहार से कर्म किया

तो व्यवहार से कर्म भोगेगा सुख-दुःख रूप में। निश्चय से न कर्म तुमको दुःख देता है न कोई शत्रु न कोई बाह्य तत्त्व तुम्हें कष्ट देता है। तुम्हारा खोटा-छोटा भाव, विपरीत भाव ही तुम्हें कष्ट देता है। ये ही आध्यात्मिक रहस्य है। इसलिये राम, पांडव, तीर्थकरों ने बड़े-बड़े युद्ध किये परन्तु विरक्त हो गये, ऋद्धि सम्पन्न बन गये। जब चक्रवर्ती थे उससे भी अनन्त शक्तिशाली बन गये। तथापि किसी के प्रति कोई ईर्ष्या, घृणा, भेदभाव-द्वेष का भाव नहीं। किसी भी शक्ति का दुरूपयोग तो छोड़े सदुपयोग भी नहीं करते क्योंकि ये आध्यात्मिक शक्तियाँ हैं। आध्यात्म के बिना धर्म केवल सर्प की कांचली के समान है। समस्त धर्म इन आध्यात्मिक शक्तियों को प्राप्त करने के लिये ही है।

तुम किसका कर्ता नहीं हो। शांति-कुन्थु-अरहनाथ भी एक इंच जमीन के कर्ता नहीं थे। तीन-तीन पद के धारी होते हुए भी एक ग्राम मिट्टी के कर्ता नहीं बन सके। एक ग्राम तो क्या एक एटम के भी कर्ता नहीं बन सकते। एक अणु के प्रति भी मोह-आसक्ति, कर्तृत्व-भोक्तृत्व भाव है वहाँ बन्धन है। इसलिये जब चक्रवर्ती थे उस समय की अपेक्षा मुनि बनने पर अधिक शक्ति थी फिर भी वह सीमित शक्ति, अनन्तशक्ति नहीं थी। शुद्ध निश्चयनय से शुद्ध भाव का ही जीव कर्ता-भोक्ता है। ईंट, पत्थर, सोना, चाँदी का नहीं।

संसारी जीव मोहासक्त होकर जो कर्ता-धर्ता बनते वो तो बन्धन है, पर है, माया-मोह, मिथ्या है। हर जीव स्व के अनन्त सुखादि का आत्मवैभव का प्रभु-विभु-ईश्वर है शुद्ध निश्चय नय से 13-14 गुणस्थान से परे। अभी अरहंत भी विदेही नहीं सिद्ध भगवान् विदेही हैं।

**सकलकर्मकृतज्ञातृत्वमात्रातिरिक्तपरिणामानुभवोपरमात्मिका
अभोक्तृत्वशक्तिः॥ (22)**

समस्त कर्मों से किये गये, ज्ञातृत्वमात्र से भिन्न परिणामों के अनुभव की (भोक्तृत्व की) उपरम स्वरूप अभोक्तृत्वशक्ति।

सकलकर्मापरमप्रवृत्तात्मप्रदेशानैष्यंरूपा निष्क्रियत्वशक्तिः॥ (23)

समस्त कर्मों के उपरम से प्रवृत्त आत्मप्रदेशों की निस्पन्दता स्वरूप (अकम्पता) निष्क्रियत्वशक्ति है।

ब्रह्माण्डीय सम्पूर्ण शक्ति में विरोधात्मक शक्ति होगी ही यही परम शक्ति है। अगुरुलघु गुण, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के कारण शुद्ध द्रव्य में सतत अनन्त गुणीत षट्-गुण हानि-वृद्धि होती है। अशुद्ध द्रव्य में इतनी तीव्रता से परिणमन नहीं होता। विज्ञान के अनुसार एटम खण्डित होता जा रहा है। इलेक्ट्रान-प्रोटोन-प्लाज्मा से ले अब क्वॉन्टम तक एटम खण्डित हुआ है उसमें अधिक ऊर्जा, गतिशीलता है वह सुपर कम्प्यूटर से अधिक Powerful है। एटम जितना शुद्ध होता जाता है उतनी अधिक ऊर्जा उसमें उत्पन्न होती है। $E=mc^2$ सूत्र में यह सिद्ध है। इसी प्रकार जब जीव या पुद्गल शुद्ध होते जाते हैं उनमें अनन्त शक्ति प्रगट होती है। धर्म-अधर्म-आकाश-काल शाश्वत शुद्ध होने से उनमें सतत् परिणमन होता है। अशुद्ध द्रव्य अग्नि, हवा यहाँ तक प्रकाश में भी इतनी तीव्रता से परिणमन नहीं होता है। परन्तु यहाँ आचार्यश्री निष्क्रियत्वशक्ति बता रहे हैं। वह कैसे?

सकल धर्म बन्धन से, विकार, विभाव, अशुद्धता से जीव जब ऊपर उठता है, आगे बढ़ जाता है, सभी कर्मों को नष्ट कर बन्धन मुक्त हो जाता है। आत्मप्रदेश निष्कम्प रूप है। 13 गुणस्थान में कायिक कम्पन है, अरिहंत तीर्थंकर भगवान्, सयोग केवली भी परमशुद्ध परमात्मा नहीं है, दिव्यध्वनि रूप में अभी कम्पन है, विहार है परन्तु शैलेश अवस्था में दिव्यध्वनि खिरना बंद, विहार बंद हो जाता है। योग निरोध से आत्मप्रदेशों का कम्पन बन्द हो जाता है, इससे ब्रह्माण्ड से परमाणु खिचकर नहीं आते। 13 गुणस्थान में आत्मप्रदेशों में कम्पन के कारण कर्म परमाणु का आस्रव होता था परन्तु कषाय के अभाव में बंध नहीं होता। वहाँ ईर्यापथ आस्रव हैं। योग निरोध होने से आत्मप्रदेश निष्कम्प होने के कारण अन्तिम द्विचरम समय में 4 अघाति कर्मों का क्षय, पंच लक्षु अक्षरों के उच्चारण काल में करके शुद्ध-बुद्ध-आनन्द बन जाते हैं। निष्क्रिया अर्थात् आत्मप्रदेशों में कम्पन नहीं।

मन में जितने अधिक संकल्प-विकल्प-संक्लेश होंगे उतनी बुद्धि कम, रोग प्रतिरोधक शक्ति कम होती है। जब आत्मप्रदेश निष्कम्प हो जाते हैं तब कर्म बंध नहीं होता। अरहंत अवस्था 13 गुणस्थान में कम्पन होने से एक समयवर्ती बंध है। पूर्ण परमात्मा नहीं बने हैं, जीवन मुक्त केवली है, सदेही है। वहाँ बंध संभव नहीं उपचार से कहा है।

आप का मन जितना-जितना शांत होगा उतने-उतने अंश में कर्म बंध नहीं होगा, उतने-उतने अंश में कर्म निर्जरा होगी, मन को शांति, तृप्ति, आनन्द, संतुष्टि व शारीरिक-मानसिक स्वस्थता होगी। आपका मन जितना चंचल, दुषित, तनावग्रस्त छोटे-छोटे भाव से युक्त होगा उतना पापी व आप कुधर्मी होंगे। केवल बाह्य स्थूल पाप ही पाप नहीं। निगोदिया जीव सूक्ष्म होते हुए भी सप्तक नरक के नारकी से अधिक पापी है। निगोदिया के लिये कहा है-भाव कलंक पहुँडा।

जितना-जितना भाव निर्मल, शान्त उतना धर्म है। यह त्रैकालिक ब्रह्माण्डीय मापदण्ड है। किसी भी धर्म के नाम पर आतंकवाद, फैशन-व्यसन, गुण्डागर्दी हो सब पाप कुधर्म-अधर्म, अन्याय-अत्याचार-भ्रष्टाचार-पापाचार हैं। क्योंकि वह आत्मस्वरूप नहीं, आत्मविशुद्धि, शुद्ध गुण नहीं है वहाँ आत्मा परतंत्र व बंधन में पड़ जाता है। आत्मा स्व अनन्त दर्शन-ज्ञान-सुख-वीर्य को मलिन कर देता है।

वत्थु सहावो धम्मो ये है आत्मधर्म, परम धर्म, आध्यात्मिक धर्म, शाश्वतिक वैश्विक धर्म। जब धार्मिक जुलूस या रथयात्रा निकलती है तब पुलिस की आवश्यकता क्यों? इसका अर्थ आप उदण्डी, अधर्मी हो अनुशासी नहीं हो। सुरक्षा हेतु पुलिस को बुलाते हो। अरे! धर्म तो तीन लोक में शाश्वतिक व आध्यात्मिक गुणों से सहित है। फिर धर्म कार्य में पुलिस क्यों? क्योंकि तुम स्वयं जानते हो कि हम पापी, दुष्ट है अनुशासनहीन है। हमारा मन शान्त व पवित्र नहीं। तुम सोचते हो निष्क्रिय याने साधु को तो कोई काम नहीं, हमारे जैसे असि-मसि आदि षट्कर्म नहीं करते, सांसारिक कार्य नहीं करते तो ये निष्क्रिय है। नहीं! तुम सांसारिक लोगों जैसे विषय-कषायों में, संक्लेश में सक्रिय नहीं है परन्तु आत्म स्वभाव में, षट्-गुण हानि, वृद्धि में, व अपने आत्मगुण बढ़ाने में सतत संलग्न रहते है आत्मविशुद्धि व पवित्रता बढ़ाते है। निष्क्रिय अर्थात् विभाव तुम समझते हो जो निकम्मा, पलायनवादी, अनपढ़-गँवार है वह साधु बनता है। तुम्हारे मन में जो भाव होते है वे किसी न किसी रूप में बाह्य में प्रकट हो जाते है। तुम्हारे पसीने से ज्ञात हो जाता है तुम चोर-डाकू हो या साधु-सज्जन हो। तुम्हारे मन में अस्थिरता है तो तुम्हारे हंसी से, रोने, उठने-बैठने से ज्ञात हो जाता है। चोर-डाकू जो अभ्यास करते है कि मैं चोरी करके, डाका डालके, वैश्यागमन करके भी स्वयं की पहचान को छूपा रखूँगा परन्तु D.N.A., व R.N.A

से सब ज्ञात हो जाता है। खून-पसीना वालों से भी ज्ञात होता है जितना-जितना भाव निष्कलंक, निष्कम्प, पवित्र, स्थिर होते जाते हैं उतने-उतने अंश में आध्यात्मिक गुण प्रकट होते जाते हैं। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है वह समाज में अपनी प्रतिष्ठा व वर्चस्व बढ़ाने के लिए दिखावा व ढोंग रूप में कुछ न कुछ प्रदर्शन करता रहता है। तुम्हारा भाव जितना शान्त, निष्क्रिय होगा उतना अधिक आत्मचिन्तन पवित्रता उदारता में सक्रिय होगा।

आसंसारसंहरनविस्तरनलक्षितकिंचिदून चरमशरीरपरिमाणा वस्थितलोकाकाशसम्प्तिआवयवत्वलक्षणा नियतप्रदेशत्वशक्तिः।

प्रत्येक आत्मा में भले वह निगोदिया हो या नारकी डायनासोर, व्हेल मछली, महामत्स्य, हाथी हो सब में असंख्यात प्रदेश ही है। इसलिए प्रदेशत्व की अपेक्षा कोई छोटा-बड़ा नहीं। गुणों की अपेक्षा भी व द्रव्य दृष्टि से, आध्यात्मिक दृष्टि से भी कोई छोटा-बड़ा नहीं। काल की अपेक्षा भी छोटा-बड़ा नहीं क्योंकि जीव अनादि से है व अनन्त काल तक रहेगा। मात्र भाव अपेक्षा जीव छोटा-बड़ा होता है। खोटा भाव-व्यवहार अहंकार-ममकार, मोह-मिथ्या-मायाचारी से जीव स्वयं छोटा बनता है। स्वयं का अपनमान करता है। अनन्त शक्ति सम्पन्न व गुणों की खान स्वरूप तुम्हारा मान है। इसलिए कोई जीव बूढ़ा हो गया तो वह बड़ा हो गया ऐसा नहीं है। आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त के तीर्थकर सर्वज्ञ बन जाते हैं तो अरबों वर्ष के राजा महाराजाओं के गुरु बन जाते हैं। गुण सर्वत्र पुज्यते। दूसरों के ठगने के ढोंग-पाखण्ड कर समान, कानून, शिक्षा, संविधान मान्यता प्राप्त करते हो यह विभाव है, स्वात्मा का अपमान है। तुम्हारे स्वभाव व गुणों का अपमान है परन्तु जब आपका अपमान होता है तब आप फूल जाते हैं। यही तो कुधर्म, मोह, विभाव, अहंकार, ममकार है। प्रत्येक जीव में एक समान असंख्यात प्रदेश है। चक्रवर्ती के पास अधिक व निगोदिया के पास कम ऐसा नहीं है। चक्रवर्ती के पास जो प्रदेश (क्षेत्र) है व जमीन का टुकड़ा है पुण्य का फल है। परन्तु यह स्वभाव या आत्मा की त्रैकालिक शक्ति नहीं है। कोई भी शक्ति आत्मा का एक प्रदेश भी कम नहीं कर सकती। ये है आत्मगौरव, ज्ञा, श्रद्धा मेरी घर, मेरी पत्नि, मेरा पूत्र इसका अहंकार, ममकार करना मोह, मिथ्यात्व है, ऐसा मिथ्यात्व तो वैज्ञानिकों में भी नहीं। वे जानते हैं कि मलव्यूल, एटम (स्कन्ध, अणु) है D.N.A.,

व R.N.A है। चरबी, मांस, चर्म है। इसलिये वैज्ञानिकों को इससे मोह नहीं होता परन्तु रूढ़िवादी, स्वार्थी, संकीर्ण, धार्मिक लोगों को मोह, आसक्ति होने से मिलावट, भ्रष्टाचार, फैशन-व्यसन करते हैं। वैज्ञानिक जानते हैं मेरा शरीर एटम से बना है जड़ है। जब किसी वस्तु का परमसत्य जानोगे तब धीरे-धीरे आत्मज्ञान, आत्मविशुद्धि, उदारता, पवित्रता बढ़ेगी। जब अन्तरिक्ष में जाते हैं जब सम्पूर्ण पृथ्वी को अपना घर मानते हैं। ब्रह्माण्ड में मात्र पृथ्वी पर ही जीव-जन्तु-मनुष्य है। निश्चय नय से द्रव्य-क्षेत्र-काल-गुण अपेक्षा सभी जीव समान हैं। समाधि का अर्थ है स्व में लीन होना। आध्यात्मिक दृष्टि से मरोगे तो अमृत बन जाओगे। स्व में समावेश, लीन होने के लिये तप त्याग है। आत्मधर्म से परे क्रोधादि विभाव कुधर्म, अधर्म है। वैज्ञानिक किसी भी धर्म को नहीं मानते परन्तु किसी धर्म से घृणा-द्वेष नहीं करते सनम्रता से स्वीकार करते हैं। आत्मा की पवित्रता स्वधर्म शक्ति है। हर द्रव्य के हर प्रदेश में अनन्ता गुण समावेश होते हैं वही स्वधर्म है।

सर्वशरीरैकस्वरूपात्मिका स्वधर्म व्यापकत्वशक्तिः॥ (25)

सर्व शरीरों में एक स्वरूपात्मक ऐसी स्वधर्मव्यापकत्व शक्ति है। (शरीर के धर्म रूप न होकर अपने-अपने धर्मों में व्यापने रूप शक्ति वह स्वधर्म व्यापकत्व शक्ति है। आत्मा के हर प्रदेश में समान रूप से व्याप्त शक्ति व गुण है। नहीं तो षट्गुण हानि-वृद्धि भी नहीं होगी न आत्मा में Balance होगा।

आत्मा की 47 शक्तियाँ

(प्रवचन-8)

दिनांक-23/02/2021

ॐ नमः सिद्धेभ्यः। ॐ नमः सिद्धेभ्यः। ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

न सर्वथा नित्यमुदेत्यपैति

न च क्रिया कारकमत्र युक्तम्।

नैवासतो जन्म सतो न नाशो

दीपस्तमः पुद्गल भावतोऽस्ति॥ (24) स्व.स्तो.

जो सर्वथा नित्य है ऐसे पदार्थ (वस्तु) द्रव्य उत्पन्न नहीं होता, पर्याय उत्पन्न

होती है। अनेकान्त क्या है? जो परमसत्य है उसका कभी नवीन उत्पाद नहीं होता न नाश होता है। प्रायोगिक उदाहरण आचार्य दे रहे हैं कि जब प्रज्वलित दीपक बुझ जाता है तब पहले प्रकाश था अब अन्धेरा आ गया ये सामान्य उदाहरण है। पुद्गल स्कन्ध जैसे है वैसे ही है उनका उत्पाद व नाश नहीं हुआ यह विज्ञान सिद्धान्त है। व्यक्ति अनादिकाल से अनुरागी होने से हठग्राही ही होते हैं। मनुष्य व स्वर्ग के देव तक में आत्म-विशुद्धि नहीं होते हैं। उदारता गुण नहीं आता एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक सब में ऐसा ही होता है। गीता के अनुसार असत्य का अस्तित्व नहीं है। जिसका अभाव है वह उपलब्ध नहीं होगा। जो तत्त्व को जानते हैं वही जान पायेंगे अन्य नहीं। अस्तित्व याने क्या? यहाँ अस्तित्व या अच्यूत है वह परम सत्य है। अनेकान्त को रटने से कोई ज्ञान नहीं होने वाला। जब तक उसको प्रायोगिक रूप में स्वयं में, दृष्टान्त में, विश्व में इसका प्रयोग न करे तब तक नहीं होगा। विज्ञान के शोध के अनुसार इलेक्ट्रान-न्यूट्रान प्रोटोन हजारों वर्षों से है परन्तु प्रायोगिक न होने से नवीन बताया। उसी प्रकार अस्तित्व-नास्तित्व कहने से अनेकान्त नहीं हो जाता। त्रिलोचपण्णति, जयधवला-धवला श्वेताम्बर सूत्र गंध भगवती सूत्र व व्याख्या-प्रज्ञप्ति में अनेकान्त का वर्णन है परन्तु प्रयोग में लाए बिना अनेकान्त समझ में नहीं आ सकता।

जैनधर्म के अनुसार यथार्थ जय-धवलादि महान् ग्रंथ पढ़े बिना परम सत्य को जान नहीं सकते। द्रव्य याने क्या? द्रव्य=रूपया नहीं। विज्ञान के अनुसार द्रव्य=तरल पदार्थ लिक्विड। परन्तु यहाँ द्रव्य याने सत् सत्य तत्त्व जो महानतम शक्ति है। वैश्विक शब्द है द्रव्य! द्रव्य अर्थात् जो अतित=अनन्त पास्ट, फ्यूचर=अनन्त भविष्य, 1 समय वर्तमान, जो आजकल बोलते हो वो वर्तमान नहीं है। जैन धर्मानुसार एक सेंकड में लाखों करोड़ों समय है। जो अनन्त भूतकाल में था, वर्तमान (1 समय) में है व भूतकाल से अनन्तकाल तक रहेगा, वह द्रव्य है। जो कालावाच्छिन्न व छेदावस्था इतना काल नहीं काट सकता, काल को सीमा में नहीं बाँध सकते वह है द्रव्य! संसार का प्रत्येक जीव सुख चाहता है। गहन उपलब्धि भावात्मक, वैचारिक क्रांति, सत्य शान्ति क्रांति, गहन तप विषय को प्रतिपादन करने के लिए कुछ जटिल शक्तियों का वर्णन, अभूतपूर्व अश्रुतपूर्ण शक्तियों का वर्णन कर रहा हूँ।

सर्वशरीरैकस्वरूपात्मिका स्वधर्मव्यापकत्वशक्तिः॥ (25) समयसार.

सर्व शरीरों में एकस्वरूपात्मक ऐसी स्वधर्म व्यापकत्व शक्ति। शरीर के धर्मरूप न होकर अपने-अपने धर्मों में व्यापने रूप शक्ति स्वधर्मव्यापकत्वशक्ति है।

स्वपरसमानासमानासमानत्रिविधभावधारणात्मिका।

साधारणासाधारणसाधारणा साधारण धर्मत्व शक्तिः॥ (26)

स्व-पर के समान-असमान, समानासमान ऐसे तीन प्रकार के भावों की धारणस्वरूप साधारण-असाधारण, साधारणा-साधारण धर्मत्व शक्ति।

उच्चतम, गहनतम शब्द, समानता, असमानता वे दोनों के मिलने से साधारणसाधारण मिश्र शक्ति है। जैसे साधारण छह द्रव्य, सप्त तत्त्व, धर्म, सत्य है व जीव में चैतन्य गुण, शक्ति असाधारण। पुद्गल में स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, असाधारण है। साधारण, असाधारण, मिश्र अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, मूर्तिक, अमूर्तिक शक्तियाँ हैं। जीव की प्रजातियाँ, वृक्ष की प्रजातियाँ-इसके सामान्यतः दो भेद। 1. साधारण वनस्पति 2. प्रत्येक वनस्पति-में आम, अंगूर, इमली, जामून। नींबू आदि अनेक प्रजातियाँ हैं। यहाँ तक की एक पेड़ की सभी पत्तियाँ एक समान नहीं हैं मनुष्य शरीर के दो भाग करे तो वो भी समान नहीं है। एक हाथ, उँगलिया, रोम दूसरे के समान नहीं है। एक समान होना असंभव है।

अनन्तधर्मत्वशक्ति-विलक्षणानंतस्वभावभावितैकभाव-लक्षणा

अनन्तधर्मत्व शक्तिः॥ (27)

विलक्षण (परस्पर भिन्न लक्षणयुक्त) अनन्तस्वभावों से भावित ऐसा एक भाव लक्षण है जिसका वह अनन्तधर्मत्वशक्ति। विलक्षण अनन्त शक्ति, अनन्त स्वभाव-भाव विशेष लक्षण, जो अन्य किसी में विशेषरूप से नहीं है, असाधारण अनन्त, विलक्षण गुण, स्वभाव, विशेष लक्षण, विलक्षण प्रतिभा, अनन्त सुखादि अनन्त धर्मवाला, जहाँ अनन्त का वर्णन चलेगा वहाँ अनन्त ही आयेगा क्योंकि अनन्त धर्म हुए बिना कोई भी द्रव्य अनन्त काल तक रह ही नहीं सकता। अनन्तकाल तक अस्तित्व में रहने के लिए द्रव्य में अनन्तशक्ति, गुण-पर्याय आवश्यक है। इसलिये यहाँ लौकिक गणित, विज्ञान का गणित काम नहीं आयेगा क्योंकि विज्ञान अनन्त का शोध-बोध, प्रयोग कर ही नहीं पाया है। अनन्त को Error या इनफिनिट बोलते हैं।

जीव में अनन्त गुण कब से हैं व कब तक रहेंगे? विलक्षण अनन्त स्वभाव से युक्त एक गुण नहीं है। आत्मा का ज्ञानगुण, अस्तित्व-वस्तुत्व आदि गुण जब तक आत्मा का अस्तित्व है तब तक चेतना, सुख आदि अनन्त गुण आत्मप्रदेशों में सर्वत्र व्याप्त है। यह विलक्षण अनन्त स्वभाव भावित अनन्त धर्मत्व शक्ति है।

विज्ञान के अनुसार पुद्गल में सर्वत्र एटम है। सभी जीव अनन्तधर्मत्व शक्ति से युक्त है। जहाँ आत्मधर्म का वर्णन आयेगा वहाँ धर्म उपलक्षण है वहाँ अहिंसाधर्म रत्नत्रय, समता धर्म आयेगा। परन्तु केवल जीव ही धार्मिक नहीं पुद्गल भी धार्मिक है। धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, वस्तु सहायो धर्मो वस्तु का स्वभाव धर्म है यह व्यापक, वैश्विक परिभाषा है। हमारे में भी अनन्त धर्म है।

तदतद्रूपमयत्व लक्षणा विरुद्धधर्मत्वशक्तिः॥ (28)

तदरूपमयता और अतद्रूपमयता जिसका लक्षण है वह विरुद्धधर्मत्वशक्ति है। ये महत्वपूर्ण शक्ति है। हर धर्म में, हर द्रव्य में विरुद्ध धर्म होगा ही। अगर विरुद्ध धर्म नहीं होगा तो धर्म हो ही नहीं सकता। 10 धर्म नहीं द्रव्य भी नहीं है। आईन्स्टिन भी यहाँ तक नहीं पहुँच पाए थे। जैनाधर्मानुसार चाहे पुद्गल हो या आत्मा में विरोधी धर्म है। बिना विरुद्धधर्म शक्ति के कोई द्रव्य संभव ही नहीं है।

रूढ़िवादी, साधु संत, आस्तिक-नास्तिक, मुसलमान, ईसाई, दिगम्बर जैन, श्वेताम्बर, बौद्ध सभी धर्मी परस्पर विरोधी है। अनेक पंथ भी आपस में विरोधी है। जो उच्चतम विज्ञान पढ़ रहे है वो तो अति सरलता से सीख, समझ रहे है। फिजिक्स, केमेस्ट्री वाले इसे शीघ्रता से समझ पाते है। धर्म में विरुद्ध, आत्मा में विरुद्ध शक्ति है। व्यवहार में भी विरुद्ध शक्ति काम करती है। जैसे कपड़ा ताना-बाना से बनता है, केवल एक ताना या बाना से कपड़ा नहीं बनता। जब तक ताना बाना विरुद्ध दिशा से नहीं आयेगा तब तक कपड़ा बनने का कार्य नहीं हो सकता। शरीर के दोनों भाग भी विरोधी है। अपने ही शरीर का प्रतिपक्षी है। राजनैतिक, व्यापार, धर्म में प्रतिपक्षी होना ये संसार का प्रतिपक्ष है।

जैसे सरल रेखा दो सरल रेखा अनन्त तक बढ़ती आए या बढ़ायी जाए तो कभी एक दूसरे को काटेगी नहीं। आध्यात्मिक सत्य-समता गुण के बिना जो मान, माया, राग-द्वेष, पक्षपात, अहंकार, निंदा, हत्या ये आत्मगुण विरोधी विभाव शक्ति है।

विज्ञान में सह अस्तित्व और जीव में सह अस्तित्व सिद्ध हो गया है। यदि एक जाति लुप्त हो जायेगी तो उनसे अनुशांगिक उसी प्रकार वातावरण, भोजन, व्यवहार में विरुद्ध धर्म शक्ति बिना कुछ संभव नहीं न जीव न अजीव न व्यापारादि में संभव है। एकेन्द्रिय से ले पंचेन्द्रिय जीव में यह शक्ति होती है। हर जीव-प्रभु-विभु है इसके विपरीत विरुद्ध धर्म शक्ति होना अनिवार्य है। इसके बिना सत्य संभव नहीं।

ऐसे परम रहस्य को मूढ़, मोही, स्वार्थी लोक जो स्वयं की आत्महत्या करते है। तत्त्वार्थसूत्र ग्रंथ को दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदाय के लोक मानते हैं। दिगम्बर सिद्धसेन दिवाकर कहते है तो श्वेताम्बर सिद्धसेन गणि। इस ग्रंथ में कहा है कि बिना अनेकान्त लोक व्यवहार भी नहीं चलेगा। अनेकान्त को पूर्वाचार्यों ने तीन लोक गुरु कहकर नमन किया है।

केवल स्वर्ग-मोक्ष, परमसत्य ही नहीं, व्यवहार में, विज्ञान-गणित में छोटा-बड़ा, मेरी सम्पत्ति, तुम्हारी सम्पत्ति सब विभाव भाव है। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। विज्ञान जहाँ तक पहुँचा है मीटर-एन्टिमीटर अति सूक्ष्म विज्ञान है। निगेटिव-पॉसेटिव क्या है? चूम्बक में, शरीर में, नाक, कान हाथ आदि अवयवों में, ब्रह्माण्ड में, पशु-पक्षी में सब में समानान्तर विरुद्ध शक्ति है। धर्म में, व्यापार राजनीति में जो एक-दूसरे के विरुद्ध रहते है, विरोध करते है, वह विरुद्धशक्ति नहीं। वस्तु का सह अस्तित्व होने के लिये विरोध होना आवश्यक, अनिवार्य है। हर विरोधात्मक धर्म अनेकान्त से सिद्ध होता है।

तद्रूपभवनरूपा तत्त्वशक्तिः॥ (29)

तद्रूप भवनरूप ऐसी तत्त्वशक्ति (तत्स्वरूप होनेरूप अथवा तत्स्वरूप परिणमनरूप ऐसी तत्त्वशक्ति आत्मा में है। इस शक्ति से चेतन चेतनरूप से रहता है, परिणमित होता है। परम सत्य, अनेकान्त, वस्तु स्वरूप, अगुरुलघु महान् शक्ति है तत् रूप-द्रव्य का स्वरूप, उस रूप होना, भवन=होना यानि इज नेस, स्वरूप परम सत्य रूप होना यह तत्त्व स्वरूप व अतत्त्व शक्ति में सर्वत्र विरोध और विरोध में समन्वय, अनेकान्त में एकता व्यवहारिक, सामाजिक छोटा विषय है। मनुष्य यदि एकता नहीं अपनायेगा वो व्यवहार धर्म कहाँ है। मनुष्य पक्षी की तरह उड़ा रहा है ये

मछली की तरह तैर रहा है परन्तु भाई से भाई कन्धा मिलाकर नहीं चल सकता। कहाँ है व्यवहार धर्म आध्यात्मिक धर्म तो है ही नहीं। जीव सदा ही पुद्गल अवस्था रहेगा, अन्य तत्त्वरूप में, जीव द्रव्य परिणमन नहीं करेगा। आत्मा में अनन्त गुण व असंख्यात प्रदेश है। परन्तु एक गुण दूसरे गुण रूप परिणमन नहीं करते अस्तित्व द्रव्य का ही है। एकता ही यह अतत्त्व शक्ति है, जीव पुद्गल क्यों नहीं होगा, जीव की शक्ति पुद्गल रूप क्यों नहीं? यह जीव का स्वभाव है, गुण हैनेचर है।

अतद्रूपभवनरूपा अतत्त्वशक्ति ॥ (30)

अतद्रूप भवनरूप ऐसी अतत्त्वशक्ति। (तत्त्वरूप नहीं होने रूप अथवा तत्त्वरूप नहीं परिणमनेरूप अतत्त्वशक्ति आत्मा में है। इस शक्ति से चेतन जड़रूप नहीं होता।)

अनेकपर्याय व्यापकैक द्रव्यमयत्वरूपा एकत्वशक्ति ॥ (31)

अनेक पर्यायों में व्यापक ऐसी एकद्रव्यमयता रूप एकत्व शक्ति है। वस्तु स्वरूप, शुद्ध स्वरूप अनेक पर्याय है। जितने गुण-धर्म पर्याय है, व्यापक रूप से है द्रव्य तद्रूप है। वायरस लेकर मनुष्य, परमात्मा तक जीव द्रव्य अनेक पर्याय रूप है तथापि अगुरुलघु गुण के कारण जीव-अजीव नहीं होता अजीव-जीव नहीं होता। एक गुण, एक पर्याय दूसरे गुण व पर्याय रूप नहीं होता।

सत्ता=परम सत्य, सत्ता सर्व पदार्थ में है। समस्त जीवों में समान्य, पुण्य क्रिया, राजा-महाराजा, कुत्ता, भिखारी की सत्ता समान है। धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य सभी द्रव्यों की सत्ता समान है। डेमो ने सिद्ध किया है कि for the people, by the people, of the people. सत्ता कोई राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री नहीं है। सत्ता जो प्रजा ने इनको दिया है ये। राजनैतिक सत्ता यहाँ नहीं है। यहाँ कौनसी सत्ता? परम सत्ता परम सत्य है। यह मौलिक सत्ता है। समस्त द्रव्य समस्त जीवों में यहाँ सत्ता है। इसे कोई भी मालिक, मजदूर, राजा, शोषक व आध्यात्मिक संत यदि नकारते हैं तो वे मिथ्यादृष्टि मोही, पापी हैं। सत्ता-सत्य रूप, द्रव्य की सत्ता ही विश्वरूप है। मात्र चक्रवर्ती ही नहीं इन्द्र से ले मैं, तुम अनन्त पर्यायों से युक्त प्रत्येक जीव, आधुनिक विज्ञान के अनुसार सूर्य, ग्रह, नक्षत्र D.N.A., व R.N.A क्रान्टम में सत्ता है। अनन्त पर्यायों को समझने के लिए बीगबैंग थ्योरी पर्याप्त व परम सत्य नहीं है।

वैज्ञानिक परम सत्य मानते ही नहीं है। तथापि विज्ञान को समझने के लिए विशेष थ्योरी है। जब जड़ में अनन्त गुण सम्भव है तब एक सीमिरिलीटी सम्पन्न आत्मा में अनन्त गुण क्यों संभव नहीं?

सभी अपनी भौतिक सम्पदा, वैभव को मेरा है ऐसा मानता है फिर तुम स्वयं आत्मा हो, परम सत्य हो अनन्त सत्य, अनन्तपर्याय, अनन्त गुण को क्यों नहीं मानता है।

स पडीपेक्का हवईएक्का-उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, सत्, सत्य में ही होता है। विरुद्धधर्म शक्ति, अनन्तधर्म शक्ति, तत्त्वशक्ति, अतत्त्वशक्ति, एकत्व शक्ति, अनेकत्व शक्ति हर द्रव्य, हर गुण, धर्म प्रतिपक्ष सहित ही होगा। बिना प्रतिपक्ष कोई संभव ही नहीं। वैज्ञानिक इस प्रतिपक्ष को महत्व देते हैं। परन्तु धार्मिक लोक न जानते हैं न मानते हैं। वैज्ञानिक सर्वत्र इसका उपयोग करते हैं। अणु से ले ब्रह्माण्ड तक गेलेक्सी, कम्प्यूटर रोग सभी में उपयोग करते हैं। अनेकान्त सिद्धान्त से ब्रह्माण्ड के समस्त रहस्य समझ में आयेंगे। वैज्ञानिक की जो समस्याएँ हैं सर्वज्ञ भगवान् ने बहुत पहले सुलझा दी है। जितना-जितना सूक्ष्मता से पढ़ेंगे उतनी विचारों में व्यापकता आयेगी। यह सब स्वाभाविक है। ब्रह्माण्ड को समझने के लिये कितना ज्ञान होना चाहिए ये सब उच्चतम सिद्धान्त ग्रंथों में लिखा है। जैसे धवला-जयधवला, भगवती सूत्र, व्याख्याप्रज्ञप्ति आदि ग्रंथ।

आत्मा की 47 शक्तियाँ

(प्रवचन-9)

दिनांक-25/02/2021

ॐ नमः सिद्धेभ्यः। ॐ नमः सिद्धेभ्यः। ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

अब तक विरुद्ध धर्मत्व शक्ति का वर्णन हुआ।

तद्रूपभवन रूप तत्व शक्ति (तत्स्वरूप होन रूप अथवा तत्स्वरूप परिणमन रूप तत्त्वशक्ति आत्मा में है। इस शक्ति से चेतन-चेतनरूप से रहता है परिणमित होता है।) अतद्रूप भवन रूप अतत्त्वशक्ति (तत्स्वरूप नहीं होने रूप अथवा तत्स्वरूप न परिणमने रूप अतत्त्व-शक्ति आत्मा में है। इस शक्ति से चेतन

जडरूप नहीं होता है।) जीव ने अनादि काल से स्व परिचय ही नहीं किया है। जब तक स्व आत्मतत्त्व का ज्ञान नहीं होता तब तक स्व परिचय भी नहीं होता है। आत्मा याने क्या? आत्मा शब्द अत् धातु से बना है। जो स्व गुण-पर्याय में गमन करे परिणमन करे, जो अशुभ-शुभ-शुद्ध भावों में परिणमन करे, जो ज्ञान-दर्शन, वीर्य-अस्तित्व, वस्तुत्व आदि अनन्त शक्तियों में रमण करे, परिणमन करे, निवास करे उसमें लीन रहे वह आत्मा है। आप अपने अनन्त गुण पर्यायों में रहते हो, परिणमन करते हो, सिद्ध भगवान् की आत्मा व निगोदिया जीव की आत्मा में चेतना विशेष गुण है। इस चेतना नामक विशेष गुण छोड़कर अन्य सभी सामान्य गुण सभी द्रव्यों में पाये जाते हैं इसलिए सभी द्रव्य आत्मा है। आत्मा तत्परूप भवन रूव तत्वशक्ति है।

एकत्व, अनेकत्व, भाव-अभाव, क्रिया-कर्तृत्व शक्ति, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण, सम्बन्ध शक्ति ये क्या है? एक उदाहरण से समझते हैं।

पानी को फ्रिज में रखो तो पानी द्रव (लिक्वीड) अवस्था में ठोस (बर्फ) बन जाता है। उस पानी को गरम करो तो वह भाप (वाष्प, स्टीम) बन जाता है। बर्फ बनने के लिए फ्रिज, भाप बनने के लिए ताप (उष्णता) निमित्त है परन्तु बाह्य कारक को प्राप्त करके बर्फ या स्टीम कौन बना? पानी न की चुल्हा या फ्रिज या बर्तन। ये सब निमित्त चाहिये परन्तु परिणमन किसमें हो रहा है पानी में। उसी प्रकार जैन धर्म के अनुसार आत्मा में सभी अभिन्न षट्कारक रूप में परिणमन होता है। आत्मा स्वयं कर्ता, कर्म, करण (साधन) सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण, सम्बन्धकारक है। जैसे-राम आम खाता है। राम=कर्ता, आम=कर्म, खाना=क्रिया। आम पका परन्तु उसमें जो परिपक्वता आयी उसके लिये बाह्य अनेक कारण हैं, पकने के लिये समय चाहिये, पाल चाहिये परन्तु जो परिणमन हो रहा है वह आम में ही हो रहा है। आम का मिठापन कहाँ है आम में यह हुआ सम्बन्ध।

तद्रूप भवनत्व शक्ति=परम सत्य, द्रव्य व्यापक शब्द है। परम सत्य में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड समाया है। अणु से लेकर ब्रह्माण्ड, आत्मा से लेकर परमात्मा तक। जो एक सेकेंड का काल है वह भवन, प्रवर्तमान, प्रेजेंट कन्टीन्युस वह भी स्थूल रूप में है जैसे इसमें अनेक शब्द हो गये। इसलिए यह वर्तमान नहीं है। एक समय

में एक शब्द भी नहीं बोल सकते हो। भव याने एक समय में जो द्रव्य की उपस्थिति, प्रवर्तन है वह भव। सत्य शाश्वत है। त्रिकाल अबाधित है। अनन्त भूतकाल व अनन्त भविष्यकाल व एक समयवर्ती वर्तमान काल। भूतकाल माने प्रध्वंसा भाव जो उत्पन्न होकर नष्ट हो गया। प्राग्भाव जो आगे होनेवाला है, अभी हुआ नहीं है। द्रव्य, तत्त्व वर्तमान में ही जीवित रहता है। मैं (कनकनन्दी) अभी जिस पर्याय में हूँ वह वर्तमान पर्याय/में अनन्त भूत पर्यायों में वेश्या, देव, चांडाल, पशु, दार्शनिक संत बना परन्तु वो पर्याय अभी नहीं। विज्ञान मौलिक सिद्ध करना चाहता है परन्तु अभी हुआ नहीं। आगे स्वर्ग से मोक्ष जाऊँगा वह मेरी भावी पर्याय है। परन्तु वर्तमान में नहीं। यदि वर्तमान में होता तो मैं सर्वज्ञ होता, ब्रह्माण्ड का ज्ञाता-दृष्टा होता। अभी वर्तमान पर्याय में यह शक्ति रूप में है परन्तु अभिव्यक्ति रूप में नहीं हूँ। अनन्त दर्शन-ज्ञान-सुख-वीर्य यह मेरी भावी पर्याय है। भाव अर्थात् द्रव्य। द्रव्य कौनसा? वर्तमान एक समय में जो प्रवर्तन कर रहा है। जिसको एवंभूत नय कहते हैं। जो जैसा है उसे उसी रूप में मानना एवंभूत नय है। उदा. कोयल बगीचे में गा रहा है। क्या कोयल सम्पूर्ण शरीर से गा रहा है? नहीं मात्र कंठ से गा रहा है यह हुआ एवंभूतनय से कथन। विज्ञान भी क्रान्ति तक पहुँच गया है।

अतत् रूप भवनत्व शक्ति—तत् रूप भवन शक्ति, अतत् रूप भवन शक्ति, प्रत्येक द्रव्य में विरोधी गुण है। जीव अनादिकाल से नरक निगोद में रहा। जीव-जीव रूप में तो परिणमन करेगा परन्तु अजीव रूप नहीं होगा यह जीव की अतत् रूप भवनत्व शक्ति है। अस्ति रूप में जीव तत्त्व है नास्ति रूप में जड़ नहीं है। आत्मा की चैतन्य शक्ति अचेतन रूप परिणमन नहीं करती। विरुद्ध शक्ति आवश्यक है नहीं तो जीव अजीव हो जायेगा व अजीव जीव। तत्त्व के लिए अतत्त्व निगेटिव है। अस्ति के लिए नास्ति निगेटिव है। नकारात्मक का अर्थ दीन-हीन भावना नहीं।

तुम तुम्हारे लिए सकारात्मक (तत् भावन रूप) हो दूसरे के लिए नकारात्मक (निगेटिव)। अनात्म भाव-व्यवहार है। शुभ-अशुभ-शुद्ध भाव रूप अनेक पर्याय, एकत्व शक्ति होते हुए भी अनेक पर्याय में व्याप्त एक जीव द्रव्य चाहे निगोद में रहे या 84 लाख योनि में रहे या परमात्मा अवस्था में रहे परन्तु एकत्व शक्ति से हर पर्याय में एक जीव द्रव्य ही रहेगा। एकेला ही रहेगा। विरुद्ध धर्म शक्ति ही अनेकान्त है।

अनेकपर्याय व्यापकैक द्रव्यमयत्वरूपा एकत्वशक्तिः॥ (31)

अनेक पर्यायों में व्यापक एकद्रव्यमयातारूप एकत्व शक्ति है।

सभी पर्यायें उसी द्रव्य, तत्त्व, सत्य में हैं। इसलिये पर्याय अनन्त है तो द्रव्य एक है एकत्वशक्ति आत्मा की है। इसे स्थूल रूप से समझते हैं। मनुष्य प्रजातियाँ, पशु की भी अनेक प्रजातियाँ हैं परन्तु पशु/मनुष्य की पर्याय एक। मनुष्य, तिर्यच गति एक। यहाँ जो एकत्व शक्ति है-वह एक मनुष्य अन्य मनुष्य नहीं होगा। गति अपेक्षा व व्यवहार, सामाजिक एकत्व है। ये परम शुद्ध आध्यात्मिक एकत्व नहीं है। सूक्ष्म दृष्टि से देखे तो द्रव्य दृष्टि से एक, पर्याय दृष्टि से अनेक, यही आध्यात्मिक परम सत्य शाश्वत है।

एक द्रव्यव्याप्यानेकपर्यायमयत्वरूपा अनेकत्वशक्तिः॥ (32)

एक द्रव्य से व्याप्य जो अनेक पर्यायें उसमयपने रूप अनेकत्वशक्ति।

भूतावस्थात्वरूपा भावशक्तिः॥ (33)

विद्यमान-अवस्थायुक्तातरूप भावशक्ति है। (कोई एक अवस्था जिसमें विद्यमान हो उस रूप भावशक्ति)

भाव का अर्थ वस्तु का बाजार भाव (मूल्य, किमत) नहीं, भाव याने वर्तमान काल, विद्यमान, एक समयवर्ती द्रव्य की पर्याय, प्रवर्तमान, वर्तमान-जिस समय में जो द्रव्य जिस अवस्था में रहता है वह अवस्था है।

भाव शक्ति-

शून्यावस्थात्वरूपा अभावशक्तिः॥ (34)

शून्य (अविद्यमान) अवस्थायुक्तता रूप अभावशक्ति। शून्य क्या है? लोक-अलोक में पूर्ण शून्य कही भी नहीं है। जैसे सामान्यतः यहाँ आकाश, बादलों से शून्य है परन्तु क्या पूरी पृथ्वी में आकाश में बादल नहीं है? नहीं पृथ्वी के किसी न किसी भाग में बादल है, वर्षा भी हो रही है।

शून्य याने अविद्यमान, वर्तमान में नहीं है। अभाव अर्थात् जो भूत में ही, वर्तमान में भी शून्य, भावि काल में भी शून्य है। जिसका अभाव है अर्थात् अभाव का यहाँ अर्थ है अभी भूत में मैं नहीं हूँ, भले मैं अनन्तबार निगोद गया परन्तु वर्तमान में निगोदिया नहीं हूँ। यह अविद्यमान है। यहीं है शून्य। यहाँ शून्य अभाव रूप में नहीं

है। भाव-अभाव, एकत्व-अनेकत्व आदि एक ही द्रव्य में ऐसी अनन्त विरोधात्मक शक्तियाँ हैं। अनन्त विरुद्ध धर्मात्मक शक्तियाँ होने पर भी आत्मा एक शाश्वत, अविनाशी, परिणमनशील है स्वतन्त्र कर्ता है। अनन्तगुणधर्म होने के कारण जीव कार्य करता है। तो यहाँ शून्य क्या हुआ अविद्यमान अवस्था युक्त अभावशक्ति जो निश्चित अवस्था में निश्चित पर्याय में अन्य पर्याय का अभाव।

आचार्य विद्यानन्दी-प्रत्येक शब्द जो अस्ति-नास्ति परक है वही अनेकान्त धर्म है। अपने स्व-स्वरूप का चिंतन करो यह सकारात्मक विचार है। ब्रह्माण्ड का ऐसा कोई भी भाग, क्षेत्र नहीं जो एकदम शून्य हो। प्रत्येक द्रव्य में पर्याय में शून्यता है यह अनेकान्त स्याद्वाद से सिद्ध कर सकते हैं। एक द्रव्य में जो विशेष गुण है वह दूसरे द्रव्य में नहीं पाया जाता है।

जिज्ञासा-समाधान

प्रश्न- डॉ. जीवराज जी-शून्य वर्गणा किसे कहते हैं व अग्राह्य वर्गणा किसे कहते हैं? ये बादर होती है या सूक्ष्म? जो अग्राह्य वर्गणायें हैं क्या हम इन्हें चक्षु से देख सकते हैं या किसी यंत्र से नाप सकते हैं?

गुरुदेव-पुद्गल के दो भेद हैं अणु व स्कन्ध।

एक है वर्गणा, जिसका वर्णन उच्चतम ग्रंथों में ही पाया जाता है।

अभी जो वर्तमान वैज्ञानिक रिसर्च कर रहे हैं क्वॉन्टम डार्क मेटर, डार्क एनर्जी एटम जिसे विज्ञान जानता है अविभाज्य जैन धर्म के अनुसार वह स्कन्ध ही है। वर्गणा क्या है? वर्गों का समूह।

द्रव्यमन के साथ-साथ मन में उत्पन्न होने वाले संकल्प-विकल्प, राग, द्वेष, ईर्ष्या, आकर्षण-विकर्षण भी कदाचित् भौतिक हैं। इतना ही नहीं कर्म परमाणुओं के क्षयोपशम से जायमान ज्ञान, भाव, संवेग आदि भी कदाचित् सूक्ष्म भौतिक हैं क्योंकि भौतिक कर्म परमाणुओं से समिश्रित हैं। इसलिए उपर्युक्त संकल्प विकल्प से लेकर ज्ञान आदि अनन्त शक्ति, सम्पन्न नहीं हैं, निर्बाध नहीं है। परन्तु जीव के जो कर्म से रहित शुद्ध ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्यादि गुण हैं वे अनन्त हैं अक्षय हैं, अव्याबाध हैं क्योंकि शुद्ध द्रव्य में अनन्त शक्ति प्रकट होती है। जिस प्रकार शुद्ध जीव में अनन्त शक्ति है उसी प्रकार शुद्ध परमाणु, अकाश आदि द्रव्य में भी अनन्त शक्ति होती है।

पुद्गल मुख्यतः 1) शुद्ध (परमाणु) 2) अशुद्ध (वर्गणा, स्कन्ध) रूप में उपलब्ध होता है। ब्रह्माण्ड में सर्वत्र व्याप्त अनन्तानन्त परमाणुओं का आकार-प्रकार, गुण- धर्म एक ही प्रकार का होता है। यह सर्व परमाणु अदृश्य, अग्राह्य आदि पूर्वोक्त विशेषाओं से युक्त है। सम्पूर्ण विश्व में 23 वर्गणायें ठसाठस भरी हुई हैं। वर्गणा में परमाणु समूह (सम्मिलित, ग्रूप) रूप में रहते हैं परन्तु परस्पर बन्धते नहीं हैं अर्थात् अबन्ध अवस्था में रहते हैं। वे 23 वर्गणायें यथा-

1) अणुवर्गणा-Atom, 2) संख्याताणु वर्गणा-Numerable, 3) असंख्याताणु वर्गणा-Innumerable, 4) अनन्ताणु वर्गणा-Infinite 5) आहार वर्गणा-ssimilation, 6) अग्राह्य वर्गणा-Unreceivable, 7) तैजस वर्गणा-Electric, 8) अग्राह्य वर्गणा-Unreceivable, 9) भाषा वर्गणा-Speech, 10) अग्राह्य वर्गणा-unreceivable; 11) मनोवर्गणा-Mind, 12) अग्राह्य वर्गणा-unreceivable, 13) कार्माण वर्गणा- Karmic, 14) ध्रुव वर्गणा Fixed, 15) सान्तर निरन्तर वर्गणा-Inter-non-Inter, 16) शून्य वर्गणा-Indiffirent, 17) प्रत्येक वर्गणा-Individual 18) ध्रुव शून्य वर्गणा-Indiffirent, 19) बादर निगोद वर्गणा-Gross common body, 20) शून्य वर्गणा-Indiffirent, 21) सूक्ष्म निगोद वर्गणा-Fine Common body, 22) शून्य वर्गणा-Sphere 23) महास्कन्ध वर्गणा-Great Molecule,

उपरोक्त 23 वर्गणाओं में से 1) आहार वर्गणा 2) तैजस वर्गणा 3) भाषा वर्गणा 4) मनोवर्गणा 5) कार्माण वर्गणा 6) प्रत्येक शरीर वर्गणा 7) बादर निगोद वर्गणा 8) सूक्ष्म निगोद वर्गणा ही ब्रह्माण्ड के जीवों के उपयोग में आती हैं। शेष 15 वर्गणायें विश्व की रचना; व्यवस्था में काम आती हैं।

अणुसंख्यासखेज्जाणंता य अगेज्जगेहिं अतरिया

आहारतेजभासामण कम्मइया धुवक्खंधा।। (594)

बादरणिगोदसुणा सुहमणिगोदाणभो महाक्खंधा।। (595) गो.जी.

(1) अणुवर्गणा (2) संख्याताणु वर्गणा (3) असंख्याताणु वर्गणा (4) अनन्ताणु वर्गणा (5) आहार वर्गणा (6) अग्राह्य वर्गणा- (7)तैजस वर्गणा (8)अग्राह्य वर्गणा (9) भाषा वर्गणा (10) अग्राह्य वर्गणा (11) मनोवर्गणा

(12) अग्राह्य वर्गणा (13) कार्माण वर्गणा (14) ध्रुव वर्गणा (15) सान्तर निरन्तर वर्गणा (16) शून्य वर्गणा (17) प्रत्येक शरीर वर्गणा (18) ध्रुव शून्य वर्गणा (19) बादर निगोद वर्गणा (20) शून्य वर्गणा (21) सूक्ष्म निगोद वर्गणा (22) शून्य वर्गणा (23) महास्कन्ध वर्गणा।

1) अणुवर्गणा-एक-एक परमाणुओं को अणु वर्गणा कहते हैं।

2) संख्याताणु वर्गणा-द्वयणुक से लेकर एक-एक परमाणु बढ़ते-बढ़ते उत्कृष्ट संख्यात परमाणुओं के स्कन्ध पर्यन्त संख्याताणु वर्गणा हैं।

3) असंख्याताणु वर्गणा-जघन्य परिमितासंख्यात परमाणुओं से लेकर एक-एक अणु बढ़ते-बढ़ते उत्कृष्ट असंख्यात परमाणुओं के स्कन्ध पर्यन्त असंख्याताणुवर्गणा है।

4) अनन्ताणु वर्गणा-संख्याताणु वर्गणा और असंख्याताणु वर्गणा में विवक्षित वर्गणा को लाने के लिए गुणकार नीचे की वर्गणा से विवक्षित वर्गणा में भाग देने से जो प्रमाण आवे उतना है। जैसे द्वयणुक लाने के लिए द्वयगुण का गुणकार द्वयगुण से त्रयगुण में भाग देने पर जितना प्रमाण आवे उतना है उसके अनन्तर उत्कृष्ट असंख्याताणु वर्गणा में एक परमाणु अधिक होने पर अनन्ताणु का जघन्य होता है। उसे सिद्ध राशि के अनन्तवें भाग प्रमाण अनन्त से गुणा करने पर अनन्ताणु वर्गणा का उत्कृष्ट होता है।

5) आहार वर्गणा-उसमें एक परमाणु अधिक होने पर उससे ऊपर की आहार वर्गणा का जघन्य होता है। उसमें सिद्ध राशि के अनन्तवें भाग देने पर जो लब्ध आवे उसे जघन्य में मिलाने पर आहार वर्गणा का उत्कृष्ट होता है।

6) अग्राह्य वर्गणा-उत्कृष्ट आहार वर्गणा में एक परमाणु अधिक होने पर उससे ऊपर की अग्राह्य वर्गणा का जघन्य होता है। उसमें सिद्धराशि के अनन्तवें भाग से भाग देने से जो लब्ध आवे उसे उसी में मिला देने पर अग्राह्य वर्गणा का उत्कृष्ट होता है।

7) तैजस वर्गणा-इसमें एक परमाणु अधिक होने पर उससे ऊपर की तैजस शरीर वर्गणा का जघन्य होता है। उसमें सिद्धराशि के अनन्तवें भाग देने से जो लब्ध आवे उसे उसी में मिलाने पर तैजस शरीर वर्गणा का उत्कृष्ट होता है।

8) **अग्राह्य वर्गणा**—उसमें एक परमाणु अधिक होने पर उससे ऊपर की अग्राह्य वर्गणा का जघन्य होता है। उसमें सिद्धराशि के अनन्तवें भाग से गुणा करने पर अग्राह्य वर्गणा का उत्कृष्ट होता है।

9) **भाषा वर्गणा**—उसमें एक परमाणु अधिक होने पर उससे ऊपर की भाषा वर्गणा का जघन्य होता है। उसमें सिद्धराशि के अनन्तवें भाग से भाग देने पर जो लब्ध आवे उसे उसी में मिलाने पर भाषा वर्गणा का उत्कृष्ट होता है।

10) **अग्राह्य वर्गणा**—उसमें एक परमाणु अधिक होने पर उससे अनन्तगुणा अग्राह्य वर्गणा का उत्कृष्ट होता है।

11) **मनोवर्गणा**—उसमें एक परमाणु अधिक होने पर उससे ऊपर की मनोवर्गणा का जघन्य होता है। उसमें सिद्धराशि के अनन्तवें भाग से भाग देने पर जो लब्ध आवे उसे उसी में मिला देने पर मनोवर्गणा का उत्कृष्ट होता है।

12) **अग्राह्य वर्गणा**—उसमें एक परमाणु अधिक होने पर उससे ऊपर की अग्राह्य वर्गणा का जघन्य है। उससे अनन्तगुणा उसका उत्कृष्ट है।

13) **कार्माण वर्गणा**—उससे एक परमाणु अधिक होने पर उससे ऊपर की कार्माण वर्गणा का जघन्य है। उसमें सिद्धराशि अनन्तवें भाग देने पर जो लब्ध आवे उसे उसी में मिलाने पर कार्माण वर्गणा का उत्कृष्ट होता है।

14) **ध्रुव वर्गणा**—उससे एक परमाणु अधिक होने पर उससे ऊपर की ध्रुव वर्गणा का जघन्य है। उसे अनन्त जीवराशि से गुणा करने पर ध्रुव वर्गणा का उत्कृष्ट होता है।

15) **सान्तर निरन्तर वर्गणा**—उससे एक परमाणु अधिक होने पर उससे ऊपर की सान्तरनिरन्तर वर्गणा का जघन्य है। उसे अनन्तजीवराशि से गुणा करने पर उसका उत्कृष्ट होता है। यहाँ इतना विशेष है कि परमाणुवर्गणा से लेकर सान्तरनिरन्तर वर्गणा पर्यन्त पन्द्रह वर्गणाओं का समानघन अनन्तगुणे पुद्गलों का वर्गमूल प्रमाण होने पर भी क्रमसे विशेषहीन है। उनका प्रतिभागहार सिद्धराशि का अनन्तवाँ भाग है।

16) **शून्य वर्गणा**—उत्कृष्ट सान्तरनिरन्तर वर्गणा में एक परमाणु अधिक होने पर उससे ऊपर की शून्य वर्गणा का जघन्य होता है। उससे अनन्त गुणी जीवराशि के प्रमाण से गुणा करने पर उसका उत्कृष्ट होता है।

17) **प्रत्येक शरीर वर्गणा**—इससे ऊपर प्रत्येक शरीरवर्गणा है। एक जीव के एक शरीर के विस्त्रसोपचय सहित कर्म- नोकर्म के स्कन्ध को प्रत्येक शरीर वर्गणा कहते हैं। शून्य वर्गणा के उत्कृष्ट से एक परमाणु अधिक जघन्य प्रत्येक शरीर वर्गणा होती है। जिसके कर्म के अंश क्षय रूप हुए हैं ऐसा कोई क्षपित कर्मांश जीव एक पूर्वकोटी वर्ष आयु लेकर मनुष्य जन्म धारण करके अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष के ऊपर सम्यक्त्व और संयम को एक साथ स्वीकार करके सयोगकेवली हुआ। वह कुछ कम एक पूर्व कोटी पर्यन्त औदारिक शरीर और तैजसशरीर की अवस्थिति गणना के अनुसार निर्जरा करता हुआ और कार्मण शरीर की गुणश्रेणि निर्जरा करता हुआ अयोगकेवली के चरम समय को प्राप्त हुआ। उसके आयु कर्म औदारिक और तैजस शरीर के साथ नाम, गोत्र, वेदनीय कर्म के परमाणुओं का समूह रूप जो तीन शरीरों का स्कन्ध होता है वह जघन्य प्रत्येक शरीरवर्गणा होती है। इस जघन्य को पल्य के असंख्यातवें भाग से गुणा करने पर उत्कृष्ट प्रत्येक शरीर वर्गणा होती है। नंदीश्वर द्वीप के अकृत्रिम महाचैत्यालयों के धूपघटों में और स्वयम्भूरमण द्वीप में उत्पन्न दावाग्नि में असंख्यात आवली के वर्ग प्रमाण बादर पर्याप्त तैजस्काधिक जीवों के शरीर का एक स्कन्ध रूप है। उनमें गुणित कर्मांश जीव बहुत अधिक होने पर भी आवली के असंख्यातवें भागमात्र का विस्त्रसोपचयसहित उत्कृष्ट संयम उत्कृष्ट प्रत्येक शरीरवर्गणा है।

18) **ध्रुव शून्य वर्गणा**—उसमें एक परमाणु अधिक होने पर जघन्य ध्रुवशून्यवर्गणा होती है। इस जघन्य को सब मिथ्यादृष्टि जीवों के प्रमाण को असंख्यात लोक से भाग देने पर जो प्रमाण आवे उससे गुणा करने पर उत्कृष्ट भेद होता है।

19) **बादर निगोद वर्गणा**—उससे एक परमाणु अधिक बादरनिगोद वर्गणा है। बादरनिगोदिया जीवों के विस्त्रसोपचय सहित कर्म-नोकर्म परमाणुओं के एक स्कन्ध को बादरनिगोद वर्गणा कहते हैं। वह कहाँ पाई जाती है यह कहते हैं— क्षपित कर्मांश लक्षण वाला कोई जीव एक पूर्वकोटी वर्ष की आयु वाला मनुष्य हुआ। अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष के ऊपर सम्यक्त्व और संयम को एक साथ धारण करके कुछ कम पूर्व कोटीवर्ष पर्यन्त कर्मों की उत्कृष्ट गुणश्रेणि निर्जरा करते हुए जब सिद्ध पद प्राप्त करने में अन्तर्मुहूर्तकाल शेष रहा तब क्षपक श्रेणी पर आरोहण करके

कर्मों की उत्कृष्ट निर्जरा करता हुआ क्षीणकषायगुणस्थानवर्ती हुआ। उसके शरीर में जघन्य और उत्कृष्ट से आवली के असंख्यातवें भागमात्र पुलवी एक बन्धनबद्ध होती है, क्योंकि सब स्कन्धों में पुलवी असंख्यातलोकमात्र कहे हैं। एक-एक पुलवी में असंख्यातलोक प्रमाण शरीर होते हैं। सो आवली के असंख्यातवें भाग को असंख्यात लोक से गुणा करने पर शरीरों का प्रमाण होता है। उन शरीरों के प्रमाण के एक शरीर में रहनेवाले निगोदिया जीवों के प्रमाण से गुणा करने पर जितना प्रमाण हो उतना एक स्कन्ध में निगोदिया जीवों का प्रमाण जानना। इनमें से क्षीणकषाय गुणस्थान के प्रथम समय में अनन्त जीव स्वयं आयु पूरी होने से मरते हैं। दूसरे समय में पहले समय में मरे हुए जीवों के प्रमाण में आवली के असंख्यातवें भाग से भाग देकर जो प्रमाण आवे उतने अधिक जीव मरते हैं। इस प्रकार क्षीण कषाय गुणस्थान के प्रथम समय से लेकर आवली पृथक्काल तक आवली के असंख्यातवें भाग अधिक जीव प्रतिसमय क्रम से तब तक मरते हैं जब तक क्षीण कषाय गुणस्थान का काल आवली के असंख्यातवाँ भाग मात्र शेष रहता है। उसके अनन्तर समय में प्रत्येक असंख्यातवें भाग से गुणित जीव मरते हैं। उसके पश्चात् पूर्व-पूर्व समय में मरे जीवों को संख्यात पत्य से गुणा करने पर जो प्रमाण हो उतने-उतने जीव क्षीणकषाय गुणस्थान के अन्तिम समयपर्यन्त प्रतिसमय मरते हैं। सो अन्त के समय में अलग-अलग असंख्यात लोक मात्र शरीरों युक्त आवली के असंख्यातवें भाग पुलवियों में जो गुणित कर्माश जीव मरे उनसे हीन शेष जो अनन्तानन्त जीव गुणित कर्माश रहे, उनके विस्त्रसोपचय सहित जो औदारिक, तैजस और कार्मण शरीर के परमाणुओं का स्कन्ध वह जघन्य बादरनिगोद वर्गणा है।

20) ध्रुवशून्यवर्गणा-इसमें एक परमाणुहीन करने पर उत्कृष्ट ध्रुवशून्यवर्गणा होती है।

21) सूक्ष्म निगोद वर्गणा-(उत्कृष्ट बादरनिगोद वर्गणा)-इस जघन्य को जगत् श्रेणी के असंख्यातवें भाग से गुणाकरने पर उत्कृष्ट बादर निगोदवर्गणा है। स्वयम्भूरमणद्वीप में जो मूलक आदि सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतियों के शरीर हैं उनमें एक बन्धनबद्ध जगत् श्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण पुलवियों में रहने वाले गुणितकर्माश अनन्तानन्त बादरनिगोद जीवों का विग्रसोपचय सहित औदारिक तैजास,

कार्मणशरीर का उत्कृष्ट शरीर है वह उत्कृष्ट बारनिगोद वर्गणा है, उसमें एक परमाणु अधिक होने पर तीसरी शून्यवर्गणा का जघन्य होता है। वो कैसे हैं सो कहते हैं-जल-थल अथवा आकाश में एक बन्धबद्ध आवली के असंख्यातवें भाग पुलवियों में क्षपितकर्मांश अनन्तानन्त सूक्ष्म निगोद जीव रहते हैं। उनके विस्त्रसोपचय सहित औदारिक, तैजस, कार्माण, शरीर का संचय सूक्ष्मनिगोद जघन्य वर्गणा है। उसमें एक परमाणु हीन करने पर तीसरी शून्यवर्गणा का उत्कृष्ट होता है।

शंका-बादरनिगोदवर्गणा के उष्कृष्ट में पुलवियाँ श्रेणी के असंख्यातवें भाग कही हैं और सूक्ष्मनिगोदवर्गणा के जघन्य में आवली के असंख्यातवें भाग कही हैं। अतः बादरनिगोद वर्गणा से पहले सूक्ष्मनिगोद वर्गणा होनी चाहिए क्योंकि पुलवियों का प्रमाण बहुत होने से परमाणुओं का प्रमाण बहुत होना सम्भव है?

समाधान-नहीं, क्योंकि बादरनिगोदवर्गणा के शरीरों से सूक्ष्मनिगोदवर्गणा के शरीरों का प्रमाण सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग गुणित है। इससे वहाँ जीव भी बहुत हैं। अतः उन जीवों के तीन शरीर सम्बन्धी परमाणु भी बहुत हैं। जघन्य सूक्ष्मनिगोदवर्गणा को पल्य के असंख्यातवें भाग से गुणा करने पर उष्कृष्ट सूक्ष्मनिगोदवर्गणा होती है। सो कैसे यह कहते हैं।

महामत्स्य के शरीर में एक बन्धबद्ध आवली के असंख्यातवें भागमात्र पुलवियों में स्थित गुणित कर्मांश अनन्तानन्त जीवों के विस्त्रसोपचय सहित औदारिक, तैजस, कार्माण शरीरों के परमाणुओं का स्कन्ध है वहीं उष्कृष्ट सूक्ष्मनिगोदवर्गणा होती है।

22) शून्य वर्गणा-(नभोवर्गणा)-उसमें एक परमाणु अधिक करने पर नभोवर्गणा का जघन्य होता है। इसको जगत्प्रतर के असंख्यातवें भाग से गुणा करने पर नभोवर्गणा का उष्कृष्ट होता है।

23) महास्कन्ध वर्गणा-उसमें एक बढ़ाने पर महास्कन्धवर्गणा का जघन्य है। इसमें उसी पल्य का असंख्यातवाँ भाग बढ़ाने पर महास्कन्ध वर्गणा का उष्कृष्ट होता है।

ग्रहणीय 8 वर्गणायें-

1) **आहार वर्गणा**-अनन्तानन्तप्रदेशी परमाणु पुद्गल द्रव्यवर्गणा जो उत्कृष्ट है, उसमें एक अंक मिलाने पर जघन्य आहार द्रव्यवर्गणा होती है। फिर एक-एक अधिक के क्रम से अभव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भाग प्रमाण भेदों के जाने पर अन्तिम आहार द्रव्यवर्गणा होती है। यह जघन्य से उत्कृष्ट विशेष अधिक हैं। विशेष का प्रमाण अभव्यों से अनन्तगुणा अर्थात् सिद्धों के अनन्तवें भाग प्रमाण होता हुआ भी, उष्कृष्ट आहार द्रव्यवर्गणा के अनन्तवेंभाग प्रमाण हैं। औदारिक, वैक्रियक और आहारक शरीर के योग्य पुद्गल स्कंधों की आहार द्रव्यवर्गणा संज्ञा है। आहारवर्गणा के असंख्यात खण्ड करने पर बहुभाग प्रमाण आहारक शरीर प्रायोग्य वर्गणाग्र होता है। शेष के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग प्रमाण वैक्रियक शरीर प्रायोग्य होता है तथा शेष एक भाग औदारिक शरीर प्रायोग्य वर्गणाग्र होता है। (धवला पु. 14 पृ.560) यह पाँचवी वर्गणा है।

2) **तैजस वर्गणा**-उष्कृष्ट अग्रहण द्रव्यवर्गणा में एक अंक मिलाने पर सबसे जघन्य तैजस शरीर द्रव्यवर्गणा होती है। पुनः एक-एक अधिक के क्रम से अभव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भाग प्रमाण स्थान जाकर उत्कृष्ट तैजस-शरीर-द्रव्य-वर्गणा होती है। यह अपने जघन्य से उत्कृष्ट विशेष अधिक है। अभव्यों से अनन्त गुणा और सिद्धों के अनन्तवें भाग प्रमाण विशेष का प्रमाण है। इसके पुद्गल स्कन्ध तैजस शरीर के योग्य होते हैं, इसलिए यह ग्रहण वर्गणा हैं यह सातवीं वर्गणा है।

3) **भाषा वर्गणा**-दूसरी उत्कृष्ट अग्रहण द्रव्यवर्गणा में एक अंक के प्रक्षिप्त करने पर सबसे जघन्य भाषा द्रव्यवर्गणा होती है। इससे आगे एक-एक अधिक के क्रम से अभव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भाग प्रमाण जाकर भाषा द्रव्यवर्गणा सम्बन्धी उत्कृष्ट द्रव्यवर्गणा होती है। यह अपने जघन्य से उत्कृष्ट विशेष अधिक है। अपनी जघन्य वर्गणा का अनन्तवाँ भाग विशेष का प्रमाण है। भाषा द्रव्यवर्गणा के परमाणु पुद्गलस्कन्ध चारों भाषाओं के योग्य होते हैं तथा ढोल, भेरी, नगारा और मेघ की गर्जना आदि शब्दों के योग्य भी ये ही वर्गणायें होती हैं।

4) **मनोद्रव्यवर्गणा:**—तीसरी उत्कृष्ट अग्रहण द्रव्यवर्गणा में एक अंक मिलाने पर जघन्य मनोद्रव्यवर्गणा होती है। फिर आगे एक-एक अधिक के क्रम से अभव्यों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भाग प्रमाण स्थान जाकर उत्कृष्ट मनोवर्गणा होती है। यह अपने जघन्य से उत्कृष्ट वर्गणा विशेष अधिक है। विशेष का प्रमाण जघन्य मनोद्रव्य वर्गणा का अनन्तवाँ भाग है। इस वर्गणा से द्रव्य मन की रचना होती है। यह ग्यारहवी वर्गणा है।

5) **कार्माण शरीर द्रव्यवर्गणा:**—चौथी अग्रहण द्रव्यवर्गणा सम्बन्ध उत्कृष्ट द्रव्यवर्गणा में एक अंक प्रक्षिप्त करने पर सबसे जघन्य कार्माण शरीर द्रव्यवर्गणा होती है। आगे एकएक प्रदेश अधि के क्रम से अभव्यों से अनन्तगुणे सम्बन्धी उत्कृष्ट होती है। अपनी जघन्य वर्गणा का अनन्तवें भाग प्रमाण स्थान जाकर कार्माण द्रव्यवर्गणा सम्बन्धी उत्कृष्ट वर्गणा होती है। अपनी जघन्य वर्गणा से अपनी उत्कृष्ट वर्गणा विशेष अधिक है। जघन्य कार्माण वर्गणा का अनन्तवाँ भाग विशेष का प्रमाण है। इस वर्गणा के पुद्गल स्कन्ध आठों कर्मों के योग्य हैं। यह तेरहवी वर्गणा है।

6) **प्रत्येक शरीर द्रव्यवर्गणा:**—ध्रुव शून्य द्रव्य वर्गणा के ऊपर प्रत्येक शरीर द्रव्यवर्गणा है। एक-एक जीव के शरीर में उपचित हुए कर्म और नोकर्म स्कन्धों की प्रत्येक शरीर द्रव्य वर्गणा संज्ञा है अब उत्कृष्ट ध्रुवशून्य द्रव्यवर्गणा में एक अंक मिलाने पर जघन्य प्रत्येक शरीर द्रव्य वर्गणा में होती है।

7) **बादर निगोद द्रव्यवर्गणा:**—उत्कृष्ट ध्रुव शून्य द्रव्यवर्गणा में एक अंक अर्थात् एक प्रदेश के मिलाने पर सबसे जघन्य बादर निगोद द्रव्यवर्गणा होती है। वह क्षीणकषाय के अन्तिम समय में होती है। जो जीव क्षपित कार्मांशिक विधि में आकर पूर्व कोटि की आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ, अनन्तर गर्भ से लेकर आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्त का होने पर सम्यक्तव और संयम को युगपत् ग्रहण करके पुनः कुछ कम पूर्व कोटिकाल तक कर्मों की उत्कृष्ट गुण श्रेणी निर्जरा करके सिद्ध होने के अन्तर्मुहूर्त काल अवशेष रहने पर उसने क्षपकश्रेणी पर आरोहण किया। अनन्तर क्षपकश्रेणी में सबसे उत्कृष्ट विशुद्धि के द्वारा कर्म निर्जरा करके क्षीणकषाय हुए। इस जीव के प्रथम समय में अनन्त बादर निगोद जीव मरते हैं। दूसरे समय में विशेष अधिक जीव मरते हैं। इसी प्रकार तीसरे आदि समयों में विशेष अधिक अधिक जीव मरते हैं। यह क्रम

क्षीणकषाय के प्रथम से लेकर पृथक्त्वआवली काल तक चालू रहता है। इसके आगे संख्यात भाग अधिक संख्यातभाग अधिक जीव मरते हैं और यह क्रम क्षीणकषाय के काल में आवली का संख्यातवाँ भाग काल शेष रहने तक चालू रहता है। इसके पश्चात् निरन्तर प्रति समय असंख्यातगुणे जीव मरते हैं। इस प्रकार क्षीणकषाय के अन्तिम समय तक असंख्यातगुणे जीव मरते हैं। गुणाकार सर्वत्र पल्योपम का असंख्यातवें भाग है यहाँ क्षीणकषाय के अन्तिम समय में जो आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। पुलवियाँ हैं, जो कि पृथक्-पृथक् असंख्यातवे लोकप्रमाण निगोद शरीरों से आपूर्ण हैं, उनमें स्थित अनन्तानन्त निगोद जीवों के जो अनन्तानन्त विस्रसोपचय ये युक्त कर्म और नोकर्म संघात हैं। वह सबसे जघन्य बादर निगोद द्रव्यवर्गणा है। स्वयंभूरमण द्वीप की मूली के शरीर में उत्कृष्ट बादर निगोद वर्गणा होती है क्योंकि मूली के शरीर में एक बन्धन बद्ध जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण पुलवियाँ होती हैं। इस प्रकार यह उन्नीसवीं वर्गणा कही गई है।

8) सूक्ष्म निगोद द्रव्य वर्गणा:-उत्कृष्ट ध्रुवशून्य वर्गणा में एक अंक के मिलाने पर सूक्ष्म निगोद द्रव्यवर्गणा होती है। वह जल में, स्थल में और आकाश में सर्वत्र दिखलाई देती हैं, क्योंकि बादर निगोद वर्गणा के समान इसका देशनियम नहीं है। यह सबसे जघन्य सूक्ष्म निगोद जीव के ही होती है, अन्य के नहीं, क्योंकि वहाँ जघन्य द्रव्य के होने में विरोध है। महामत्स्य के शरीर में एकबन्धनबद्ध छह जीवनिकायों के संघात में उत्कृष्ट सूक्ष्म निगोदवर्गणा दिखलाई देती है। जघन्य सूक्ष्म निगोदवर्गणा से लेकर उत्कृष्ट सूक्ष्म निगोद वर्गणा पर्यन्त सब जीवों से अनन्तगुणा निरन्तर स्थान प्राप्त होकर एक ही स्पर्धक होता है, क्योंकि मध्य में कोई अन्तर नहीं है। जघन्य वर्गणा से उत्कृष्ट वर्गणा असंख्यात गुणी है। पल्य का असंख्यातवाँ भाग गुणाकार है। यह इक्कीसवीं वर्गणा है।

शेष अग्राह्य एवं शून्य वर्गणायें:-उपर्युक्त 8 वर्गणा से अतिरिक्त अन्य (23-8=15) 15 वर्गणायें जीवों के द्वारा ग्रहणीय नहीं हैं अर्थात् अधिकांश वर्गणायें (विभाग तथा संख्या अपेक्षा भी) अग्रहणीय है। तथापि ये वर्गणायें विश्व की व्यवस्था एवं रचना के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। आधुनिक विज्ञान में जो Dark matter की खोज हो रही है उसकी मात्रा विश्व की भौतिक मात्रा की 90% है।

Dark matter और उपर्युक्त 15 वर्गणाओं में कुछ समानता संभव है। इसका शोध बोध में स्वयं कर रहा हूँ और वैज्ञानिकों को भी करना चाहिए

Tracking clues to the unseen Universe:

New York: An experiment that tracks subtle motions of subatomic particles called muons has found tantalising evidence for a vast shadow universe of normally unseen matter existing side by side with ours, scientists at the Brookhaven National Laboratory said on Thursday.

The significance of the finding has been thrown into doubt by a series of mathematical errors and theoretical disagreements by physicists around the world who have been weighing the evidence for what would, if correct, rank as one of the greatest discoveries in science.

The Brookhaven "g minus 2" experiment has produced extraordinarily minute observation of the gyrating muons. In a dispiriting turn for the experimenters, though, the theoretical predictions of how encounters with ordinary matter should affect the dance of the particles have come into double. Only through differences between the expected and observed behaviour of the muons (pronounced MEW ahnz) could the existence of new matter be inferred. "If you could believe the theory value was stable and reliable, you'd say, Hey, there's no question," said Thomas B. Krik, associate director for high energy and nuclear physics at Brookhaven. "But the theory situation is still not under control. It's just maddening to me."

The existence of the new matter is predicted by an unconfirmed theory called supersymmetry. According to the theory, every known particle in the universe from the electron to the neutrino has a counterpart that has eluded detection. Some versions of the theory suggest that "dark matter" a substance that seems to

outweigh ordinary matter in the cosmos, actually consists of tremendous swarms of supersymmetric particles that waft through space.

The test at Brookhaven, at Upton on Long Island. involved a multinational team of scientist. It works something like the high school experiment called Brownian motion, which long ago provided evidence for the atomic structure of ordinary matter. When seen through a microscope, dust motes in liquids jitter about, because they repeatedly struck by otherwise invisible atoms. NYT News Service.

एकीकृत सिद्धान्त : धार्मिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से

1) सम्पूर्ण चेतन-अचेतन, मूर्तिक-अमूर्तिक, शुद्ध-अशुद्ध, सूक्ष्म-स्थूल, ब्रह्माण्ड प्रतिब्रह्माण्ड सत्/सत्ता की अपेक्षा एक ही है जिसे सत्य/द्रव्य/महासत्ता परमसत्य कहते हैं। अर्थात् द्रव्य दृष्टि से सत् स्वरूप होने से इस अपेक्षा से वे सब एक समान ही है। इस दृष्टि-कोण से सत्य अकृत्रिम, शाश्वतिक, अविनाशी, अनादि से है और अन्ततक रहने वाला, सर्वव्यापी, सब के कर्ता-धर्ता-हर्ता, सब के उत्पत्ति के मूल कारण, सब के आधार, सर्वेश्वर, परमेश्वर, ब्रह्मस्वरूप, परापर, परमसत्ता आदि अनन्त अनन्तगुण-धर्मस्वरूप वाला भी है। जीवतत्त्व/चैतन्य शक्ति की दृष्टि से ब्रह्माण्ड के अनन्तानन्त जीव भी एक समान (एक जीव द्रव्य के अन्तर्गत) है।

2) अन्तरंग अगुरुलघुगुण एवं बहिरंग काल आदि के कारण ऊपर उल्लेखित सत्य में सतत प्रति समय नवीन पर्याय/ अवस्था की उत्पत्ति होती रहती है, पूर्व पर्याय का विनाश होता रहता है और ध्रौव्यता/ स्थायित्व-स्थिरता कायम भी रहती है। इस दृष्टि से भी ब्रह्माण्ड (प्रतिब्रह्माण्ड, अलोकाकाश भी) एकत्व/ एकसमानता को प्राप्त होता है।

3) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में आकाश, गतिमाध्यम द्रव्य (धर्म द्रव्य) स्थितिमाध्यम द्रव्य (अधर्म द्रव्य) काल द्रव्य, अविच्छिन्न रूप से सर्वत्र व्याप्त होने से भी ब्रह्माण्ड घनाकार रूप से एक अखण्ड पिण्ड है। इस ब्रह्माण्ड में अनन्तानन्त परमाणु, 23 वर्गणायें, अनन्तानन्त सूक्ष्म 5 प्रकार के एकेन्द्रिय स्थावर जीव (वनस्पति, जल,

वायु, अग्नि, पृथ्वी) ठसाठस भरे होने के कारण भी ब्रह्माण्ड एक अखण्ड घनाकार पिण्ड है।

4) String theory आदि वैज्ञानिक अवधारणा के अनुसार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भिन्नभिन्न कम्पनों से निर्मित है तथा कम्पनों से व्याप्त है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार 13.7 अरब वर्ष पूर्व एक महाविस्फोट से उत्पन्न कणों के संयोग से ब्राह्मंड की प्रत्येक वस्तु का निर्माण हुआ है। इस महाविस्फोट के बाद अन्य भी विस्फोट हुए और इनसे विभिन्न कण उत्पन्न हुए। इन भिन्न-भिन्न कणों के संयोग से सजीव और निर्जीव पदार्थों का निर्माण हुआ। (प्रो. राजकुमार गुप्ता)

आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार सबसे सूक्ष्मतम लंबाई का मान 10^{-35} मीटर है। आधुनिक वैज्ञानिक उपकरण लगभग 10^{-20} मीटर तक की लंबाई नाप सकते हैं।

वर्णाएँ 23 है जिसमें से 8 वर्णाएँ ही ग्राह्य है। वर्णा याने एटम का समूह जो अभी बॉन्डेज कार्य में नहीं आया। जैसे न्यूट्रोन, एन्टी मेटर आदि। अभी वैज्ञानिक डार्क एनर्जी, डार्क मेटर को सिद्ध कर रहे है। विश्व सरंचना के लिए ये वर्णाएँ आवश्यक है इसके बिना कोई भी सरंचना संभव नहीं। वैज्ञानिक मान रहे है कि हम इन डार्क मेटर, डार्क एनर्जी को पूर्णतः नहीं जान पाये है। हमारी बुद्धि वहाँ तक काम नहीं कर रही है। परन्तु वो जो कल्पना कर रहे है सही कर रहे है।

मनो वर्णा के बाद बारहवी (12) अग्रहवर्णा है। अग्रहवर्णा याने जो ग्रहण करने योग्य नहीं है। मनो वर्णा में एक परमाणु प्लस करने पर अग्रह वर्णा उससे ऊपर की मानोवर्णा के ऊपर की अग्रहवर्णा जघन्य है। उससे अनन्तगुणा उत्कृष्ट ये अग्रहवर्णा फिर कार्माण वर्णा फिर ध्रुव वर्णा।

आत्मा की 47 शक्तियाँ

(प्रवचन-10)

दिनांक-27/02/2021

ॐ नमः सिद्धेभ्यः। ॐ नमः सिद्धेभ्यः। ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

श्रीमत् परम-गंभीर स्याद्वादामोघ-लाञ्छनम्।

जीयात्-त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जिन-शासनम्॥ (3) ईर्या. भ.

तीन लोक-पति, त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञ भगवान् का अनेकान्त शासन जयवन्त हो! कैसा है अनेकान्त शासन? सामान्यजन अनेकान्त को जानते ही नहीं। जानते हैं तो केवल रूढ़ी रूप में या स्याद अस्ति-नास्ति रूप में। केवल अल्फा-बीटा पढ लेते हैं परन्तु उसका प्रायोगिक रूप में आत्मा से ले परमात्मा तक, अणु से ले ब्रह्माण्ड तक, व्यवहार से ले मोक्ष तक में प्रयोग नहीं जानते हैं! ज्यादातर वाद-विवाद, पंथ-मत, संकीर्णता में आते हैं। अनेकान्तमय अमृत को विष बना देते हैं। समन्तभद्राचार्य ने अरहनाथ भगवान् की स्तुति में कहा है-

अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः प्रमाण-नय-साधनः।

अनेकान्तः प्रमाणात् ते तदेकान्तोऽपितात्रयात्॥ (103)

आईस्टिन ने भी अनेकान्त (सापेक्ष सिद्धान्त) को प्रयोग में लाया था। अनेकान्त ही ऐसा सूत्र, उपाय है जो अद्भुत, अविदित, विज्ञान क्षेत्र में, विश्वस्तर पर सबको जोड़ सकता है। अनेकान्त भी कैसा? प्रमाण नय साधनम् प्रमाण=प्रकृष्ट मान, परम सत्य ज्ञान, केवलज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण और अवधिमनःपर्ययज्ञान आंशिक प्रत्यक्ष प्रमाण और मति-श्रुत परोक्ष प्रमाण है।

लिखित संविधान, कानून प्राचीन हो या आधुनिक, सामाजिक नियम रीतिरिवाज प्रमाण नहीं है। सांख्यावहारिक प्रमाण है। समाज, राजनीतिक व्यवस्था के लिए नियम है प्रमाण नहीं है। सत्यमेव जयते, अनेकान्त प्रमाणास्ते जहाँ अनेकान्त है वही प्रमाण है। तद एकान्त अर्पित न्याय जो सत्यांश है वो नय है। नयतीति नय अनंतधर्मात्मक वस्तु के एक देश, आंशिक ज्ञान को नय कहते हैं व पूर्ण सत्य को बताने वाले ज्ञान को प्रमाण कहते हैं। अर्पित न्याय।

भवद्भावभवन साधकतमत्वमयी करणशक्तिः। (43) स्वयंदीयमान भावोपेयत्वमयी सम्प्रदानशक्तिः॥ (44) उत्पादव्ययालिङ्गितभावापाय निरपायधुत्वमयी अपादान शक्तिः॥ (45)

आत्मा की शक्तियाँ व आत्मा में अभिन्न षट्कारक कहाँ है, कैसे है? आत्मा-परमात्मा, परम सत्य या द्रव्य-तत्त्व के लिये कर्ता-कर्म कौन है? करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण, सम्बन्ध कौन है? जैसे आप पढ़ते हो सूर्य में ऊर्जा कहाँ से आती है? सूर्य में हाई-फ्रिक्वेंसी होता है, इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन में हाईजन पंप के बराबर

फ्यूजन होता है। ये सब क्या है? क्वांटम में स्ट्रीम में ये ऊर्जा कहाँ से आती है? मीटर व एन्टीमीटर में निगेटीव, पॉज़ेटीव चार्ज किसने दिया? स्वयं के कारण। इसी प्रकार आत्मा-परमात्मा में परम सत्य के लिये कौन कर्ता-कर्म-करण सम्प्रदानादि है? सम्बन्ध क्या है? पाणीनी व्याकरणानुसार स्वतन्त्र कर्ता यः करोती सः कर्ता। जो कार्य का सम्पादन करे सो कर्ता। जो स्वतन्त्र होकर कार्य करता है सो कर्ता। जैसे राजा, मालिक या ऑफिसर ने ऑर्डर दिया व प्रजा, सैनिक या नौकर ने काम किया वह कर्ता नहीं है। कर्ता द्वारा जो सम्पादन होता है वह है कर्म। कारक=करना। करण क्या है?

भवद्भावभवनसाधकत्वमयी करणशक्तिः॥ (43)

जिसके द्वारा कर्ता कर्म को साधता है, सम्पादन करता है व है करण। जैसे पेन से लिखना, तलवार से मारना आदि।

स्वयं दीयमानभावोपेयत्वमयी संप्रदानशक्तिः (44)

अपने द्वारा जो दिया जाता जो भाव उसके उपेयत्वमय (उसे प्राप्त करने के योग्यपनामय, उसे लेने के पात्रपनामय) सम्प्रदानशक्ति !

उत्पादव्ययालिंगित भावापाय मिर पायध्रुवत्वमयी अपादानशक्तिः॥ (45)

उत्पाद व्यय से आलिंगित भाव का उपाय (हानि-नाश) होने से हानि को प्राप्त न होने वाले ध्रुवत्वमयी अपादान-शक्ति।

भाव्यमानभावाधारत्वमयी अधिकरण शक्तिः॥ (46)

भाव्यमान (भावने में आने हुये) भावके आधारत्वमयी अधिकरण शक्ति !

स्वभावमात्रस्वस्वामित्वमयी सम्बन्धशक्तिः॥ (47)

स्वभावमात्र स्व-स्वामित्वमयी सम्बन्धशक्ति (अपना भाव अपना स्व है और स्वयं उसका स्वामी है-ऐसेसम्बन्ध मयी सम्बन्धशक्ति॥

स्वरूप सम्बोधन में आचार्य अकलंकदेव कहते हैं-

अनाकुल स्व संवेध में स्थिर होकर अमृत बनो?

स्वं परं विद्धि तत्रापि, व्यामोह छिन्धि किन्त्विमम्।

अनाकुलस्वसंवेद्ये स्वरूप तिष्ठ केवले॥ (24)

स्व-पर भेद विज्ञान करके, उसका भी व्यामोह दूर करो!
अनाकुल स्व संवेदनमय, स्व-स्वरूप में तुम स्थिर रहो।
आत्मा में ही समस्त शक्तियाँ क्यों हैं? परमात्मा को किसी भी आवलम्बन
की आवश्यकता क्यों नहीं है?

स्वः स्वं स्वेन स्थितं स्वमै स्वसमात्स्वस्या विनश्वरम्।

स्वस्मिन् ध्यात्वा लभेत् स्वोत्थमानन्दामृतं पदम्॥ (25)

स्व आत्मा में स्वयं के द्वारा, स्वयं ही स्वयं से तुम करो ध्यान जिससे तुम प्राप्त
करो आनन्दामृतमय अविनश्वर धाम।।

हिन्दु धर्म के आध्यात्मिक ग्रंथ अष्टावक्र गीता में अष्टावक्र ने विदेही जनक
को उपदेश दिया है। हिन्दुधर्मानुसार जनक आत्मज्ञानी थे। अष्टावक्र गर्भ से ही
आत्मज्ञानी थे। जब उनके पिता वेद की रिचायें गलत बोलते तो वे उनका खण्डन
करते थे। इसलिये उनके पिता ने उन्हें श्राप दिया था कि तो आठ स्थानों से वक्र होगा।
श्राप से वे जन्म लेते हैं तो उनका शरीर आठ स्थानों से वक्र था।

मैं विशुद्ध बोध स्वरूप हूँ, परमात्मा स्वरूप हूँ ऐसा जब निश्चय व आध्यात्मिक
बोध होगा तब सम्पूर्ण विश्व कल्पित स्वप्न या मोह-माया-भ्रम लगेगा। क्योंकि विश्व
अनात्मा है। तुम न राजा न रंक, न सेठ न साहुकार, न आधि-व्याधि-उपाधि तुम हो।
जब तक तुम ऐसा मानते रहोगे तब तक तुम प्राथमिक धार्मिक भी नहीं हो।
आध्यात्मिक चेतना शक्ति से शरीर से लेकर सत्ता-सम्पत्ति, तेरा मेरा, शत्रु-मित्र कोई
मेरे नहीं सभी शून्य है, मोह, कल्पना है ऐसा जब जानोगे-मानोगे तब जानना तुम
आध्यात्मिक बन रहे हो। अध्यात्मता के नाम पर भी बहुत संकीर्णता, वाद-विवाद,
मतवाद है। ऐसे परम-पवित्र बोध व 47 शक्ति सम्पन्न होंगे तब आनन्द, परमानन्द
ही परमानन्द प्राप्त होगा। वो ही धर्म, स्वभाव, लक्ष्य, प्राप्य।

यहाँ आत्मा का माहात्म्य बता रहे हैं। अहो! ये आत्मा का माहात्म्य कैसा है?
जो आत्मा का शुद्ध स्वभाव ज्ञान सुख है उतने अंश में तुम धार्मिक हो। और जितने
अंश में दुःख उतने अंश में पाप व अधर्म है। यदि मात्र प्रदर्शन व दूसरों को नीचा
दिखाने के लिये धर्म कर रहे हो तो वह संक्लेश का कारण है वहाँ आनन्द नहीं
आयेगा। ज्ञानानन्द हीन आत्मा होगा। आत्यन्तिक स्वभाव उत्थान राजा-महाराजा तक

बनना आत्मा का स्वभाव नहीं है। केवल अनन्तज्ञान, सुख ज्ञानानन्द, आत्मा विकास के लिये जो मनसा-वचसा-कर्मणा, कृत-कारित-अनुमोदना से कुछ करते हो वह पुरुषार्थ है। यदि मोक्ष पुरुषार्थ लक्ष्य नहीं है तो सभी धर्म-अर्थ-काम पुरुषार्थ नहीं है। यदि अभी चारित्र मोहनीय के उदय से साधु नहीं बन पाते हो, गृहस्थाश्रम में रहते हुये धन कमाते हो, विवाह करते हो वह पुरुषार्थ नहीं है। पुरुष=आत्मा उसके प्रयोजन के लिये जो कुछ करते हो वह है पुरुषार्थ। न्याय से धन कमाकर दान-पूजा करना चाहिये। अन्याय, अत्याचार, मायाचारी, शोषण से धन कमाना, कामासक्त होकर संतान उत्पन्न करना कोई काम पुरुषार्थ नहीं। पुमान्-परमात्मा का आत्मा के माहात्म्य का मैं वर्णन नहीं कर सकता ऐसे आचार्य कह रहे हैं।

सर्वज्ञ, तीर्थकर जान सकते हैं परन्तु शब्दों में वर्णन नहीं कर सकते। वे भी अनन्तवाँ एक भाग का कथन कर सकते हैं। गणधर भी दिव्यध्वनि का अनन्तवाँ एक भाग समझते हैं परन्तु सम्पूर्ण कथन नहीं कर पाते। पूरी पृथ्वी के वैज्ञानिक मिलकर के एटम को नहीं जान पाये हैं। छोटे कोरोना वायरस को भी नहीं जान पाये फिर आत्मा-परमात्मा को कैसे जान पायेंगे?

अचिन्त्य क्योंकि चिन्ता भी नहीं कर सकते हो। चिन्ता मतिज्ञान का भेद है व मतिज्ञान में अनन्तज्ञान नहीं है। आचार्यश्री कहते हैं परमात्मा का वर्णन करने के लिये कोई भी समर्थ नहीं। गणधर भी नहीं। सर्वज्ञ जानते हैं, अनुभव करते हैं परन्तु व्यक्त नहीं कर सकते। परन्तु परमात्मा को प्राप्त कर सकते हैं। ऐसे निर्मल आत्मध्यान से, वीतराग विज्ञान के माध्यम से, निस्पृहता से, कामना से रहित, समस्त संकल्प-विकल्प से रहित ध्यान होता है, उस आत्मध्यान से आत्मशक्ति प्रस्फुटित होती है। जैसे लेंस के माध्यम से सूर्य किरणें अग्नि रूप प्रस्फुटित होती हैं। घर्षण से लकड़ी में अग्नि उत्पन्न होती है या हथेलियों के घर्षण से उष्णता उत्पन्न होती है उसी प्रकार केवल आत्मध्यान, चिन्तन, आत्मपरिणति से ही आत्मा की शक्ति की अभिव्यक्ति पूर्णतः होती है।

आत्मा ही परम विज्ञानमय है। उस आत्म शक्ति की किंचित् अभिव्यक्ति से वैज्ञानिक, दार्शनिक हो या कवि शोध-बोध-रिसर्च करते हैं।

तीन जगत् का भर्तार कौन? परमात्मा। क्योंकि वो पूरे ब्रह्माण्ड को जानते हैं,

आनन्द का अनुभव करते हैं, सभी जीवों को अभय देते हैं, विश्व गुरु हैं। ऐसे विश्व भर्ता शक्ति तुम्हारे अन्दर भी है। इसलिये कोई चक्रवर्ती, से ले राजा-महाराजा, सेठ-साहुकार, उद्योगपति यथार्थ भर्ता नहीं है वे भी दास है, नौकर है। ईंट, पत्थर, सोना, चांदी, डॉलर, रूपया-पैसा के दास है। संग्रह करने वाले तिजोरी भरके रखने वाले लाला है। विश्व तो अनन्तशक्तिमान है। तुम अपने आप को नहीं जान रहे हो, स्व-स्वरूप से अपरिचित हो। स्वयं जो तीन लोक का प्रभु-विभु, ज्ञाता-दृष्टा है वो स्वयं को नहीं जानता इससे बड़ा आश्चर्य, खेद, पाप और क्या हो सकता है? जो अज्ञानी है वह पुण्य-पाप क्या जानेगा? पहले आत्मज्ञान-सत्यज्ञान करो, दया पालन करो नहीं तो जैसे कृषि के नाम पर मुर्गा पालन, मत्स्य-पालन, पशु पालन व पशु वध हो रहा है तो यह कौनसी अहिंसा है, कौनसा न्याय है? कौनसा सविधान है?

स्वयं के अनन्त आत्मवैभव, अनन्तशक्ति, स्व-स्वभाव, स्व अधिकार का हनन स्वयं कर रहे हो कोई अन्य नहीं। अज्ञान मोह, स्वार्थ, संकीर्णता से आसन्न हो करके अनन्त बोध, सम्पन्न, अनन्त शक्ति सम्पन्न, समता, अमृतस्वरूप ये आत्मा ज्ञाता-दृष्टा होते हुये भी पर को देखता है, शरीर को देख रहा है। जब स्व को ही नहीं जान पाये तो तुम देखते हुये भी नहीं देख रहे हो जानते हुए भी नहीं जान पा रहे हो। पवित्र नहीं कर पाये हो।

स्वार्थ=स्व+अर्थ/स्व=आत्मा, अर्थ=प्रयोजन आत्मा के लिये जो प्रयोजन है वह स्वार्थ है। आत्मा के अतिरिक्त सब मोह, आसक्ति परिग्रह अनात्म है। सवार्थ सिद्धि=सर्व+अर्थ+सिद्धि। स्वर्ग का अन्तिम अनुत्तर विमान है सर्वार्थसिद्धि परन्तु परम सवार्थसिद्धि परन्तु परम सर्वार्थसिद्धि है मोक्ष। जीव ने अनन्तबार जन्म-मरण किया, भोग किया, शत्रु को मारा, स्वयं भी शत्रु के द्वारा मारा गया, तुमने अन्य जीव को खाया, दूसरे जीव ने तुम्हें खाया

अतो न किञ्चित् ततो न किञ्चित्...आचार्य कहते हैं तुम पूरा ब्रह्माण्ड भी भ्रमण करलो, राजा-महाराजा, सेठ साहुकार वैज्ञानिक, दार्शनिक बन जाओ, इन्द्र बन जाओ, कुछ भी बन जाओ पर ये तुम्हारा स्वरूप नहीं।

जीव राग-द्वेष, काम-क्रोध, विषय वासना में, दुःख में अनादिकाल से रमा है, उससे विश्राम लो। बहुत हो गया, अनन्तबार जीव ने अनात्मक कर लिया परन्तु

एक काम नहीं किया स्वात्मरमण। परमात्मा बन करके अनन्तकाल तक अनन्तसुख का भोग-उपभोग नहीं किया है। सबसे ज्यादा भोगी, स्वार्थी सिद्ध भगवान् है। अनन्त काल तक अनन्त सुख का भोग करेंगे। जीव ने अनादि काल से काम भोग, विषयकषाय, वासना, सत्ता-सम्पत्ति का, प्रसिद्धि, शत्रु-मित्र, संकल्प-विकल्प से आत्महत्या की। अनन्त भव ऐसे ही खो दिये। स्वयं को पतित दुःखी किया। इसलिये आचार्य सम्बोधन कर रहे हैं कि हे भव्य! विद्यते अत्र यदि स्वार्थं यदि तुम स्वार्थी बनना चाहते हो तो तथा किं न विमुच्यते इन राग-द्वेष संकल्प-विकल्पादि अनात्म विभावों को क्यों नहीं छोड़ते। इन सब विकल्पों को छोड़ के स्वात्मा में रमण करो व यथार्थ से स्वार्थी बनो इस प्रकार संक्षेप से 47 शक्तियों का वर्णन किया।

समयसार में वर्णित आत्मा की 47 शक्तियाँ

तर्हि किं कृतो लक्ष्यलक्षणविभागः? प्रसिद्धप्रसाध्यमानत्वात् कृतः प्रसिद्ध हि ज्ञानं, ज्ञानमात्रस्य स्वसंवेदनसिद्धत्वात्; तेन प्रसिद्धे न प्रसाध्यमानस्तदविनाभूतानंतधर्मसमुदयमूर्तिरात्मा। ततो ज्ञानमात्राचलितविखातया दृष्टया क्रमाक्रमप्रवृत्तं तदविनाभूतं अनंतधर्मजातं यद्यावल्लक्ष्यते तत्तावत्समस्तमेवैकः खल्वात्मा। एतदर्थमेवात्रास्य ज्ञानमात्रतया व्यपदेशः।

(उत्तर:-) जिसे लक्षण अप्रसिद्ध हो उसे (अर्थात् जो लक्षण को नहीं जानता ऐसे अज्ञानी जन को) लक्ष्य की प्रसिद्धि नहीं होती। जिसे लक्षण प्रसिद्ध होता है उसी को लक्ष्य की प्रसिद्धि होती है। (इसलिये अज्ञानी को पहले लक्षण बतलाते हैं उसके बाद वह लक्ष्य को ग्रहण कर सकता है।)

(प्रश्न:-) ऐसा कौनसा लक्ष्य है जो कि ज्ञान की प्रसिद्धि के द्वारा उससे (ज्ञान से) भिन्न प्रसिद्ध होता है?

(उत्तर:-) ज्ञान से भिन्न लक्ष्य नहीं है, क्योंकि ज्ञान और आत्मा में द्रव्यपने से अभेद है।

(प्रश्न:-) तब फिर लक्षण और लक्ष्य का विभाग किसलिये किया गया है?

(उत्तर:-) प्रसिद्धत्व और प्रसाध्यमानत्व के कारण लक्षण और लक्ष्य का

विभाग किया गया है। ज्ञान प्रसिद्ध है, क्योंकि ज्ञानमात्र को स्वसंवेदन से सिद्धपना है (अर्थात् ज्ञान सर्व प्राणियों को स्वसंवेदनरूप अनुभव में आता है); वह प्रसिद्ध ऐसे ज्ञान के द्वारा प्रसाध्यमान, तद्-अविनाभूत (ज्ञान के साथ अविनाभावी सम्बन्धवाला) अनन्त धर्मों का समुदायरूप मूर्ति आत्मा है। (ज्ञान प्रसिद्ध है; और ज्ञान के साथ जिनका अविनाभावी सम्बन्धी है ऐसे अनन्त धर्मों का समुदायस्वरूप आत्मा उस ज्ञान के द्वारा प्रसाध्यमान है।) इसलिये ज्ञानमात्र में अचलितपने से स्थापित दृष्टि के द्वारा, क्रमरूप और अक्रमरूप प्रवर्तमान, तद्-अविनाभूत (ज्ञान के साथ अविनाभावी सम्बन्धवाला) अनन्तधर्मसमूह जो कुछ जितना लक्षित होता है, वह सब वास्तव में एक आत्मा है।

इसी कारण से यहाँ आत्मा का ज्ञानमात्रता से व्यपदेश है।

(प्रश्न:-) जिसमें क्रम और अक्रमसे प्रवर्तमान अनन्त धर्म हैं ऐसे आत्मा के ज्ञानमात्रता किस प्रकार है?

(उत्तर:-) परस्पर भिन्न ऐसे अनन्त धर्मों के समुदाय रूप से परिणत एक ज्ञानमात्र भावरूप से स्वयं ही है, इसलिये (अर्थात् परस्पर भिन्न ऐसे अनन्त धर्मों के समुदाय से परिणमित जो एक जाननक्रिया है उस जाननक्रियामात्र भावरूप से स्वयं ही है इसलिये) आत्मा के ज्ञानमात्रता है। इसीलिये उसके ज्ञानमात्र एकभाव की अन्तः पातिनी (ज्ञानमात्र एक भाव के भीतर आ जानेवाली) अनन्त शक्तियाँ उछलती हैं। (आत्मा के जितने धर्म हैं उन सबको, लक्षणभेद से भेद होने पर भी, प्रदेशभेद नहीं है; आत्मा के एक परिणाम में सभी धर्मों का परिणमन रहता है। इसलिये आत्मा के एक ज्ञानमात्र भाव के भीतर अनन्त शक्तियाँ रहती हैं। इसलिये ज्ञानमात्र भाव में-ज्ञानमात्र भावस्वरूप आत्मा में अनन्त शक्ति उछलती हैं।) उनमें से कितनी ही शक्तियाँ निम्न प्रकार हैं-

ननु क्रमाक्रमपृवत्तानंतधर्ममयस्यात्मनः कथं ज्ञानमात्रत्वम्? परस्परव्यतिरिक्तानंतधर्मसमुदायपरिणतैकज्ञप्तिमात्रभावरूपेण स्वयमेव भवनात्। अत एवास्य ज्ञानमात्रैकभावांतः पातिन्योऽनंताः शक्तयः उत्प्लवंते। आत्मद्रव्यहेतुभूतचैतन्यमात्रभावधारण लक्षणा जीवत्वशक्तिः 1

आत्मद्रव्य के कारणभूत ऐसे चैतन्यमात्र भाव का धारण जिसका लक्षण

अर्थात् स्वरूप है ऐसी जीवत्वशक्ति। (आत्मद्रव्य के कारणभूत ऐसे चैतन्यमात्रभावरूपी भावप्राण का धारण) करना जिसका लक्षण है ऐसी जीवत्व नामक शक्ति ज्ञानमात्र भाव में-आत्मा उछलती है।

अजडत्वात्मिका चितिशक्ति: 2

अजडत्वस्वरूप चितिशक्ति (अजडत्व अर्थात् चेतनत्व जिसका स्वरूप है ऐसी चितिशक्ति)।

अनाकारोपयोगमयी दृशिशक्ति: 3

अनाकार उपयोगमयी दृशिशक्ति। (जिसमें ज्ञेयरूप आकार अर्थात् विशेष नहीं है ऐसे दर्शनोपयोगमयी-सत्तामात्र पदार्थ में उपयुक्त होने रूप दृशिशक्ति अर्थात् दर्शनक्रियारूप शक्ति।)

साकारोपयोगमयी ज्ञानशक्ति: 4

साकार उपयोगमयी ज्ञानशक्ति। (जो ज्ञेय पदार्थों के विशेषरूप आकारों में उपयुक्त होती है ज्ञानोपयोगमयी ज्ञानशक्ति।)

अनाकुलत्वलक्षणा सुखशक्ति: 5।

अनाकुलता जिसका लक्षण अर्थात् स्वरूप है ऐसी सुखशक्ति।

स्वरूपनिर्वर्तनसामर्थ्यरूपा वीर्यशक्ति: 6

स्वरूप की (आत्मस्वरूप की) रचना की सामर्थ्य वीर्यशक्ति।

अखंडितप्रतापस्वातंत्र्यशालित्वलक्षणा प्रभुत्वशक्ति: 7

जिसका प्रताप अखण्डित है अर्थात् किसी से खण्डित की नहीं जा सकती ऐसे स्वातंत्र्य से (स्वीधनता से) शोभायमानपना जिसका लक्षण है ऐसी प्रभुत्वशक्ति।

सर्वभावव्यापकैकभावरूपा विभुत्वशक्ति: 8

सर्व भावों में व्यापक ऐसे एक भावरूप विभुत्वशक्ति। (जैसे, ज्ञानरूपी एक भाव सर्व भावों में व्याप्त होता है।)

विश्वविश्वसामान्यभावपरिणतात्मदर्शनमयी सर्वदर्शित्वशक्ति: 9

समस्त विश्व के सामान्य भाव को देखनेरूप से (अर्थात् सब पदार्थों के समूहरूप लोकालोक को सत्तामात्र ग्रहण करने रूप) परिणमित ऐसे आत्मदर्शनमयी सर्वदर्शित्वशक्ति।

विश्वविश्वविशेषभावपरिणतात्मज्ञानमयी सर्वज्ञत्वशक्तिः 10

समस्त विश्व के विशेष भावों को जाननेरूप से परिणमित ऐसे आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञत्वशक्ति।

नीरूपात्मप्रदेशप्रकाशमानलोकालोकाकार मेचकोपयोगलक्षणा स्वच्छत्वशक्तिः 11

अमूर्तिक आत्मप्रदेशों में प्रकाशमान लोकालोक के आकारों से मेचक (अर्थात् अनेक-आकाररूप) ऐसा उपयोग जिसका लक्षण है ऐसी स्वच्छत्वशक्ति। (जैसे दर्पण की स्वच्छत्वशक्ति से उसकी पर्याय में घटपटादि प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार आत्मा की स्वच्छत्वशक्ति से उसके उपयोग में लोकालोक के आकार प्रकाशित होते हैं।)

स्वयंप्रकाशमानविशदस्वसंवित्तिमयी प्रकाशशक्तिः 12

स्वयं प्रकाशमान विशद (स्पष्ट) ऐसी स्वसंवेदनमयी (स्वानुभवमयी) प्रकाशशक्ति।

क्षेत्रकालानवच्छिन्नचिद्विलासात्मिका असंकुचितविकाशत्वशक्ति 13

क्षेत्र और काल से अमर्यादित ऐसी चिद्विलास स्वरूप (चैतन्य के विलासस्वरूप) असंकुचितविकाशत्वशक्ति।

अन्याक्रियामाणान्याकारकैकद्रव्यात्मिका अकार्यकारणत्वशक्तिः 14

जो अन्य से नहीं किया जाता और अन्य को नहीं करता ऐसे एक द्रव्यस्वरूप अकार्यकारणत्वशक्ति। (जो अन्य का कार्य नहीं है और अन्य का कारण नहीं है ऐसा जो एक द्रव्य उस-स्वरूप अकार्यकारणत्व-शक्ति।)

परात्मनिमित्तकज्ञेयज्ञानाकारग्रहण ग्राहणस्वभावरूपा

परिणाम्यपरिणामकत्वशक्तिः 15

पर और स्व जिनके निमित्त है ऐसे ज्ञेयाकारों तथा ज्ञानाकारों को ग्रहण करने के और ग्रहण कराने के स्वभावरूप परिणाम्यपरिणामकत्व शक्ति। पर जिनके कारण हैं ऐसे ज्ञेयाकारों को ग्रहण करने के और स्व जिनका कारण है ऐसे ज्ञानाकारों को ग्रहण कराने के स्वभावरूप परिणामकत्वशक्ति।

अन्यूनातिरिक्तस्वरूपनियतत्वरूपा त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति 16

जो कमबढ़ नहीं होता ऐसे स्वरूप में नियतत्वरूप (निश्चिततया यथावत् रहनेरूप) त्यागोपादानशून्यत्वशक्ति।

षट् स्थानपतितवृद्धिहानिपरिणतस्वरूपप्रतिष्ठत्वकारण विशिष्टगुणात्मिका अगुरुलघुत्वशक्ति: 17

षट्स्थानपतित वृद्धिहानिरूप से परिणमित, स्वरूप प्रतिष्ठत्व का कारणरूप (वस्तु के स्वरूप में रहने के कारणरूप) ऐसा जो विशिष्ट (खास) गुण है उस-स्वरूप अगुरुलघुत्व शक्ति। (इस षट्स्थानपतित वृद्धिहानि का स्वरूप 'गोम्मटसार' ग्रन्थ से जानना चाहिये।

अविभाग प्रतिच्छेदों की संख्यारूप षट् स्थानों में पतित-समाविष्ट-वस्तुस्वभाव की वृद्धिहानि जिससे (जिस गुण से) होती है और जो (गुण) वस्तु को स्वरूप में स्थिर होने का कारण है ऐसा कोई गुण आत्मा में है; उसे अगुरुलघुत्व गुण कहा जाता है। ऐसी अगुरुलघुत्व शक्ति भी आत्मा में है।)

क्रमाक्रमवृत्तवृत्तित्वलक्षणा उत्पादव्ययध्रुवत्वशक्ति: 18

क्रमवृत्तिरूप और अक्रमवृत्तिरूप वर्तन जिसका लक्षण है ऐसी उत्पादव्ययध्रुवत्वशक्ति। (क्रमवृत्तिरूप पर्याय उत्पादव्ययरूप है और अक्रमवृत्तिरूप गुण ध्रुवत्परूप है।)

द्रव्यस्वभावभूतध्रौव्यव्ययोत्पादालिंगितसदृशविसदृशरूपैकास्तित्वमात्र मयी परिणामशक्ति: 19

द्रव्य के स्वभावभूत ध्रौव्य-व्यय-उत्पाद से आलिंगित (स्पर्शित), सदृश और विसदृश जिसका रूप है ऐसे एक अस्तित्वमात्रमयी परिणामशक्ति।

कर्मबंधव्यपगमव्यंजितसहजस्पर्शादिशून्यात्मप्रदेशात्मिका अमूर्तत्वशक्ति: 20

कर्मबन्ध के अभाव से व्यक्त किये गये, सहज, स्पर्शादिशून्य (स्पर्श, रस, गंध, और वर्ण से रहित) ऐसे आत्मप्रदेशस्वरूप अमूर्तत्वशक्ति।

**सकलकर्मकृतज्ञातृत्वमात्रातिरिक्तपरिणामकरणोपरमात्मिका
अकर्तृत्वशक्तिः। 21**

समस्त, कर्मों के द्वारा किये गये, ज्ञातृत्वमात्र भिन्न जो परिणाम उन परिणामों के कारण के उपरमस्वरूप (उन परिमाणों को करने की निवृत्ति-स्वरूप) अकर्तृत्वशक्ति। (जिस शक्ति से आत्मा ज्ञातृत्व के अतिरिक्त कर्मों से किये गये परिणामों का कर्ता नहीं होता, ऐसी अकर्तृत्व नामक एक शक्ति आत्मा में है)।

**सकलकर्मकृतज्ञातृत्वमात्रातिरिक्तपरिणामानुभवोपरमात्मिका
अभोक्तृत्वशक्तिः 22**

समस्त, कर्मों से किये गये, ज्ञातृत्वमात्र से भिन्न परिणाम के अनुभव की (भोक्तृत्व की) उपरमवस्वरूप अभोक्तृत्वशक्ति।

सकलकर्मोपरमप्रवृत्तात्मप्रदेशनैर्ष्यद्वारूपा निष्क्रियत्वशक्तिः 23।

समस्त कर्मों के उपरम से प्रवृत्त आत्मप्रदेशों की निस्पन्दतास्वरूप (अकम्पतास्वरूप) निष्क्रियत्वशक्ति। (जब समस्त कर्मों का अभाव हो जाता है तब प्रदेशों का कम्पन मिट जाता है इसलिये निष्क्रियत्व शक्ति भी आत्मा में है।)

**आसंसारसंहरणविस्तरणलक्षितकिंचिदूनचरमशरीरपरिमाणावस्थित
लोकाकाशसम्मितात्मावयवत्वलक्षणा नियतप्रदेशत्वशक्तिः 24**

जो अनादि संसार से लेकर संकोचविस्तार से लक्षित है और जो चरम शरीर के परिमाण से कुछ न्यून परिमाण से अवस्थित होता है ऐसा लोकाकाश के माप जितना मापवाला आत्म-अवयवत्व जिसका लक्षण है ऐसी नियतप्रदेशत्वशक्ति। (आत्मा के लोक परिमाण असंख्य प्रदेश नियत ही है।) वे प्रदेश संसार अवस्था में संकोचविस्तार को प्राप्त होते हैं और मोक्ष-अवस्था में चरम शरीर से कुछ कम परिमाण में स्थित रहते हैं।

सर्वशरीरैकस्वरूपात्मिका स्वधर्मव्यापकत्वशक्तिः 25

सर्व शरीरों में एकस्वरूपात्मक ऐसी स्वधर्मव्यापकत्वशक्ति। (शरीर के धर्मरूप न होकर अपने अपने धर्मों में व्यापनेरूप शक्ति सो स्वधर्मव्यापकत्वशक्ति है।)

स्वपरसमानासमानसामनासमानत्रिविधभावधारणत्मिका साधारणा-
साधारणसाधारणासाधारणधर्मत्वशक्तिः 26।

स्व-पर के समान, असमान और समानासमान ऐसे तीन प्रकार के भावों की धारणस्वरूप साधारण-असाधारण-साधारणासाधारणधर्मत्वशक्ति।

विलक्षणानंतस्वभावभावितैकभावलक्षणा अनंतधर्मत्वशक्तिः 27

विलक्षण (परस्पर भिन्न लक्षणयुक्त) अनन्त स्वभावों से भावित ऐसा एक भाव जिसका लक्षण है ऐसी अनन्त धर्मत्वशक्ति।

तदतद्रूपमयत्वलक्षणा विरुद्धधर्मत्वशक्तिः 28

तद्रूपमयता और अतद्रूपमयता जिसका लक्षण है ऐसी विरुद्धधर्मत्वशक्ति।

तद्रूपभवनरूपा तत्त्वशक्तिः। 29

तद्रूप भवनरूप ऐसी तत्त्वशक्ति। (तत्स्वरूप होनेरूप अथवा तत्स्वरूप परिणमनरूप ऐसी तत्त्वशक्ति आत्मा में है। इस शक्ति से चेतन चेतनरूप से रहता है-परिणमित होता है।)

अतद्रूपभवनरूपा अतत्त्वशक्तिः 30

अतद्रूप भवनरूप ऐसी अतत्त्वशक्ति। (तत्स्वरूप नहीं होनेरूप अथवा तत्स्वरूप नहीं परिणमने रूप अतत्त्वशक्ति आत्मा में है।) इस शक्ति से चेतन जडरूप नहीं होता।

अनेकपर्यायव्यापकैकद्रव्यमयत्व रूपा एकत्वशक्तिः 31

अनेक पर्यायों में व्यापक ऐसी एकद्रव्यमयतारूप एकत्व।

एकद्रव्यव्याप्यानेकपर्यायमयत्वरूपा अनेकत्वशक्तिः 32

एक द्रव्य से व्याप्य जो अनेक पर्यायें उसमयपने रूप अनेकत्वशक्ति।

भूतावस्थत्वरूपा भावशक्तिः 33

विद्यमान-अवस्थायुक्ततारूप भावशक्ति। (अमुक अवस्था जिसमें विद्यमान हो उसरूप भावशक्ति।

शून्यावस्थत्वरूपा अभावशक्तिः 34

शून्य (अविद्यमान) अवस्थायुक्तरूप अभावशक्ति। (अमुक अवस्था जिसमें अविद्यमान हो उस रूप अभाव शक्ति)।

भवत्पर्यायव्ययरूपा भावाभावशक्तिः 35

भवते हुए (प्रवर्तमान) पर्याय के व्ययरूप भावाभावशक्ति।

अभवत्पर्यायोदयरूपा अभावभावशक्तिः 36

नहीं भवते हुए (अप्रवर्तमान) पर्याय के उदयरूप अभावभावशक्ति।

भवत्पर्यायभवनरूपा भावाभावशक्तिः 37

भवते हुए (प्रवर्तमान) पर्याय के भवनरूप भावभावशक्ति।

अभवत्पर्यायाभवनरूपा अभावाभावशक्तिः 38

नहीं भवते हुये (अप्रवर्तमान) पर्याय के अभवन रूप अभावाभाव शक्ति।

कारकानुगतक्रियानिष्क्रांत भवनमात्रमयी भावशक्तिः 39

(कर्ता, कर्म आदि) कारकों के अनुसार जो क्रिया उससे रहित भवनमात्रमयी (होनेमात्रमयी) भाव शक्ति।

कारकानुगतभवत्तारूप भावमयी क्रियाशक्तिः 40

कारकों के अनुसार परिणमित होनेरूपी भावमयी क्रियाशक्ति।

प्राप्यमाणसिद्धरूपभावमयी कर्मशक्तिः 41

प्राप्त किया जाता जो सिद्धरूप भाव उसमयी कर्मशक्ति।

भवत्तारूप सिद्धरूपभावभावकत्वमयीकर्तृशक्तिः 42

होनेपरूप और सिद्धरूप भाव के भावकत्वमयी कर्तृत्वशक्ति।

भवद्भावभवनसाधकतमत्व मयी करणशक्तिः 43

भवते हुये (प्रवर्तमान) भाव के भवन के (होने के) साधकतमपनेमयी (उत्कृष्ट साधकत्वमयी, उग्र साधनत्वमयी) करणशक्ति।

स्वयं दीयमानभावोपेयत्वमयी संप्रदानशक्तिः 44

अपने द्वारा दिया जाता जो भाव उसके उपेयत्वमय (उसे प्राप्त करने के योग्यपनामय, उसे लेने के पात्रपनामय) सम्प्रदान शक्ति।

उत्पादव्ययालिंगितभावापायनिरपायध्रुवत्वमयी अपादानशक्तिः 45
उत्पादव्यय से आलिंगित भाव का अपाय (हानि, नाश) होने से हानि को प्राप्त
न होने वाले ध्रुवत्वमयी अपादानशक्ति।

भाव्यमानभावाधारत्वमयी अधिकरणशक्तिः 46

भाव्यमान (अर्थात् भावने में आते हुये) भावके-आधारत्वमयी अधिकरणशक्ति।

स्वभावमात्रस्वस्वामित्वमयी संबंधशक्तिः 47

स्वभावमात्र स्व-स्वामित्वमयी सम्बन्धशक्ति। (अपना भाव अपना स्व है
और स्वयं उसका स्वामी है-ऐसे सम्बन्धमयी सम्बन्धशक्ति।) (समयसार)



This document was created with the Win2PDF "print to PDF" printer available at <http://www.win2pdf.com>

This version of Win2PDF 10 is for evaluation and non-commercial use only.

This page will not be added after purchasing Win2PDF.

<http://www.win2pdf.com/purchase/>